राजस्थान में शिक्षानुसंधान

सम्प्राप्तियाँ एवं सम्भावनाएँ

सम्पादक

इन्द्रजीत खन्ना

डा. पन्नालाल वर्मा

शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर

राज्य शोध प्रकोष्ठ,

© **शिक्षा विभाग, राजस्थान,**

बीकानेर
334001

□

प्रथम संस्करण
1976

□

सलाहकार :

सुश्री उषासुन्दरी वली
प्रो. चतरसिंह मेहता
डा. श्यामलाल कौशिक

□

समीक्षक :

भगवानलाल व्यास
जनार्दनप्रसाद शर्मा

□

मुद्रक :

जयपुर प्रिण्टर्स
एम. आई. रोड, जयपुर
302001

प्राक्कथन

शिक्षानुसंधान से प्राप्त निष्कर्षों का समुचित लाभ उठाने के मार्ग में जो समस्याएँ अनुभव की जाती रही हैं, उनमें मुख्य हैं – समन्वय की समस्या तथा अनुसंधान से निःसृत तथ्यों के प्रसारण और प्रकाशन की समस्या। समन्वय के अभाव में जहाँ एक ओर अनावश्यक दोहरान और अपव्यय होता है, वहाँ दूसरी ओर ज्ञान की खोज व ज्ञान के विकास में रत अनुसंधातागण अपने पूर्ववर्ती अनुसंधाताओं के शोध-प्रयत्नों के लाभ से वंचित रह जाते हैं। इसी प्रकार अनुसंधान से उभरा ज्ञान यदि प्रकाश में नहीं लाया जाता तो उससे स्कूलों में कार्यरत अध्यापक, शिक्षक-प्रशिक्षक और शिक्षा प्रशासक भी वंचित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षानुसंधान केवल उपाधि पाने का साधन अथवा अनुपयोगी मानसिक व्यायाम मात्र बन कर रह जाता है। प्रस्तुत प्रकाशन समन्वय की दृष्टि से और अब तक की खोजों को प्रकाश में लाने का राजस्थान-स्तर पर पहला प्रयास है।

राजस्थान में शिक्षानुसंधान की शुरूआत 1953 से हुई है, जब एम. एड. उपाधि प्राप्त करने के प्रयोजन से इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य होने लगे। तब से 1974 तक एम. एड. स्तर पर 673, पीएच. डी. (शिक्षा) स्तर पर 19 तथा संस्थागत और व्यक्तिगत-स्तर पर कई अनुसंधान कार्य सम्पन्न हुए। विभिन्न स्तरों पर हुए इन कार्यों में समन्वय स्थापित करने अथवा इनके निष्कर्षों को पुस्तकालयों की बंद अलमारियों से बाहर लाने की आवश्यकता एवं महत्ता स्वीकार तो की जाती रही, जैसा कि इतस्ततः छुट पुट रूप में संस्था-स्तर पर शोध सूचियों अथवा सार-संक्षेपों के प्रकाशन के प्रयत्नों से अनुमान लगाया जा सकता है; किन्तु इस शिक्षा में कोई सुनियोजित काम अब तक हुआ हो ऐसा नहीं लगता। हाँ, राष्ट्रीय स्तर पर एन. सी. ई. आर. टी., आई. सी. एस. एस. आर. तथा यू. जी. सी. द्वारा शोध सूची प्रकाशन के माध्यम से और शोध-प्रवृत्ति निरूपण के माध्यम से इस दिशा में कुछ प्रयत्न हुए अवश्य। फिर भी, राजस्थान में हुए शिक्षानुसंधान का समग्र चित्र कहीं उजागर नहीं हो पाया। फिर जो कुछ हुआ वह अंग्रेज़ी में हुआ। फलतः स्कूलों में कार्यरत अध्यापकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षा प्रशासकों आदि को उनका पूरा लाभ नहीं मिल पाया।

शिक्षानुसंधान में समन्वय की भूमिका निभाने के लक्ष्य से 1973 में जब निदेशालय में राज्य शोध प्रकोष्ठ की स्थापना हुई, तो इन बिखरे-छितरे, भिन्न भिन्न स्तरों पर हुए शिक्षानुसंधानों को संकलित करके प्रकाशित करने के विचार पर पहली बार ध्यान गया। उपलब्ध शोधों के सार-संक्षेप सक्षम अध्यापकों/प्रधानाध्यापकों द्वारा तैयार करवाए गए। प्रश्न था, प्रकाशन के स्वरूप निर्धारण का। एम. एड. अनुसंधानों सहित सभी अनुसंधान कार्यों के सार-संक्षेप प्रकाशित करने का विचार त्यागना उचित समझा गया, क्योंकि उस रूप में प्रकाशन बहुत व्ययसाध्य हो जाता और उसकी उपयोगिता भी संदिग्ध रहती। प्रस्तुत प्रकाशन के स्वरूप-निर्धारण को बुनियादी धारणा यह रही है कि यह एक ओर तो स्कूलों में कार्यरत अध्यापकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए उपयोगी हो सके और दूसरी ओर शिक्षानुसंधान में रुचि रखने वाले एवं कार्यरत व्यक्ति/संस्थाओं के लिए यह प्रामाणिक संदर्भ साहित्य का काम कर सके। इसमें उपलब्ध शोध निष्कर्षों से अध्यापक/प्रधानाध्यापक अपनी-अपनी भूमिका के निर्वहन में भी लाभ उठा सकें, और अनुसंधातागण यह जान सकें कि अब तक शिक्षानुसंधान के क्षेत्र विशेष में क्या क्या तथा कितना कुछ हुआ है, कौन-कौन से विषय अछूते हैं तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों तथा आवश्यकताओं के संदर्भ में किस प्रकार की शोध प्रवृत्तियाँ जरूरी हैं। इस संदर्भ में श्री जे. पी. नायक, मेम्बर सेक्रेट्री, आई. सी. एस. एस. आर. के प्रति आभार व्यक्त

करना उपयुक्त होगा, जिनके द्वारा पहले किए गए सार-संक्षेपों के हमारे प्रयासों पर दी गई उनकी टिप्पणी से हमें मार्गदर्शन मिला तथा प्रकाशन को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने का चुनौतीपूर्ण निर्णय हम ले सके ।

उपलब्ध अनुसंधानों की संवीक्षा 12 क्षेत्रों में की गई है । क्षेत्र-विभाजन का निश्चय किसी पहले से प्रकाशित पुस्तक का अनुकरण करते हुए नहीं, अपितु स्वतंत्र भाव से, राजस्थान के उपलब्ध अनुसंधानों की प्रकृति तथा प्रवृत्ति निरूपण की संभावना के संदर्भ में किया गया है । इस में सलाहकार मंडल की अनुशंसा, समीक्षा समिति की टिप्पणी तथा 16–17 जनवरी 1976 को आयोजित कार्यगोष्ठी में हुए विचार-विमर्शों का मुख्य योगदान रहा ।

उपलब्ध अनुसंधानों के अनुशीलन में लेखकों के अनुसंधान कार्यों की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए, प्रवृत्ति निरूपण के प्रस्तुतीकरण में कुछ सीमा तक एकरूपता एवं तारतम्य लाने की दृष्टि से और विभिन्न दृष्टिकोणों से उनकी संवीक्षा करते हुए प्राप्त निष्कर्षों को संग्रथित करने, उनमें संबंध-भाव स्थापित करने तथा अनुशीलन प्रक्रिया से उभरने वाली प्रवृत्तियों, अछूते आयामों तथा सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में भावी अनुसंधानों के लिए दिशा संकेत करने की नीति इस ग्रंथ के निर्माण में रही है । यह इसलिए कि प्रस्तुत ग्रंथ मात्र निष्कर्षों का संकलन ही न बने, वरन स्कूलों और अनुसंधाताओं के लिए पथ-प्रदर्शक बन सके ।

निश्चय ही इन अपेक्षाओं के कारण प्रवृत्ति निरूपण का कार्य और अधिक कठिन बन जाता है, किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि लेखकों ने कार्य के साथ न्याय किया है । मैं उन्हें इस कार्य में सफलता के लिए बधाई देता हूँ, वहाँ साथ ही आभार व्यक्त करना चाहूँगा कि उन्होंने बिना किसी पारिश्रमिक की अभिलाषा के यह महत्वपूर्ण व चुनौतीभरा कार्य अपने अतिरिक्त समय में पूरा किया ।

लेखकों के चयन में जहाँ एक ओर यह ध्यान रखा गया कि वे शिक्षानुसंधान तथा लेखन दोनों की समुचित योग्यता/क्षमता रखते हैं, वहाँ दूसरी ओर यह भी ध्यान रखा गया कि पूरे लेखक दल में शिक्षानुसंधान से संबद्ध सभी संस्थाओं/अभिकरणों का प्रतिनिधित्व भी हो जाए । इसी प्रकार इस चयन में यह भी ध्यान रखा गया कि अध्यापक प्रधानाध्यापक, शिक्षक-प्रशिक्षक, शिक्षा प्रशासक आदि सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व भी यथासंभव हो जाए ।

राज्यशोध प्रकोष्ठ ने इस प्रयोजना के आयोजन तथा क्रियान्वयन में जो भूमिका निभाई वह इसकी स्थापना के औचित्य को सिद्ध करती है। मैं उन सभी व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रति, जिनका इस में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष सहयोग रहा, आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिसने इस पुस्तक को उपयोगी माना और आर्थिक सहायता प्रदान की।

मुझे आशा है कि प्रस्तुत प्रकाशन राज्य में एक महत्वपूर्ण अभाव की पूर्ति कर सकेगा तथा अध्यापक, अभिभावक, अनुसंधाता, शिक्षाधिकारी, शिक्षक-प्रशिक्षक आदि सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगा तथा सभी की भूमिकाओं के लिए किसी न किसी रूप में कमधिक मार्ग-दर्शन कर सकेगा। शिक्षा विभाग का यह एक विनीत प्रयास है, जो कई स्तरों के भिन्न-भिन्न लेखकों के सामूहिक निष्पादन का फल है। बहुत संभव है कहीं कोई त्रुटि रह भी गई हो। मुझे विश्वास है कि सहृदय पाठक उस ओर ध्यान आकर्षित करेंगे, ताकि भविष्य के लिए उस पर विचार किया जा सके।

इन्द्रजीत खन्ना
निदेशक
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

बीकानेर
31.3.76
चैत्र नवरात्र, प्रथमा

अनुक्रम

राजस्थान में शिक्षानुसंधान : विहंगावलोकन	1	श्री इन्द्रजीत खन्ना डा. पन्नालाल वर्मा
शिक्षा-दर्शन एवं शिक्षा समाजशास्त्र	18	श्री रवीन्द्र अग्निहोत्री श्री वीरेन्द्र सभरवाल
शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें	32	डा. श्यामलाल कौशिक श्री पुरुषोत्तमलाल तिवारी
अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया	48	डा. ओंकारसिंह देवल श्री कैलाशविहारी वाजपेयी
व्यक्तित्व	61	डा. छैलबिहारी माथुर डा. चन्द्रप्रकाश माथुर
शैक्षिक सम्प्राप्ति के सह-सम्बन्धक	78	श्री जगदीशनारायण पुरोहित श्री कृष्णगोपाल बीजावत
मापन एवं मूल्यांकन	93	प्रो. बजरंगलाल भोजक
शैक्षिक निर्देशन	109	डा. अरविन्द बी. फाटक श्री वासुदेव जी. दवे
व्यावसायिक निर्देशन	125	श्री सत्यप्रकाश शर्मा
शिक्षक-प्रशिक्षण	136	डा. मुल्कराज चिलाना श्री प्रकाशचन्द्र द्विवेदी
शिक्षा-प्रशासन	152	श्री हरिश्चन्द्र मित्तल श्री सूरजनारायण राव
विद्यालय-व्यवस्था	169	श्री विद्यासागर शर्मा श्री शशिशेखर व्यास
समाज शिक्षा	178	श्री मोहम्मद हुसैन

इस प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद से प्राप्त हुई । प्रस्तुत तथ्यों, अभिमतों अथवा निष्कर्षों के लिए सम्पूर्ण जिम्मेदारी लेखकों की है, परिषद इनके लिए उत्तरदायी नहीं है ।

विहंगावलोकन

शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा में सुधार सम्बन्धी समस्याओं के प्रति जिस गति से जागरूकता बढ़ती जाती है, लगभग उसी अनुपात में शिक्षानुसंधान की आवश्यकता एवं महत्ता को उत्तरोत्तर स्वीकार किया जाने लगता है। इसका कारण है–शिक्षानुसंधान की प्रकृति एवं उसकी उपादेयता। शिक्षानुसंधान का प्रारम्भ समस्या के चयन से होता है तथा समाधान खोजने की दिशा में तर्क-सम्मत, वैध तथा विश्वसनीय आधार प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य होता है, क्योंकि शिक्षानुसंधान अन्तिम समाधान देने का दावा नहीं करता, तात्कालिक समाधान नई समस्याओं के चयन की संभावना बनाते हैं और परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में इसका क्षेत्र व्यापकतर तथा नानारूपी होता जाता हैं। किन्तु शिक्षानुसंधान वैज्ञानिक दृष्टि रखते हुए तथ्यों का विश्वसनीय संकलन करके विवेकपूर्ण विश्लेषण के आधार पर तर्कपूर्ण व्याख्या करने की लीक को नहीं छोड़ता और शिक्षा-नुसंधान की यही विशेषता उसके महत्व की प्रतिपादक है।

भारत में शिक्षानुसंधान की आवश्यकता पर सर्वप्रथम 1913 के शिक्षा-नीति सम्बन्धी प्रस्ताव में बल दिया गया था तथा 1917 में सैडलर आयोग (Sadler Commission) ने इस दिशा में ठोस सुझाव दिए। आयोग ने सिफारिश की कि भारत के प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा-संकाय खोला जाना चाहिए, उसका अध्यक्ष प्रोफेसर हो तथा शिक्षा स्नातकीय उपाधि के बाद एम. एड. का दो वर्ष का पाठ्यक्रम आरंभ किया जाए।

किन्तु आयोग की इस सिफारिश पर ठोस कार्यवाही करीब 20 वर्ष बाद ही हो पाई। अलीगढ़ और बनारस विश्वविद्यालयों में शिक्षा-संकायों की स्थापना अवश्य हुई, किन्तु शिक्षानुसंधान आरंभ करने का श्रेय बम्बई विश्वविद्यालय को है, जहाँ भारत में प्रथम बार, 1936 में शिक्षानुसंधान का दो वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू किया गया। इसी विश्वविद्यालय ने एम. एड. की उपाधि 1939 में प्रथम बार प्रदान की।

राजस्थान में शिक्षानुसंधान का श्रीगणेश लगभग इसी परम्परा में अर्थात एम. एड. उपाधि के प्रयोजन से 1953 में हुआ, जब विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर के सात विद्यार्थियों (एक महिला तथा छह पुरुष) ने राजस्थान विश्वविद्यालय से एम. एड. उपधि प्राप्त करने हेतु लघुशोध प्रबंध प्रस्तुत किए। ठीक छह वर्ष बाद गाँधी विद्यामन्दिर बेसिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, सरदारशहर में भी एम. एड. कक्षाएँ आरंभ हुईं। यह संयोग था कि इस महाविद्यालय से भी पहली बार एम. एड. उपाधि प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सात ही थी।

1964–65 में उदयपुर विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर उस नये विश्वविद्यालय से संबद्ध हो गया। किन्तु अगले ही वर्ष राजस्थान में बनस्थली विद्यापीठ शिक्षा महाविद्यालय में एम. एड. कक्षाएँ चालू हो जाने से पुनः राजस्थान विश्वविद्यालय से दो शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय संबद्ध हो गए। राजस्थान विश्वविद्यालय के परिक्षेत्र में ही 1967–68 में जियालाल शिक्षा संस्थान, अजमेर में एम. एड. कक्षाएँ चालू हुईं, किन्तु 5 वर्ष बाद ही वह पाठ्यक्रम वहाँ बन्द हो गया। इसी बीच 1969–70 में जोधपुर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत महेश शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जोधपुर से 16 छात्र-छात्राओं ने एम. एड. लघुशोध प्रबंध प्रस्तुत किए, किन्तु उस महाविद्यालय में उस पाठ्यक्रम का वह पहला और अन्तिम वर्ष रहा।

इस प्रकार राजस्थान में 1970 तक एम. एड. पाठ्यक्रम चलाने का श्रेय सहायता-प्राप्त गैर सरकारी संस्थाओं को ही है, किन्तु 1970–71 में प्रथम बार एक राजकीय महाविद्यालय ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया जबकि राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर में एम. एड. पाठ्यक्रम चालू हुआ। इसके एक वर्ष बाद राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा संचालित क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर ने 1971–72 में एम. एड. पाठ्यक्रम चालू किया। इस प्रकार इस समय राजस्थान में पाँच महाविद्यालयों में एम. एड. पाठ्यक्रम के प्रयोजन से विद्यार्थीगण अनुसंधान कार्य करते हैं। चार शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय राजस्थान विश्वविद्यालय से संबद्ध हैं तथा एक उदयपुर विश्वविद्यालय से।

इसी संदर्भ में 1963 में राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर की स्थापना शिक्षानुसंधान की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना मानी जा सकती हैं, क्योंकि शिक्षानुसंधान को इसकी तीन प्रमुख भूमिकाओं में से एक माना गया है। इसकी स्थापना से लेकर 1974 तक इस संस्थान ने वस्तुतः अनुभूत समस्याओं को लेकर 25 अनुसंधान-कार्य सम्पन्न किए।

शिक्षानुसंधान की प्रवृत्तियाँ

राजस्थान में अब तक हुए शिक्षानुसंधान कार्यों को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—एक वर्ग में उपाधि प्राप्ति के लिए किए गए शिक्षानुसंधान हैं, दूसरे में अनुभूत समस्याओं का समाधान खोजने की दृष्टि से किए गए अनुसंधान कार्य, जो या तो संस्था-स्तर पर हुए हैं अथवा व्यक्तिगत स्तर पर। उपाधि प्राप्ति के लिए किए गए अनुसंधान कार्य पुनः दो प्रकार के हैं : एम. एड. स्तर के तथा पीएच. डी. स्तर के।

अ. एम. एड. स्तर के शिक्षानुसंधान : 1953 से 1974 की अवधि में कुल मिलाकर 673 एम. एड. लघुशोध प्रबंध विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत हुए। उनका वर्षवार विवरण निम्नांकित तालिका में दिया जा रहा है :

तालिका संख्या 1

वर्षवार विभिन्न विश्वविद्यालयों में हुए एम. एड. अनुसंधानों की संख्या

वर्ष	विश्वविद्यालय			योग
	राजस्थान	उदयपुर	जोधपुर	
1953	7	.....	.....	7
1954	12	.....	.....	12
1955	11	.....	.....	11
1956	8	.....	.....	8
1957	18	.....	.....	18
1958	12	.....	.....	12
1959	22	.....	.....	22
1960	22	.....	.....	22
1961	18	.....	.....	18
1962	20	.....	.....	20
1963	16	.....	.....	16
1964	14	.....	.....	14
1965	11	10	.....	21
1966	18	32	.....	50
1967	15	30	.....	45
1968	32	16	.....	48
1969	34	25	.....	59
1970	31	10	16	57
1971	34	12	.....	46
1972	50	11	.....	61
1973	39	9	.....	48
1974	43	15	.....	58
कुल	487	170	16	673
प्रतिशत	72.36	25.41	2.23	100

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि लगभग तीन चौथाई (72.36%) एम. एड. लघुशोध प्रबंध राजस्थान विश्वविद्यालय में ही प्रस्तुत हुए। इसका एक कारण तो यह रहा कि राजस्थान विश्वविद्यालय के परिक्षेत्र में 1953 से 1974 की अवधि में प्रतिवर्ष एम. एड. अनुसंधान हुए हैं, जब कि उदयपुर विश्वविद्यालय की स्थापना ही 1964–65 से हुई। उधर जोधपुर विश्वविद्यालय में तो एम. एड. पाठ्यक्रम एक ही वर्ष (1969–70) चला। दूसरा कारण परिव्याप्ति सम्बन्धी है। उदयपुर विश्वविद्यालय से

संबद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय जहाँ शुरू से अब तक एक ही रहा, राजस्थान से संबद्ध महाविद्यालयों की संख्या अभी भी चार है। राजस्थान में 1953 से 1965 के बीच एम. एड. स्तर पर प्रतिवर्ष औसतन 15.5 अनुसंधान हुए, किन्तु 1966 से इनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई तथा 1966 से 1974 की अवधि में इनकी संख्या का वार्षिक औसत 52.33% पहुँच गया। इससे स्पष्ट होता है कि 1966 से इन अनुसंधानों के औसत में तीन गुना से अधिक की वृद्धि हो गई। इस महत्वपूर्ण वृद्धि का एक कारण यह रहा कि राज्य सरकार ने प्रोत्साहन देने के लिए 1965 से एम. एड. उपाधि प्राप्त अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों व शिक्षाधिकारियों को उनकी वेतन श्रृंखला में दो अग्रिम वेतन वृद्धियाँ देने का प्रावधान किया। यद्यपि यह सुविधा राज्य सरकार ने 1970 के बाद समाप्त कर दी, किन्तु 1970 के बाद दो नये महाविद्यालयों में इस पाठ्यक्रम की सुविधा उपलब्ध हो जाने से एम. एड. स्तरीय अनुसंधानों की संख्या का औसत लगभग पूर्ववत रहा।

एम. एड. स्तरीय अनुसंधान कार्यों में मुख्यतः गैर-सरकारी संस्थाओं का प्रमुख योगदान रहा है। निम्नांकित तालिका से यह स्थिति अधिक स्पष्ट हो सकेगी :

तालिका संख्या 2

1974 तक विभिन्न शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों में हुए एम. एड. स्तर के शिक्षानुसंधानों का विवरण

क्र.सं.	शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय	संख्या	अवधि	कुल का प्र.श.
1.	विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर	304	1953–74	45.25
2.	गाँधी विद्यामन्दिर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, सरदारशहर (चूरू)	172	1959–74	25.52
3.	बनस्थली विद्यापीठ शिक्षा महाविद्यालय, बनस्थली विद्यापीठ	69	1966–74	10.22
4.	जियालाल शिक्षा संस्थान, अजमेर	38	1968–72	5.63
5.	महेश शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, जोधपुर	16	1970	2.47
6.	राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर	47	1971–74	7.00
7.	क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर,	27	1972–74	4.05

उपरोक्त तालिका से मालूम होता है कि एम. एड. अनुसंधानों की दृष्टि से गैर-सरकारी संस्थाओं का योगदान 89 प्रतिशत है; गैर-सरकारी संस्थाओं में भी विशेषतः विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय उदयपुर का, जिसने लगभग आधे (45.25 प्रतिशत) एम. एड. अनुसंधान करवाए। दूसरा स्थान गाँधी विद्यामन्दिर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, सरदारशहर का है, जहाँ 25.5 प्रतिशत अनुसंधान कार्य संपन्न हुए।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि राजस्थान में बनस्थली विद्यापीठ शिक्षा महाविद्यालय ही इस क्षेत्र में एक मात्र ऐसी संस्था है, जो केवल महिलाओं की एम. एड. प्रशिक्षण देती है। यद्यपि एम. एड. अनुसंधानों में इसका योग 10.2 प्रतिशत है, तथापि अन्य महाविद्यालयों में भी महिलाओं ने एम. एड. अनुसंधान किए हैं। 1953 से 1974 की अवधि में महिलाओं द्वारा कुल 164 एम. एड. अनुसंधान किए गए जो कुल अनुसंधानों का 24.4 प्रतिशत होता है। अध्यापिकाओं के राजस्थान में अनुपात को देखते हुए एम. एड. अनुसंधानों में महिलाओं का एक चौथाई योगदान विशेष महत्व की बात है।

एम. एड. अनुसंधानों ने शिक्षा के लगभग सभी क्षेत्रों की समस्याओं को छुआ है। निम्नांकित तालिका में इन अनुसंधानों का क्षेत्रवार विभाजन प्रस्तुत किया गया है:

तालिका संख्या 3

शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सम्पन्न हुए एम. एड. अनुसंधान

क्र.सं.	शिक्षा का क्षेत्र	1953 1954	1955 1959	1960 1964	1965 1969	1970 1974	कुल योग	प्र.श
1.	शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा समाज शास्त्र	5	7	4	16	11	43	6.4
2.	शिक्षाक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें	2	11	10	5	25	53	8.0
3.	व्यक्तित्व	1	5	9	22	43	80	11.9
4.	अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया	.....	7	3	12	27	49	7.3
5.	शैक्षिक निर्देशन	1	16	18	34	33	102	15.1
6.	व्यावसायिक निर्देशन	.....	3	8	22	6	39	5.8
7.	शैक्षिक संप्राप्ति के सहसम्बन्धक	.....	4	8	23	24	59	8.75
8.	मापन एवं मूल्यांकन	4	10	9	13	23	59	8.75
9.	शिक्षक-प्रशिक्षण	1	2	6	37	41	87	13.0
10.	विद्यालय व्यवस्था	4	4	10	31	23	72	10.7
11.	शिक्षा प्रशासन	.....	1	5	8	12	26	3.9
12.	समाज शिक्षा	1	1	.....	.....	2	4	0.6

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक एम. एड. अनुसंधान शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में हुए। यदि शैक्षिक निर्देशन एवं व्यावसायिक निर्देशन को एक क्षेत्र माना जाए, तो इस क्षेत्र में हुए एम. एड. अनुसंधानों का प्रतिशत 21 तक हो जाता है। वैसे दूसरे स्थान पर अनुसंधाताओं की रुचि का क्षेत्र शिक्षक प्रशिक्षण दिखाई देता है, जिसमें कुल अनुसंधानों का 13 प्रतिशत कार्य हुआ हैं। किन्तु यदि विद्यालय-

व्यवस्था एवं शिक्षा प्रशासन की एक ही क्षेत्र माना जाए तो दूसरा स्थान इस क्षेत्र का रहेगा, क्योंकि इस सम्मिलित क्षेत्र में अनुसंधानों का प्रतिशत 14.6 हो जाता है।

शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में 1953 से 1964 तक 12 वर्ष की अवधि में कुल 10 अनुसंधान हुए, किन्तु उसके बाद के 10 वर्षों की अवधि में इनकी संख्या 78 हो गई, जो करीब 8 गुना वृद्धि का द्योतक है। इस क्षेत्र की यह लोकप्रियता विशेषतः अर्थपूर्ण है। इसी प्रकार जिन क्षेत्रों में एम. एड. अनुसंधानों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, वे हैं : शिक्षाक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें, व्यक्तित्व, अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया, शैक्षिक संप्राप्ति के सहसंबंधक, मापन एवं मूल्यांकन आदि। किन्तु व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में पिछले पाँच सालों में एम. एड. अनुसंधानों की संख्या में गिरावट इस परिप्रेक्ष्य में खलने वाली बात लगती है कि इसी समय में व्यवसायोन्मुखी शिक्षा की विचारधारा प्रबल हुई है, मगर अनुसंधान उस दिशा में कम होते गए हैं। समाज शिक्षा के क्षेत्र में एम. एड. स्तर पर नगण्य-सा अनुसंधान कार्य हुआ है।

आ. पीएच. डी. स्तरीय अनुसंधान : राजस्थान में पीएच. डी. स्तर पर पहला शिक्षानुसंधान 1963 में श्री गुलशन लाल जुल्का ने राजस्थान विश्वविद्यालय से किया था। तब से 1974 तक कुल 19 अनुसंधान शिक्षा में इस स्तर पर सम्पन्न हुए। इनका वर्षवार विभाजन निम्नांकित तालिका में दिया जा रहा है :

तालिका संख्या 4

राजस्थान में पीएच. डी. अनुसंधानों का विवरण

वर्ष	राजस्थान	उदयपुर	जोधपुर	योग
1963	1	.....	.....	1
1964	2	.....	.....	2
1965	.....	.....	.....	.....
1966	1	.....	.....	1
1967	1	.....	.....	1
1968	1	.....	.....	1
1969	.....	1	.....	1
1970	1	.....	.....	1
1971	.....	.....	.....	.....
1972	.....	5	.....	5
1973	2	1	.....	3
1974	3	.....	.....	3
	12	7	.....	19

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि पीएच. डी. स्तर पर शिक्षा में जोधपुर विश्वविद्यालय में अब तक एक भी अनुसंधान नहीं हुआ, जबकि राजस्थान विश्वविद्यालय में सर्वाधिक (12) अनुसंधान हुए। इस स्तर पर कुल अनुसंधानों में कोई कालक्रमिकता नहीं दिखाई देती। 1965 तथा 1971 में इस स्तर का एक भी अनुसंधान नहीं हुआ, जब कि 1972 में अकेले उदयपुर विश्वविद्यालय में पीएच. डी. (शिक्षा) के पाँच अनुसंधान हुए, जो हुए वार्षिक अनुसंधानों में सर्वोच्च उपलब्धि हैं। अब तक हुए पीएच. डी. स्तरीय शिक्षानुसंधानों का 58 प्रतिशत केवल पिछले तीन वर्षों में होना एक रोचक एवं महत्वपूर्ण बात है।

क्षेत्रवार वर्गीकरण करने पर मालूम होता है कि सर्वाधिक (पाँच) अनुसंधान व्यक्तित्व के क्षेत्र में हुए, इसके बाद शिक्षक प्रशिक्षण का क्षेत्र आता है, जहाँ तीन अनुसंधान हुए। शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा समाज शास्त्र, व्यावसायिक निर्देशन तथा समाज शिक्षा के क्षेत्र में पीएच. डी. स्तर पर एक भी अनुसंधान हुआ नजर नहीं आता।

इ. संस्था स्तर पर किए गए अनुसंधान : इस वर्ग में मुख्यतः वे ही अनुसंधान उपलब्ध हुए हैं, जो राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर में विभागीय समस्याओं को लेकर किए गए। इनकी कुल संख्या 25 है। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड स्तर पर हुए चार अनुसंधान भी उपलब्ध हुए हैं। अन्य संस्था स्तरीय अनुसंधानों की संख्या गिनती की है, तथा वे प्रायः किसी न किसी अभिकरण से प्राप्त अनुदान मिलने पर ही संपन्न हुए हैं।

शिक्षानुसंधान में प्रयुक्त विधियाँ

उपलब्ध शिक्षानुसंधानों की संवीक्षा से ज्ञात होता है कि वे प्रायः सर्वेक्षण विधि को अपना कर सम्पन्न किए गए है। एम. एड. स्तर के ऐसे अनुसंधानों की संख्या 95 प्रतिशत से अधिक है। ऐसे अनुसंधान इक्के-दुक्के ही मिलते हैं, जिनमें प्रयोगात्मक विधि को अपनाया गया हो। जहाँ प्रयोग किए गए हैं, वे भी समुचित रूप से विश्वसनीयता के धरातल पर खड़े हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक गंभीर बात है कि शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय, जिन पर शिक्षानुसंधान का प्रशिक्षण देने का दायित्व है, ऐसी समस्याओं के लिए अनुसंधाताओं को उत्प्रेरित नहीं कर सके, जिनसे प्रयोगनिष्ठ निष्कर्ष उभरते। संस्था-स्तरीय अनुसंधानों में प्रहर पाठशाला पर राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा सम्पन्न प्रायोजना महत्वपूर्ण है।

प्रारंभिक वर्षों में कतिपय संप्राप्ति परखों तथा विविध मापनियों का निर्माण किया गया था। कार्य प्रारंभिक स्तर का था। किन्तु संभवतः सूचना के अभाव में अथवा श्रमसाध्य माना जाने के कारण इस प्रारंभिक कार्य के सूत्र को पकड़कर मानकीकरण करने की दिशा में आगे बढ़ने की प्रवृत्ति नहीं देखी गई। फलतः जहाँ एक ओर ऐसे कार्यों का अनावश्यक दोहरान हुआ, वहाँ दूसरी ओर प्रारंभिक अनुसंधान कार्यों से लाभ उठाने के अवसर नहीं खोजे गए। अनुसंधाताओं की एक प्रवृत्ति जो इस संदर्भ में दिखाई दी, वह यह कि मापनी/परखों का इसी धरातल पर निर्माण करके उसका मानकीकरण

करने की बजाय प्रायः विदेशी अथवा अन्यत्र मानकीकृत मापनियों/परखों को प्रयुक्त करने में ही उन्होंने संतोष किया। फिर भी पीएच. डी. स्तर पर इक्के-दुक्के महत्वपूर्ण कार्य मानकीकरण की दिशा में हुए हैं।

न्यादर्श के चयन में अनुसंधाताओं ने प्रायः अपनी सुविधा का ही ध्यान रखा है, फलतः अधिकांश अनुसंधानों में न्यादर्श साख्यिकी दृष्टि से प्रतिनिधि तथा विश्वसनीय नहीं बन पाए हैं। कई ऐसे अनुसंधान उपलब्ध हैं, जिनमें न्यादर्श स्पष्टतः छोटा एवं सोद्देश्य (Purposive) है। अधिकतर शहरी क्षेत्र के विद्यालयों, किशोर छात्र-छात्राओं, अध्यापक-अध्यापिकाओं को ही न्यादर्श में सम्मिलित किए जाने की प्रवृत्ति अनुसंधानों में दिखाई देती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि न्यादर्श में ग्रामीण परिवेश के, प्राथमिक अथवा पूर्व प्राथमिक छात्र-छात्राओं, पिछड़े लोगों आदि को नगण्य-सा स्थान ही मिल पाया हैं। निश्चय ही न्यादर्श का चयन अनुसंधान के उद्देश्यों से संबद्ध महत्व-पूर्ण मसला है, फिर भी इस उपेक्षित पक्ष पर भावी अनुसंधातागण समुचित ध्यान दें तो उचित होगा।

शिक्षानुसंधान में उपलब्धियों की संवीक्षा

अब तक जिन क्षेत्रों में शिक्षानुसंधान सम्पन्न हुए हैं, उनमें क्षेत्रवार उपलब्धियों तथा रिक्तियों की स्थिति इस प्रकार उभरती है :

शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा समाजशास्त्र : इस क्षेत्र में एम. एड. स्तर के कुल 43 अनुसंधान उपलब्ध हैं। पीएच. डी. स्तर का एक भी अनुसंधान उपलब्ध नहीं। शिक्षा-दर्शन वर्ग में तो उपलब्ध अनुसंधानों की संख्या कुल 4 ही है, जो अनुसंधाताओं की दृष्टि में इस क्षेत्र का उपेक्षित होना इंगित करता है।

शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में कुछ प्रसिद्ध विचार-धाराओं को लेकर अथवा विशिष्ट शिक्षा संस्थानों के ऐतिहासिक विकास पर इक्के-दुक्के अनुसंधान हुए हैं, किन्तु व्यावहारिक दार्शनिक समस्याओं का उत्खनन, नये क्रियाशील दर्शन के विकास की चेष्टा, प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में निहित दार्शनिक विचार, समीक्षा आदि ऐसे अछूते आयाम हैं, जिन पर अनुसंधाताओं का ध्यान जाना अपेक्षित है।

इसी प्रकार शिक्षा समाज-शास्त्र के दायरे में समाजीकरण और अध्यापक समुदाय की समस्याओं पर तो काफी काम हुआ है, मगर सतत परिवर्तनशील सामाज में शिक्षा की भूमिका, परिवर्तन के अभिवर्तक के रूप में शिक्षा का योगदान, उसकी भूमिका एवं अपेक्षित स्वरूप, कमजोर वर्ग के समाजीकरण में शिक्षा का दायित्व जैसे अद्यतन पक्षों पर अनुसंधानकर्त्ताओं का ध्यान जाना अपेक्षित है। साथ ही यह भी अपेक्षित है कि अनुसंधानों में विचार विशेष की व्यावहारिकता का विश्लेषण किया जाए, इस क्षेत्र में ऐतिहासिक अनुसंधानों के लिए भी व्यापक एवं रोचक क्षेत्र बाकी है, जो अनुसंधाताओं के ध्यान की अपेक्षा करते हैं।

शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें : शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र को लेकर जितने अनुसंधान हुए हैं उनमें सामान्य शिक्षा-क्रम के अन्तर्गत बुनियादी शिक्षा, विभिन्न पाठ्यक्रमीय अंगों में रुचि-अरुचि, पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण जैसे पक्षों पर तो कार्य हुआ है और वह किसी सीमा तक ऐतिहासिक विकास क्रम, समसामयिक चिन्तना आदि को भी व्यक्त करता है, मगर भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों में प्रचलित शिक्षा-क्रम की वैधता, उपयोगिता तथा उसकी परिवर्तन क्षमता पर अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान गया नहीं। लगता तो यह भी है कि एम. एड. स्तर पर अनुसंधानों के पक्ष भी पाठ्यक्रम के घेरों से घिरे हुए चले हैं, यद्यपि वे कार्य महत्वपूर्ण नहीं हैं ऐसा तो नहीं कह सकते। क्योंकि अंग्रेजी, गणित, हिन्दी, सामाजिक ज्ञान और सामान्य विज्ञान जैसे आधारिक विषयों को लेकर उनके पाठ्यक्रमों का मूल्यांकन, पाठ्यपुस्तकों की परख, छात्रों/अध्यापकों की अभिवृत्ति, रुचि आदि पर सार्थक अनुसंधान किए गए हैं। मगर आवश्यक है कि उनके फलितार्थों की जानकारी अध्यापकों, पुस्तक निर्माताओं और नीति निर्धारकों तक पहुँचे। इस दृष्टि से शिक्षा व्यवस्था की संचार-प्रणाली में कोई उपयुक्त तंत्र कायम करने की आवश्यकता हैं। निश्चय ही अब तक अगर वैसा कुछ हो पाता तो सामाजिक ज्ञान, विज्ञान और अंग्रेजी विषय के शिक्षाक्रम और पाठ्य-पुस्तकों की असंगतियाँ बराबर दूर होती रहतीं, क्योंकि इन पक्षों पर प्रायः हर वर्ष कोई न कोई अनुसंधान हुआ है और उपयोगी सुझाव उभरे हैं।

अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया : इस क्षेत्र में समस्या-समाधान में पूर्व-कल्पना के उपयोग की क्षमता, विविध विधियों की प्रयुक्ति की सीमाएँ, प्रशिक्षण का शिक्षण विधियों के सार्थक उपयोग पर प्रभाव, पठनारंभ काल की समस्याएँ, छात्रों की विभिन्न स्थितियों में विभिन्न विषयगत रुचियाँ, विभिन्न विषयों के प्रति छात्रों/अध्यापकों की अभिवृत्तियाँ, खेल, उद्योग, कार्यानुभव आदि का विधिगत उपयोग इत्यादि प्रकरणों पर कुछ अत्यन्त उपयोगी शोध उपलब्धियाँ तो हुई ही हैं, अभिक्रमित अध्ययन प्रणाली पर भी कुछ सकारात्मक तथ्य अनुसंधाताओं ने उभारे हैं। यद्यपि अभिप्रेरण, कक्षागत व्यवहार, प्रस्तुतीकरण की तकनीकों आदि पर प्रयोगनिष्ठ कार्य कम हुए हैं, मगर जो कुछ भी हुआ हैं, यदि उस पर व्यवहार-फलन हो सका होता तो, अवश्य ही भावी अनुसंधानों की भी एक और विधायक दिशा मिल सकी होती। अनुसंधाताओं ने विभिन्न विषय क्षेत्रों में निदानात्मक उपकरण तक भी तैयार किए हैं, और सामाजिक-आर्थिक विशेषकों के साथ विधियों का सह-सम्बन्ध तक भी खोजा है। इतना जरूर है कि उनका ध्यान माध्यमिक स्तर पर ज्यादा रहा है और प्राथमिक तथा पूर्व प्राथमिक स्तर अपेक्षाकृत कम ध्यान आकर्षित कर पाए हैं। अब समय है कि भावी अनुसंधानों में प्राथमिक, पूर्व प्राथमिक और अनौपचारिक अध्ययन-अध्यापन के पक्षों पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाए और अनुसंधानों की उपलब्धियों को क्रियान्वायन के धरातल पर भी उतारा जाए। इसके साथ ही लोक-संचार के साधनों, शिक्षण-अधिगम सामग्री आदि के प्रभावों का भी आकलन करना जरूरी हैं। शिक्षा की विशिष्ट स्थितियों—यथा, एक अध्यापकीय विद्यालयों, अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों, शिक्षक-

प्रशिक्षण संस्थाओं में व्यावहारिक एवं उपयुक्त शिक्षण-विधियों तथा अधिगम-विधाओं को विकसित करके परीक्षण किए जाने का क्षेत्र अछूता-सा पड़ा है। आयातित विधियों व संकल्पनाओं पर निर्भरता कहाँ तक उचित कही जा सकेगी ? एम. एड. अनुसंधाताओं से न सही, संबद्ध शिक्षा संस्थाओं/संस्थानों से तो इस पक्ष पर विशेष अपेक्षा की ही जा सकती है।

व्यक्तित्व : शिक्षा में मनोविज्ञान की एकांतिक महत्ता स्कूली शिक्षा की उपपत्ति है। पश्चिमी शिक्षा मनोविज्ञान में इसीलिए व्यक्तित्व और अधिगम पर स्वतंत्र अनुसंधान लक्ष्यी कार्य बहुतायत से संपादित होते हैं। राजस्थान में भी लगभग वैसी ही स्थिति दिखाई पड़ती है। व्यक्तित्व के विविध पक्षों की लेकर उसके विभिन्न विशेषकों और घटकों के मापन और निर्धारण का प्रयास विदेशी या भारतीयकृत विदेशी उपकरणों के माध्यम से किया गया है। यह कह पाना कठिन है कि ऐसे अनुसंधान शिक्षक को किस सीमा तक लाभ पहुँचा सकेंगे, मगर समस्याग्रस्त और अपराधी मनोवृत्ति के छात्रों की पहचान के लक्षण उसे जरूर मालूम हो सकते हैं—बशर्ते कि अनुसंधान के तथ्य निर्विवाद हों और सर्वथा निरपवाद हों। तदर्थ इस क्षेत्र में अनुसंधानों के लिए समुचित न्यादर्श का चुनाव करके अध्ययन करने तथा विश्वसनीय उपकरणों का निर्माण किए जाने की आवश्यकता है। ग्रामीण क्षेत्र तथा पिछड़े बालकों के न्यादर्श को लेकर भी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का अध्ययन अपेक्षित हैं। इस क्षेत्र में भारतीय परिवेश की पृष्ठभूमि में उपकरणों के निर्माण एवं मानकीकरण के कार्य की तो अनुसंधाताओं से विशेष अपेक्षा है।

शैक्षिक सम्प्राप्ति के सह-सम्बन्धक : अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया में ही एक महत्वपूर्ण विशेषक होता है, शैक्षिक सम्प्राप्ति के सह-सम्बन्धकों के प्रकार्यों की जानकारी रखना और उनकी अभिकारी भूमिका का सार्थक नियोजन करना। राजस्थान में अब तक इस क्षेत्र में 59 अध्ययन हो चुके हैं, जो सभी एम. एड. स्तर के हैं। इनके अतिरिक्त चार पीएच. डी. स्तर के अनुसंधान भी उपलब्ध हैं और उनमें वुद्धि (प्रतिभा), आत्मप्रत्यय, अभिवृत्ति, दुश्चिन्ता, समायोजन, समाजमिति, सामाजिक-आर्थिक स्तर, ग्रामीण/नगरी पर्यावरण, विद्यालयी स्थितियों आदि के साथ शैक्षिक सम्प्राप्ति के सह-सम्वन्ध भाव खोजे गए हैं। कहना नहीं होगा कि उनके निष्कर्षों को अध्यवन-अध्यापन तथा शिक्षक-प्रशिक्षण के साथ मिलाकर यदि हमारे शिक्षक-प्रशिक्षक या शिक्षा प्रशासक कोई चेष्टा करें तो उनसे शिक्षा के सुधार में नये आयाम जरूर खोजे जा सकते हैं। सवाल केवल आस्थापूर्वक प्रयोग करने और अनुसंधानगत निष्कर्षों को क्रियान्वयन की कसौटी पर परखने का है। विद्यालयी व्यवहार में और विद्यालयी कार्यक्रमों के संयोजन-संचालन में निश्चित रूप से इस क्षेत्र के निष्कर्ष शिक्षकों और प्रशासकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे, अगर वे उनमें क्रियान्वयत की उद्यतता जगा सकें। इतना जरूर है कि अपनी स्थितिजन्य प्रतिबद्धताओं या सीमाओं के कारण अनुसंधातागण प्रयोगात्मक साक्ष्य न दे पाए हों, मगर जो कुछ उन्होंने वर्ष भर या तीन-चार वर्षों तक परिश्रम करके तथ्य खोज निकाले हैं, वे क्रियान्वयन के लिए आधार भूमि तो प्रस्तुत करते ही हैं।

व्यवहार क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओं का दायित्व है कि वे उन तथ्यों को क्रियान्वयन के धरातल पर उतारें, जाँचे, परखें और अनुकूल जान पड़े तो उन्हें अपने नैमित्तिक आचरण में ढालें।

इस संदर्भ में पुरोहित व बीजावत की संवीक्षात्मक टिप्पणी उल्लेखनीय है—"इस क्षेत्र में हुए अनुसंधानों में अध्ययन-अध्यापन तथा शैक्षिक सम्प्राप्ति वाला उपक्षेत्र बहुत ही दुर्बल रह गया है। यह ठीक है कि बुद्धि और शैक्षिक सम्प्राप्ति का घनिष्ठ सह-सम्बन्ध सिद्ध किया गया है तथा यह भी ठीक है कि सामाजिक-आर्थिक स्तर का शैक्षिक सम्प्राप्ति पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु इनसे अध्यापक को अपने दैनन्दिन कार्य में विशेष सहायता नहीं मिलती। अध्यापक को सहायता तब मिल सकती है, जब अनुसंधान इन प्रश्नों का उत्तर ज्ञात करें कि कौनसी अध्यापन-विधियाँ शैक्षिक संप्राप्ति को अपेक्षाकृत अधिक उन्नत कर सकती हैं ? अंग्रेजी तथा गणित विषयों में, जिनमें कि माध्यमिक शिक्षा-स्तर पर सम्प्राप्ति का स्तर बहुत नीचा है, अधिक व्यवस्थित अनुसंधानों की अपेक्षा बनी हुई है।.....सहशैक्षिक प्रवृत्तियाँ तथा शैक्षिक सम्प्राप्ति का क्षेत्र भी अधिक नियोजित अनुसंधान की अपेक्षा करता है।"

मापन एवं मूल्यांकन : मापन और मूल्यांकन अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया की सहज उपपत्ति है। इस क्षेत्र में राजस्थान के अनुसंधाताओं ने अब तक अभिवृत्ति, बुद्धि, अभिक्षमता, अभिरुचि, व्यक्तित्व, विद्यालय व्यवस्था आदि के मापन उपकरणों का विकास करने की चेष्टा की है, परीक्षा और परखों के निर्माण, संचालन और संप्राप्तियों के मानक तैयार किए है, कहीं विदेशी उपकरणों का भारतीय परिस्थितियों में अनुकूलन भी किया है और उनका पुनर्मानकीकरण भी किया है। उन सबकी उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता और अगर शिक्षा व्यवस्था उनको सुलभ कराने की दिशा में कुछ कर सके तो विद्यालयी शिक्षा अवश्य उनसे लाभान्वित हो सकती है। परीक्षा और परख सम्बन्धी जो तथ्य और निष्कर्ष इन अनुसंधानों में उभरे है, उनका उपयोग करते हुए विद्यालयों की आन्तरिक परीक्षाओं में भी सुधारात्मक दिशा बन सकती है। इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में कुछ नवनिर्मित उपकरणों का उल्लेख सर्वथा समीचीन होगा। वे हैं—अभिवृत्ति मापनी, बुद्धि परीक्षण प्रपत्र, अभिरुचि मापनी, निदानात्मक परख (भाषा), कुंठा प्रतिक्रिया परख, मूल्य निर्धारण परख, अध्यापक-व्यवहार-तालिका, अध्ययन आदत तालिका और खेल किट। ये सर्वथा भारतीय पर्यावरण में विकसित और निर्मित हैं तथा इनका उपयोग भावी अनुसंधाताओं तथा शिक्षकों के लिए भी प्रस्ताव्य है।

अपेक्षित अनुसंधानों के संदर्भ में प्रो. भोजक की टिप्पणी, "परीक्षाओं, असफलता व उसके कारणों, छात्रों की विभिन्न विषयों में अशुद्धियों, उनकी आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों, व्यक्तित्व समायोजन, आपसी सामाजिक संबंध आदि विषयों में और अधिक मूल्यांकन-शोध कार्य किए जाने अपेक्षित हैं। खेल, शारीरिक विकास आदि क्षेत्रों में मूल्यांकन की तरफ तो शोधकर्ताओं का ध्यान गया ही नहीं," उल्लेखनीय है।

शैक्षिक निर्देशन : राजस्थान में शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य का प्रतिशत अधिभार अन्य क्षेत्रों की तुलना में सर्वाधिक ही ठहरता है। शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में किए गए कार्यों का लाभ एक ओर शिक्षा समाज शास्त्र के लिए, और दूसरी ओर अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया के लिए उठाया जा सकता है। वहाँ समंजन, अभिरुचियाँ, अध्ययन आदतें, प्रतिभा, सृजनशीलता, अध्ययन में बाधक घटक आदि को लेकर तथ्यान्वेषण हुआ हैं जो काफी सीमा तक शिक्षकों, प्रशिक्षकों, और प्रशासकों का मार्ग-दर्शन तो कर ही सकता है। मगर, जब तक ने तथ्य सबके ध्यान में नहीं आते और जब तक उन पर क्रियान्वयन तथा प्रयोग की कोई उद्यतता नहीं पैदा होती तब तक वे शिक्षा जगत की सेवा नहीं कर सकते, यह सर्वोपरि तथ्य है। शैक्षिक निर्देशन के उपकरणों का निर्माण अनुसंधाताओं के लिए एक स्वीकार्य चुनौती है। शैक्षिक निर्देशन सेवाओं के प्रभाव को आँकने तथा तदर्थ उपकरण निर्माण, प्रतिभाशाली तथा सृजनशील छात्रों के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रम निर्माण, विशिष्ट विधियों का विकास करना, शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने संबंधी कार्यक्रम बनाना, भारतीय तथा विशेष रूप से राजस्थानी परिवेश में व्यावहारिक निर्देशन सेवाओं का स्वरूप निर्धारण आदि ऐसे पक्ष हैं, जो अनुसंधाताओं से शोध प्रवृत्तियों की अपेक्षा करते हैं।

व्यावसायिक निर्देशन : व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में अनुसंधाताओं ने छात्रों की व्यावसायिक अभिरुचियाँ उनके सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में जानी हैं, आर्थिक लाभ की सापेक्षिक अभिवृत्तियों की परख की है, व्यवसायों के सापेक्षिक आकर्षण को मापा है और यह भूमिका बनाने की चेष्टा की हैं कि अगर हम शिक्षा की व्यवसायोन्मुखी बनाना चाहें तो किन बातों का ध्यान रखें, किन व्यवसायों के लिए प्रावधान रखें आदि। किन्तु विभिन्न स्तरों पर कार्यानुभव, क्रियाशील अवकाश, सीखो-कमाओ कार्यक्रम, विद्युत तथा मशीबी उपकार्य जैसे क्षेत्रों में, विभिन्न स्तर के छात्र-छात्राओं की रुचियों, क्षमताओं एवं संमजन समस्याओं को लेकर संधान की जरूरत अभी तक बाकी है।

व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रमों के संदर्भ में अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शिक्षाधिकारियों आदि की रुचियों, जागरूकता तथा भूमिका को लेकर अनुसंधान कार्य अपेक्षित हैं। अनुसंधाताओं के लिए यह भी चुनौती है कि वे ऐसे उपकरणों का निर्माण करें जिनकी सहायता से भिन्न-भिन्न स्तरों पर बालकों की व्याव-सायिक रुचियों/अभिरुचियों का पता लगाया जा सके। व्यावसायिक निर्देशन के लिए उपयुक्त एवं व्यावहारिक कार्यक्रम निर्माण करना भी अनुसंधाताओं के लिए एक रोचक एवं अछूता आयाम है।

शिक्षक-प्रशिक्षण : राजस्थान में प्राथमिक और माध्यमिक दोनों स्तरों पर शिक्षक-प्रशिक्षण की संख्यात्मक स्थिति तो असंतोषकारी नहीं कही जा सकती, मगर गुणवत्तात्मक स्तर पर वह कितनी गतिशील है, कितनी शुद्धतः राष्ट्रीय है, समसामयिक

और भविष्योन्मुखी है—इसका आभास इस क्षेत्र के अनुसंधान हमें कराते हैं ! दरअसल वह स्थिति हमें यह सोचने को मजबूर करती है कि आखिर किन उपायों से हम अपनी शिक्षा और उसके मुख्य प्रेरक शिक्षक-प्रशिक्षण को भारतीय भूमि पर संस्थापित कर सकेंगे ? प्रशिक्षण में नवाचार, प्रशिक्षणों की पाठ्यचर्या, प्रशिक्षणों की स्तर-वारिता, प्रवेश-अर्हता, शिक्षण-अभ्यास की स्थितियाँ, सहयोगी विद्यालयों की दुश्चिताएँ जैसे प्रकरणों पर और, प्रशिक्षण की व्यवहार में परिणति की स्थिति पर अनुसंधाताओं ने सर्वेक्षणनिष्ठ निष्कर्ष निकाले हैं और एक-दो स्थितियों में प्रयोगनिष्ठ तथ्य भी उद्घाटित किए है। वे सब मिलकर कम से कम इस क्षेत्र की वास्तविक स्थिति तो बताते ही हैं, कुछ मार्गदर्शन भी करते हैं। उनमें शिक्षक-प्रशिक्षण को नई दिशा देने और वहाँ भारतीय विद्यालयों के योग्य व्यावहारिक चर्या विकसित करने के लिए काफी सामग्री मिलती है। मगर जरूरत यह भी हैं कि हमारे शिक्षक प्रशिक्षणाजय अपने बारे में और अपने ही यहाँ सम्पादित अनुसंधानों का स्वयं ही कोई उपयोग कर पाएँ, तथा निष्कर्षों के आधार पर कार्यक्रम विकसित करके परीक्षण कर पाएँ। इसके अलावा इस क्षेत्र में विद्यालयी-वातावरण, व्यवहार और पर्यावरण के संदर्भ में शिक्षण विधियों के इजाद, पाठ्यक्रम के मूल्यांकन, शिक्षण साँचों में उसके रूपान्तर पर अध्ययनों की आवश्यकता है और अनौपचारिक शिक्षण विधियों/कार्यक्रमों में भी प्रशिक्षण को प्रवेश करने की जरूरत है।

शिक्षा प्रशासन : शिक्षा प्रशासन के क्षेत्र को लेकर सत्ता व अधिकारों का प्रत्यायोजन, विभिन्न घटकों में पारस्परिक सम्बन्ध, नवाचार, परिवीक्षण और वित्तीय मुद्दों पर अनुसधाताओं ने अब तक काम किया है। इनमें से भी कार्मिक समस्याओं और कठिनाइयों पर जितना अधिक बल दिया गया है उससे आभास होता है कि शिक्षा प्रशासन मूलतः आर्थिक समस्याओं और मानवीय सम्बन्धों की ग्रंथियों से ही अधिक ग्रस्त है और शैक्षिक कही जा सकने लायक स्थिति उस प्रशासन के दायरे में अभी तक आ नहीं पाई है। इस क्षेत्र में शायद शैक्षिक आयोजन और नियोजन के समावेश की स्थिति बनी ही नहीं है, न किसी अधिकार-प्रत्यायोजन के प्रयोग का साहसी समावेश हो पाया है। निजी संस्थाओं का दायरा और पंचायत समितिगत शिक्षा प्रशासन का दायरा भी अछूता रह गया है जबकि ये क्षेत्र ज्वलन्त समस्याओं से त्रस्त हैं। अनौपचारिक शिक्षा का आयाम अपेक्षाकृत नया है, यह कहकर उसकी अनुपस्थिति को क्षम्य कहा जा सकता है किन्तु शिक्षाधिकारियों, शिक्षकों तथा छात्रों के बीच सम्बन्धों के प्रत्यायोजन, सहकारिता, प्रयोगशीलता, विकेन्द्रीकरण इत्यादि के पक्ष भी अनुसंधाताओं का ध्यान आकर्षित क्यों नहीं कर पाए, यह विस्मयकारक है। वित्तीय व्यवस्थापन और नियोजन पर भी अनुसंधानों की कमी खटकती है। अब जब कि शिक्षा विभाग ने प्रशासनिक अधिकारों का विकेन्द्रीकरण कर दिया है, तथा वित्तीय अधिकारों का नया प्रत्यायोजन हो गया है, तो इन प्रकरणों पर सघन और सतत सर्वेक्षणों की जरूरत है।

इस क्षेत्र में यद्यपि शोधकर्ताओं का सर्वाधिक रुचि का विषय संभवतः प्रशासन में मानवीय पक्ष रहा है, किन्तु शिक्षा-प्रशासन के किसी मॉडल को आधार बनाकर

शोध-प्रयास नगण्य-से रहे हैं, जबकि ज्ञान के विकास की दृष्टि से यह अपेक्षित था। इस दृष्टि से गेटजल्स व कोलाडार्सी (Getzels and Coladarci) द्वारा स्थापित शिक्षा-प्रशासन सम्बन्धी प्रमेय (Theory) बहुत उपयोगी हो सकता है। फिर शोधकर्त्ताओं का अधिकतर बल मूल्यांकनपरक अनुसंधानों पर रहा, जबकि शिक्षा-प्रशासन के किसी विशिष्ट पक्ष के प्रकरण-अध्ययन शिक्षा-प्रशासन में सुधार की दृष्टि से अधिक उपयोगी होते।

रेगिस्तान, पहाड़ी एवं पिछड़े इलाकों में शिक्षा-प्रशासन की विशिष्ट समस्याओं, एक अध्यापकीय विद्यालयों के संदर्भ में प्रशासकीय समस्याओं, शिक्षा को सार्वजनीन बनाने तथा शिक्षा के समान अवसर जुटाने के मार्ग में अनुभूत समस्याओं के स्वरूप-निर्धारण तथा समाधान खोजने की दिशा में अनुसंधानों की आवश्यकता बनी हुई है। शिक्षा सुधार कार्यक्रमों के परिप्रेक्ष्य में तथा विद्यालयों में शिक्षा सुविधाओं के विस्तार के संदर्भ में शिक्षा प्रशासन की अपेक्षित भूमिका तथा उसके स्वरूप-निर्धारण के प्रयोजन को लेकर अनुसंधान किए जाने चाहिए। फिर, सामाजिक परिवर्तनों के संदर्भ में शिक्षा प्रशासन का ढाँचा कैसा हो, उसका स्वरूप क्या हो, आदि ऐसे प्रश्न हैं जो अनुसंधाताओं से उत्तर की अपेक्षा करते हैं। शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा के बदलते-बढ़ते दायित्वों की पृष्ठभूमि में जिला शिक्षाधिकारी के कार्यभार, कार्य-प्रक्रिया आदि पक्ष उपेक्षित रहे हैं।

विद्यालय व्यवस्था : शिक्षा प्रशासन का ही उपपक्ष विद्यालय-व्यवस्था का होता है, जिसमें विद्यालयों का सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण, मानवीय सम्बन्ध, कार्मिक सम्बन्ध और सामुदायिक सहयोग के महत्वपूर्ण आयाम होते हैं। मगर इस क्षेत्र में अनुसंधाताओं ने संस्थागत योजनाएँ, नवाचार, विद्यालयी कार्यक्रम, सहशैक्षिक प्रवृत्तियाँ, कार्मिक सम्बन्ध जैसे प्रकरणों पर ही अनुसंधान किए हैं और समय विनियोजन, स्तर भेद से व्यवस्था भेद, स्वायत्तता के प्रसंग, कक्षा-व्यवहार, शैक्षिक सामाजिक विशेषक आदि के प्रकरण अछूते छोड़ दिए हैं। प्रशासनिक समस्याओं पर तो इन अध्ययनों से काफी उपयोगी तथ्य प्रकाश में आए हैं मगर इनके आधार से नवोन्मेष या सुधार की कोई दिशा नहीं बनती। जरूरत इस बात की है कि विद्यालय व्यवस्था के विभिन्न प्रकरणों पर एकदम यथार्थवादी अध्ययन हों और उनके आधार पर कुछ प्रयोगनिष्ठ कार्य भी किए जाएँ। वास्तविक रूप से देखा जाए तो विद्यालयी व्यवस्था में योजनाबद्ध कार्यक्रम, मानवीय सम्बन्ध-भावों का पुनरायोजन, सामुदायिक सहयोग और सह-जीवन के उपक्रम, सार्वजनीनता के उपायों में विद्यालय की प्रत्यक्ष भागीदारी, राष्ट्रीय लक्ष्यों और आकांक्षाओं के जन-जन व्यापी प्रसार—ये सब ऐसे दायित्व हैं जिनकी उपेक्षा करके विद्यालय व्यवस्था नहीं चल सकती। विद्यालयों को लोकप्रिय बनाने में अब, बदली परिस्थितियों में, इन बातों की अहमियत सिकारी जानी चाहिए और शैक्षिक जगत को इन दिशाओं में क्रियाशील होना चाहिए।

समाज-शिक्षा : समाज शिक्षा और शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन हमारी शिक्षा में अभी तक परिशिष्टवत क्षेत्र हैं और अभी तक विद्यालयी शिक्षा-धारा

में वे पूरी तरह सम्पृक्त भी नहीं हो पाए हैं। निर्देशन की तुलना में समाज शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधानों का योगदान एम. एड. स्तर पर उतना नहीं है जितना समाज शास्त्र या प्रौढ़ शिक्षा संकायों के स्तर पर है। इन अनुसंधानों में जो दृष्टि रही है वह विभिन्न समाज-शिक्षा कार्यक्रमों के सर्वेक्षण या संवीक्षण की रही है, मगर सतत शिक्षा, आजीवन शिक्षा और विद्यालयी शिक्षा की त्रिवेणी का संगम कहाँ हो, कैसे हो, हो भी या नहीं, कोई ऐसा प्रयोगनिष्ठ अनुसंधान अभी तक हुआ नहीं है, न ऐसा जो भारतीय परिस्थितियों में भारतीय समाज-शिक्षा के स्वरूप-निर्माण में कोई मदद कर सके। अब, जब कि सार्वजनीन शिक्षा के लिए अनौपचारिक शिक्षा उपक्रम, क्रियाशील किसान साक्षरता, नेहरू युवक केन्द्र, आजीवन शिक्षा आदि विविध प्रयोजनमूलक कार्यक्रम जोर पकड़ रहे हैं तब समाज-शिक्षा के क्षेत्र को शिक्षा के मुख्य प्रवाह का समानांतर उपप्रवाह मानकर नहीं चला जा सकेगा। चेष्टा यह रखनी आवश्यक है कि विद्यालयी शिक्षा और समाज शिक्षा अन्त-र्ग्रथित होकर चलें और अनुसंधाता उस दिशा में अधिक सजग और सक्रिय हों। इसके साथ ही साथ समाज शिक्षा में निरत निजी और स्वायत्तशासी संस्थाओं पर भी विशद खोजबीन होनी जरूरी है।

शिक्षानुसंधान की गतिविधियाँ

1970 के बाद का काल शिक्षानुसंधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जा सकता है। शिक्षानुसंधान की गतिविधियाँ मुख्यतः दो प्रयोजनों को लेकर चल रही हैं : ज्ञान के विकास का प्रयोजन तथा तात्कालिक समस्याओं के लिए वैध, तर्कसम्मत एवं उपयुक्त समाधान खोजने का प्रयोजन। ज्ञान के विकास को लेकर राजस्थान में पाँच शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय (एम. एड. एवं पीएच. डी. उपाधि की तैयारी के निमित्त से) सक्रिय हैं। साथ ही एम. एड. स्तर पर तात्कालिक समस्याओं के लिए समाधान खोजने का प्रयोजन उत्तरोत्तर बल पकड़ने लगा है। उधर व्यावहारिक समस्याओं के समाधान खोजने के उद्देश्य को लेकर जहाँ एक ओर राज्य शिक्षा संस्थान सक्रिय है वहीं शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय/महाविद्यालय भी अनु-दान/सहायता से अनुसंधान प्रायोजनाओं पर कार्य करते हैं।

कुछ समय से शिक्षा विभाग की इसमें ली गई रुचि ने शिक्षानुसंधान की गतिविधियों में एक रोचक एवं महत्वपूर्ण आयाम जोड़ दिया हैं। प्रायः यह अनुभव किया जाता था कि उपाधि प्राप्त करने के बाद शिक्षानुसंधातागण निष्क्रिय-से हो जाते थे। जहाँ एक ओर यह आवश्यकता थी कि उनके ज्ञान का अभिनवीनीकरण होता रहे, उन्हें अनुसंधान कुशलता के प्रयोग के अवसर मिलते रहें, वहाँ यह आवश्यकता भी अनुभव की गई कि उनके ज्ञान व कुशलता का अनुभूत शिक्षा समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने की दिशा में वस्तुतः उपयोग किया जाए। इसका एक लाभ यह भी सोचा गया कि वे अपनी भूमिका निबाहने में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखेंगे। शिक्षा विभाग की पहल तथा उत्प्रेरणा से अब लगभग सभी जिलों में शिक्षानुसंधाता-वाक्पीठों का गठन हो गया है। शिक्षानुसंधाता वाक्पीठ (District Education Researchers

Forum) में जिले के एम.एड., पीएच. डी. एवं शिक्षानुसंधान में रुचि व तत्परता रखने वाले अध्यापक/प्रधानाध्यापक होते हैं। उनसे अपेक्षा है कि वे व्यक्तिगत स्तर पर अथवा सामूहिक स्तर पर अनुभूत शिक्षा समस्या को लेकर अनुसंधान कार्य करें। राज्य शिक्षा संस्थान के निर्देशन में उन्हें उल्लेखनीय प्रोत्साहन मिला है। फलस्वरूप काफी संख्या में क्रियानुसंधान कार्य हुए,यद्यपि उन्हें इस पुस्तक में सम्मिलित नहीं किया जा सका है। किन्तु एक ओर कार्य की व्यापकता की देखते हुए तथा दूसरी ओर अन्य अभिकरणों को भी इस कार्य से संबद्ध करने की दृष्टि से राजस्थान को तीन इकाइयों में बाँटा गया है और इस निर्देशन/प्रशिक्षण कार्य में राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय अजमेर तथा राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर को भी राज्य शिक्षा संस्थान के साथ संलग्न किया गया है। अब अपने-अपने निर्धारित क्षेत्र में शिक्षानुसंधाताओं को प्रशिक्षण देने का दायित्व इन तीनों अभिकरणों का है।

राज्य में शिक्षानुसंधान की गतिविधियों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान का रुचि लेना भी एक महत्वपूर्ण आयाम है। बोर्ड अपनी रुचि की समस्याओं पर शोधकार्य करने हेतु अनुदान की व्यवस्था करता है। अनुदान देकर शोध कार्य को प्रोत्साहित करने में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद का योगदान तो महत्वपूर्ण रहा ही है।

इस प्रकार राजस्थान में शिक्षानुसंधान की गतिविधियों में उल्लेखनीय त्वरा आई है। एक ओर ज्ञानात्मक विकास के प्रयोजन को लेकर, तो दूसरी ओर अनुभूत समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान खोजने के प्रयोजन को लेकर, तथा तीसरी ओर कक्षागत समस्याओं का तात्कालिक समाधान अथवा क्रियात्मक परिकल्पनाओं का परीक्षण करने की दृष्टि से, अनुसंधान कार्य हो रहे हैं। अनावश्यक दुहरान न हो, श्रम व शक्ति का अनावश्यक अपव्यय न हो, प्राप्त निष्कर्षों एवं किए हुए कार्यों का अन्य अनुसंधातागण लाभ उठाकर आगे बढ़ें, इस दृष्टि से समन्वय की आवश्यकता थी। शिक्षा निदेशालय, शिक्षा विभाग, राजस्थान ने इस समस्या को अनुभव किया तथा निदेशालय स्तर पर राज्य शैक्षिक शोध प्रकोष्ठ की स्थापना 1973 में की गई। प्रस्तुत कार्य राज्य शैक्षिक शोध प्रकोष्ठ की समन्वयक भूमिका का एक अंग है।

एम. एड. स्तर पर किए शिक्षानुसंधान के निष्कर्षों की वैधता एवं विश्वसनीयता संदिग्ध मानी जाती है। फलतः इनसे प्राप्त निष्कर्षों से लाभ उठाने में संकोच रहता है। फिर, शिक्षानुसंधान व्ययसाध्य, श्रमसाध्य एवं समयसाध्य होता है। एम.एड. छात्रों अथवा संस्थाओं को साधन की सीमाओं के कारण. न्यादर्श-चयन को समुचित रूप से व्यापक एवं प्रतिनिधि बनाने के मोह से बचने की विवशता उठानी पड़ती है। इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर वैध एवं विश्वसनीय अनुसंधान किए जा सकने की संभावना बढ़ सकती है, यदि इस प्रयोजन से विभिन्न स्तरों पर उपलब्ध साधन-सुविधाओं शोध-ज्ञान व कौशल का सामुदायिक रूप में नियोजन किया जाए। इस दिशा में जो इक्के-दुक्के प्रयोग हुए हैं, उनकी सफलता से शिक्षानुसंधान को सामूहिक स्तर पर लिए

जाने का औचित्य सिद्ध होता है। 1966 में विद्याभवन शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, उदयपुर में कतिपय एम. एड. शोधकर्ताओं ने विभिन्न सामाजिक परिवेश की स्थितियों में चल रहे माध्यमिक विद्यालयों पर शोध अध्ययन किया। संस्था-स्तर पर भी इसी प्रकार राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर तथा जिला शिक्षा निरीक्षणालय चित्तौड़गढ़ द्वारा 1972 में विद्यालय-संगम के भिन्न-भिन्न पक्षों को लेकर अध्ययन किए गए तथा निष्कर्षों को समाहित करके शोध-अध्ययन प्रस्तुत किया गया। ऐसे प्रयोग, विशेष रूप से व्यावहारिक समस्याओं को लेकर, और भी सफलतापूर्वक किए जा सकते हैं; किए जाने का औचित्य है, किए जाने अपेक्षित हैं—एम.एड. स्तर पर भी, संस्था-अभिकरण स्तर पर भी और जिला-शिक्षानुसंधाता वाक्पीठ स्तर पर भी। आयोजन एवं विश्लेषण संबंधी निर्णय मिल-बैठकर किए जा सकते हैं। साथ ही शिक्षानुसंधान संबंधी सूचनाओं के समुचित प्रकाशन-प्रसारण की महत्ता की ओर भी पिछले कुछ समय से ध्यान गया है तथा राज्य शैक्षिक शोध प्रकोष्ठ इस दिशा में सजग एवं प्रयत्नशील भी है।

कुल मिलाकर राजस्थान में शिक्षानुसंधान की स्थिति काफी सुदृढ़, व्यवस्थित तथा आशावादी दिखाई देती है। शिक्षानुसंधान के लिए अभिकरणों/संस्थाओं का एक व्यवस्थित ढाँचा खड़ा हो चुका है। कक्षा में कार्यरत शिक्षक के लिए भी शिक्षानुसंधान उपयोगी हो सके, शिक्षानुसंधान में निहित वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर सामान्य शिक्षक भी इन विधियों को अपनी रोजमर्रा की समस्याओं के समाधान के लिए प्रयुक्त कर सके, इस प्रयोजन से सुनियोजित प्रयत्न चल रहे हैं। शिक्षानुसंधाताओं को समुचित निर्देशन एवं प्रोत्साहन मिले, इसके लिए भी प्रयत्न चल रहे हैं। फिर भी आवश्यकता है कि इस क्षेत्र में प्रयत्न और व्यवस्थित हों, सम्पन्न प्रयत्नों का लाभ उठाते हुए आगे सुविचारित ढंग से गहन अध्ययन की नीति अपनाई जाए, तो राजस्थान शिक्षानुसंधान के क्षेत्र में और भी अधिक योगदान दे सकेगा—शिक्षा समस्याओं के समाधान के लिए आधार जुटा सकेगा।

शिक्षानुसंधान की आवश्यकता एवं महत्ता के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती जागरूकता एवं रुचि निश्चय ही शिक्षानुसंधान को उसके दायित्व-निर्वहन के अवसर प्राप्त कराने में सहायक हो सकेगी।

□ इन्द्रजीत खन्ना
□ डा० पन्नालाल वर्मा

शिक्षा-दर्शन एवं शिक्षा समाजशास्त्र

□ रवीन्द्र अग्निहोत्री
□ वीरेन्द्र सभरवाल

शिक्षा-दर्शन

शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र में अनुसंधान करने के इच्छुक व्यक्ति को सबसे पहले जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है, वह है—शिक्षा-दर्शन सम्बन्धी अनुसंधान के लिए उपयुक्त सैद्धान्तिक मॉडल। शोध करने के मॉडल जैसे अन्य कतिपय अनुशासनों के लिए उपलब्ध है, वैसे शिक्षा-दर्शन के लिए नहीं। संभवतः इसी कारण शिक्षानुसंधान के इस क्षेत्र में अन्य किसी भी क्षेत्र की अपेक्षा सबसे कम अनुसंधान हुए हैं। राजस्थान में किए गए शिक्षा-दर्शन सम्बन्धी अनुसंधान-कार्यों का सिंहावलोकन करने पर प्रथम अनुभूति यह होती है कि अनुसंधान की दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यन्त उपेक्षित रहा है। उपेक्षा का एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि इस क्षेत्र में अनुसंधान करने के लिए जिस वैचारिक परिपक्वता की आवश्यकता है, वह इस क्षेत्र में कई वर्षों तक कार्य करने के परिणाम-स्वरूप ही प्राप्त हो सकती है।

समीक्ष्य युग में (1974 तक) केवल तीन उपक्षेत्रों में ही कार्य हुआ, और वह भी इस शताब्दी के छठे दशक में : (क) दार्शनिकों के शिक्षा-दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन, (ख) शिक्षा की विभिन्न विचारधाराओं का ऐतिहासिक विकास परक अध्ययन, तथा (ग) विशिष्ट दार्शनिक विचारधाराओं पर आधारित शिक्षण संस्थाओं के कार्य का समीक्षात्मक अध्ययन। इस क्षेत्र में सर्वप्रथम माथुर (1953) ने शिक्षा की गुरुकुल पद्धति पर अध्ययन किया। उनके निष्कर्ष के अनुसार गुरुकुल पद्धति अपने प्राचीन मूल रूप में तो आधुनिक युग के लिए सर्वथा असंगत है, पर उसके कतिपय मूल्यों का आधुनिक शिक्षा पद्धति में समावेश करना संभव भी है और प्रकाम्य भी। वे मूल्य हैं—आत्मसंयम, ब्रह्मचर्य, परिश्रम-युक्त सादा जीवन, अध्यापक-विद्यार्थी के निकट सम्बन्ध, अनुशासन एवं चरित्र। गुप्ता (1955) ने भारत में बुनियादी शिक्षा के विकास का सर्वेक्षण करते हुए यह विश्वास व्यक्त किया कि भारत के लिए बुनियादी शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर एकमात्र अनुकूल शिक्षा पद्धति थी तथा इसका सीधा सम्बन्ध सामाजिक पुनर्रचना और राष्ट्रीय, नैतिक एवं बौद्धिक पुनरनुस्थापन से था। इसकी असफलता के दो मुख्य कारण थे—सुदृढ़ शैक्षिक आधार का अभाव तथा शिल्प के माध्यम से सभी विद्यालयी विषयों के अध्यापन की कठिनाई। योगेन्द्रजीत (1958) ने

रवीन्द्र नाथ टैगोर के शैक्षिक विचारों का विकासात्मक दृष्टि से अध्ययन किया। उनके अनुसार टैगोर का उद्देश्य था—अतीत और वर्तमान की उपलब्धियों का स्वस्थ और नवीन समन्वय। इसके लिए टैगोर ने धर्म को आध्यात्मिक अनुभूति की प्रक्रिया माना तथा भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने पर बल दिया, टैगोर के ये शैक्षिक विचार तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलनों के तथा सामाजिक जाग्रति के सर्वथा अनुकूल थे।

शिक्षा-दर्शन सम्बन्धी उपर्युक्त तीनों अनुसंधानों में दार्शनिक पक्षों के लिए जो गहन विवेचना अपेक्षित है, यहाँ उसका अभाव है।

सम्भावनाएँ और सुझाव

वर्तमान भारतीय समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र में निम्नलिखित आयामों में अध्ययनों की अधिक आवश्यकता है : (1) शिक्षा प्रक्रिया के विभिन्न आयामों के दार्शनिक निहितार्थ (जैसे—शैक्षिक उद्देश्यों का पुनर्स्थापन, पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियाँ, मूल्यांकन, निर्देश, शिक्षा का परिवेश) (2) विशिष्ट दार्शनिक विचारधाराओं पर आधारित शिक्षण-संस्थाओं के कार्यों का समीक्षात्मक अध्ययन, (3) आधुनिक—विशेषतया भारतीय दार्शनिकों के शिक्षा-दर्शन का आलोचनात्मक अध्ययन, अनुशीलन, व्याख्या एवं मूल्यांकन तथा (4) शिक्षानुसंधानों की दार्शनिक विवेचना। उल्लिखित सबसे अन्तिम आयाम को सबसे कम महत्व का न समझ लिया जाए। वस्तुतः शिक्षा सम्बन्धी सभी प्रश्न मूलतः दार्शनिक होते हैं। अतः शिक्षानुसंधान का मूल्यांकन दार्शनिक दृष्टिकोण से होना अपेक्षित है। निश्चय ही इस प्रकार के अध्ययन से शिक्षानुसंधान का सही दिशा निर्देश हो सकेगा।

शिक्षा समाजशास्त्र

यद्यपि ऐतिहासिक विकास-क्रम में शिक्षा के अन्तःसम्बन्धों की पहचान समाजशास्त्र की अपेक्षा दर्शन के प्रसंग में पहले हो गई थी, तथापि शिक्षानुसंधान की दृष्टि से, समीक्ष्य युग में, शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा शिक्षा समाजशास्त्र में शोधकार्य अधिक हुआ है। यदि शिक्षानुसंधान के अन्य क्षेत्रों के कार्यों से तुलना की जाए तो शिक्षा समाजशास्त्र के क्षेत्र में अभी कार्य कम ही हुआ है। इस क्षेत्र में अनुसंधान का श्रीगणेश वलिया (1953) ने किया था, और उसके बाद से इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई है। सन् 1953 से लेकर अब तक, बीच के केवल दो वर्षों (1963 तथा 1964) को छोड़ कर, इस क्षेत्र में निरन्तर शोधकार्य हो रहा है। सबसे अधिक शोधकार्य सन् 1966 में हुआ, जब शिक्षा-समाजशास्त्र के विविध पक्षों पर नौ अनुसंधान कार्य सम्पन्न हुए।

उपलब्ध शिक्षानुसंधानों की दृष्टि से शिक्षा समाजशास्त्र के जो प्रमुख उपक्षेत्र हो सकते हैं, वे हैं : समाजीकरण, सामाजिक व्यवस्था के रूप में विद्यालय, सामाजिक संरचना का संघटक विद्यालय, विद्यालयों पर सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक परिवर्तन तथा विद्यालय, विद्यार्थी समाज, भारतीय समाज, अध्यापक समाज, जनसंख्या प्रवृत्तियाँ, आर्थिक, सामाजिक तथा विभिन्न सामाजिक समूह।

भारतीय समाज को समझने का प्रयास करने वाली अन्य पाठ्यचर्याओं की तुलना में शिक्षाचर्या के क्षेत्र में अधिक अनुसंधान हुए है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा को समाजशास्त्र में जो रुचि लेनी चाहिए, वह शिक्षा के विद्यार्थी ले रहे हैं।

इन सभी अध्ययनों में प्रायः सर्वेक्षण विधि का ही प्रयोग किया गया है। न्यादर्श सोद्देश्य मगर आकस्मिक रहे है। अधिकांश अध्ययनों में न्यादर्श राजस्थान का ही है। केवल 4 प्रतिशत अध्ययन ऐसे हैं जिनमें राजस्थान से बाहर का भी न्यादर्श लिया गया है। अधिकांश अध्ययनों में माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालयों से न्यादर्श लिया गया और महाविद्यालय स्तर के न्यादर्श को लेकर 6 प्रतिशत अध्ययन किए गए हैं। सभी अध्ययन गुणात्मक हैं, सांख्यिकी कार्य इनमें अधिक नहीं किया गया है। सांख्यिकी कार्य जितना किया गया है वह विवरणात्मक है, निष्कर्षात्मक नहीं। किसी भी अध्ययन में उच्च सांख्यिकी पद्धतियों, जैसे—एफ रेशियो, अनालिसिस आफ वेरिएंस, नान पेरामीट्रिक सांख्यिकी आदि का प्रयोग नहीं मिला। समाजमितिक अध्ययनों में समाजमितिक उपकरणों का प्रयोग किया गया हैं।

दत्त सामग्री के संकलन के लिए प्रायः मानक उपकरणों का ही प्रयोग किया गया है। इनमें मुख्य हैं : सामाजिक-आर्थिक-स्तर मापनी, प्रश्नावली, साक्षात्कार (संरचित तथा असंरचित दोनों), प्रेक्षण अनुसूची, संप्राप्ति परीक्षाएँ। कुछ शोधकर्ताओं ने कतिपय अल्प प्रचलित उपकरणों का भी उपयोग किया है। जहाँ उपयुक्त उपकरण उपलब्ध नहीं हुआ वहाँ शोधकर्ताओं ने स्वयं भी आवश्यक उपकरणों का निर्माण किया हैं।

समाजीकरण

समाजीकरण संबंधी अध्ययनों के अन्तर्गत श्रीमाली (1954) ने ग्रामीण और शहरी परिवेश के बालकों की बुद्धि पर पड़ने वाले आर्थिक-सामाजिक कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने पर पाया कि चाहे ग्रामीण क्षेत्र हों चाहे शहरी, अच्छे आर्थिक परिवेश से आने वाले बालक शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ हैं, शहरी बच्चों की संवेगात्मक स्थिरता ग्रामीण बालकों की अपेक्षा अच्छी है, पर चारित्रिक विकास की दृष्टि से शहरी तथा ग्रामीण बालकों में कोई अन्तर नहीं है। ऐसे ही तथ्य जैन (1966) व हीरानंदानी (1966) के अध्ययनों में मिलते हैं कि माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने वाले उच्च-स्तरीय परिवारों के बालक-बालिकाओं में शैक्षिक संप्राप्ति की अभिप्रेरणा का कारण है—उन परिवारों में शिक्षा को अधिक महत्व देना। टिक्कू (1966) द्वारा स्नातक महाविद्यालय में किए गए अध्ययन से एक ओर उपर्युक्त अध्ययन की पुष्टि होती है, पर दूसरी ओर यह भी ज्ञात होता है कि मध्यम सामाजिक स्तर से तथा ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले छात्र अन्य सामाजिक स्तरों के तथा शहरी छात्रों की अपेक्षा अधिक अच्छी शैक्षिक संप्राप्ति वाले हैं। भागीरथ सिंह (1959) ने अस्पृश्यता सम्बन्धी अभिवृत्ति के अध्ययन से यह सिद्ध किया कि बालक माता-पिता द्वारा दंडित होने के भय से अस्पृश्यता का पालन करते हैं। इस दृष्टि से वे अपने वर्ग के सामाजिक मानकों द्वारा प्रभावित होते हैं। भाटिया (1967) ने बालकों के समाजीकरण के सन्दर्भ में यह पता लगाया कि

माता-पिता की आयु जितनी कम होती है, बच्चों के समाजीकरण में उनकी भूमिका उतनी ही अधिक साधनमूलक एवं संवेगात्मक होती हैं। बड़ी आयु वालों की अपेक्षा छोटी आयु वाले माता-पिता अधिक साधनमूलक भूमिका निभाते हैं। सुशिक्षित माताओं की अपेक्षा अल्प शिक्षित माताएँ अधिक संवेगात्मक होती हैं।

सामाजिक संरचना से ही संबंधित अन्य तीन अध्ययनों में माध्यमिक विद्यालयों का शहरी (भंडारी 1966), ग्रामीण (सक्सेना 1966) तथा आदिवासी (दुबे 1966) परिवेश में अध्ययन किया गया। तीनों ही अध्ययनों में एक सर्वनिष्ठ निष्कर्ष यह मिलता है कि शहरी, ग्रामीण और आदिवासी—तीनों ही प्रकार की सामाजिक संरचनाओं में उच्चवर्गीय छात्रों की शैक्षिक संप्राप्ति निम्नवर्गीय छात्रों की अपेक्षा अधिक है, और सामाजिक संभाग में भी ये उच्चवर्गीय छात्र अधिक सक्रिय हैं। दुबे ने एक अन्य निष्कर्ष यह भी निकाला है कि ग्रामीण क्षेत्रों के छात्र सामाजिक संभाग और सामाजिक व्यवहार दोनों ही बातों में शहरी छात्रों की अपेक्षा गुणात्मक एवं संख्यात्मक दृष्टि से बेहतर हैं।

सामाजिक व्यवस्था के रूप में विद्यालय

सामाजिक व्यवस्था के रूप में विद्यालय सम्बन्धी अनुसंधानों में अन्तःक्रिया का अध्ययन भी किया गया है। माथुर (1965) के अनुसार छात्रावासों में लड़कियों के व्यक्तित्व का जो विकास होता है वह शहरी-ग्रामीण, शिक्षित-अशिक्षित जैसे अभिधानों से विशेषित नहीं होता। मोदी (1967) ने छात्रावास की सामाजिक व्यवस्था में औपचारिक एवं अनौपचारिक सम्बन्धों की व्यवस्था पर बल दिया, मगर पाण्डेय (1972) ने समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित छात्रावासों का वातावरण शैक्षिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं पाया। शिक्षण संस्थाओं के वातावरण पर गैर-शैक्षणिक कारकों का अध्ययन करने पर दशोरा (1969) ने पाया कि विद्यार्थी परिषदें विद्यालयों में जनतन्त्रीय आदर्शों का पोषण करने में असमर्थ रही हैं। ये परिषदें राजनैतिक दलों की आर्थिक सहायता से अवांछित हथकण्डे अपनाती हैं। त्यागी (1972) ने सगे भाई-बहनों के मध्य स्पर्धा और विद्यालय की परिस्थितियों पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का अध्ययन करके आक्रामकता, निर्भीकता, संरक्षकों के प्रति असन्तोष आदि को स्पर्धा का ही प्रतिफलन बताया। इसी आधार पर उन्होंने अध्यापकों तथा संरक्षकों के लिए बच्चों के प्रति स्नेह, सहिष्णुता और सहानुभूति युक्त व्यवहार करने की आवश्यकता पर बल दिया। पालीवाल (1961) ने सांस्कृतिक संरचना का अध्ययन करते हुए विद्यालय द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित चार मान्यताओं को विद्यालय की संस्कृति का आधार बताया : (1) मानव व्यक्तित्व के लिए सम्मान, (2) स्वतन्त्रता, (3) समुदाय सेवा द्वारा आत्म-परितोष तथा (4) सर्जना-जन्य आनन्द। तोमर (1968) ने उच्च संप्राप्ति तथा निम्न संप्राप्ति वाले विद्यालयों के सामाजिक वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन करके यह सिद्ध किया कि विद्यालय में मानवीय सम्बन्ध छात्रों के संप्राप्ति स्तरों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं।

सामाजिक संरचना का घटक : विद्यालय

शहरी सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में उच्च प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यानुभव सम्बन्धी कार्यक्रम के क्रियान्वयन पर अभी तक केवल एक ही अध्ययन हुआ (द्विवेदी, 1974)। इस अध्ययन द्वारा ये तथ्य प्रकाश में आए कि निम्न आय वाले परिवारों के छात्र कार्यानुभव कार्यक्रम में उच्च आय वाले परिवारों के छात्रों की अपेक्षा अधिक रुचि लेते हैं। कार्यानुभव कार्यक्रम में विद्यार्थियों की जो रुचि उच्च प्राथमिक स्तर पर होती हैं, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर वह क्रमशः घटती जाती है। पारिवारिक आय में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों भी कार्यानुभव कार्यक्रम में रुचि का ह्रास होता जाता हैं। कार्यानुभव कार्यक्रम में अपेक्षित सफलता न मिलने का प्रधान कारण है : कार्यानुभव कार्यक्रम एवं स्वतन्त्र व्यवसायों के बीच अपेक्षित सम्बन्ध का अभाव और कार्यानुभव कार्यक्रम की विद्यालयी कार्यक्रम का अभिन्न अंग न बनाना।

सामाजिक संरचना के एक अन्य आयाम विद्यालय और समुदाय के सहयोग को लेकर पांड्य (1960) ने वड़गाँव खण्ड में तथा व्यास (1966) ने उदयपुर जिले में विद्यालय और समुदाय संबंधों के अध्ययन द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि ग्रामीण क्षेत्रों में दोनों के संबंधों में निकटता है और वे परस्पर सहयोग के लिए तत्पर रहते हैं, परन्तु शहरी वातावरण में स्थिति इसके विपरीत है। इसके अतिरिक्त शहरी वातावरण में सामाजिक मान्यताएँ भिन्न होने के कारण अध्यापकों को उनकी शैक्षिक-व्यावसायिक योग्यताओं के आधार पर सम्मान दिया जाता है, जबकि ग्रामीण वातावरण में ऐसी स्थिति नहीं होती।

विद्यालयों पर सामाजिक नियंत्रण

विभिन्न सामाजिक वर्ग, सामाजिक समूह, जातीय समूह तथा शिक्षा से संबंधित चार आयामों में जो शोधकार्य हुए हैं, वे हैं : भील जाति से संबंधित अध्ययन (कैलाश चन्द 1958, हड़पावत 1967, लाल 1969); महिला वर्ग संबंधी अध्ययन (गुलाटी 1953, कुलश्रेष्ठ 1967, और भण्डारी 1974,); विभिन्न सामाजिक वर्गों की समस्याओं का अध्ययन (परवानी 1954, शर्मा 1970, मीढ़ा 1974, सुन्नू जाल 1974); और शिक्षा के प्रति ग्रामवासियों की अभिवृत्ति का अध्ययन (चौधरी 1957, झा 1961)। इनमें से भी बालक-बालिकाओं की शिक्षा से संबंधित अध्ययनों से ज्ञात होता है कि यद्यपि शिक्षा के परिणामस्वरूप भील बालकों के दृष्टिकोण में, व्यक्तिगत जीवन में तथा विचारों में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है (कैलाश चन्द) तथापि भील बालिकाओं का दृष्टिकोण अभी भी रुढ़िवादी हैं, वे जातीय बंधनों से मुक्त नहीं हो सकी हैं (लाल)। भील छात्रों की समाजोजन संबंधी समस्याओं का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि वे प्रायः अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं, अन्य लोगों से सामाजिक मेलजोल वे प्रायः नहीं बढ़ाते। आधुनिक शिक्षा के अनेक विषयों में विशेषतया अंग्रेजी और गणित में उन्हें अधिगम संबंधी विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है (हड़पावत)।

महिला वर्ग संबंधी अध्ययनों के माध्यम से इस क्षेत्र की महिलाओं की शैक्षिक स्थिति का, तथा शिक्षित महिलाओं की और कार्यरत महिलाओं की, उनके शिशुओं संबंधी समस्याओं का पता चलता है। सामान्य शिक्षा की भाँति ही महिला शिक्षा की अधिकांश शैक्षिक सुविधाएँ शहरों में ही केंद्रित हैं, अतः ग्रामीण महिलाओं का बहुत बड़ा वर्ग शिक्षा से वंचित रह जाता है। इस कारण महिलाएँ पिछड़ी हुई हैं। उनके पिछड़ेपन के कुछ अन्य प्रमुख कारण हैं : अल्पायु में विवाह, परिणामतः अल्पायु में ही मातृत्व की प्राप्ति, स्त्रियों के गुरुतर पारिवारिक दायित्व आदि (गुलाटी)। शिक्षित एवं कार्यरत महिलाओं की संतान संबंधी समस्याओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि सन्तति का पालन-पोषण कार्यरत महिलाओं की कार्यदक्षता में स्पष्ट रूप से बाधक है, पर ये महिलाएँ इस कठिनाई को समस्या नहीं मानतीं और कार्यरत बने रहना चाहती हैं (कुलश्रेष्ठ)। इस तथ्य की पुष्टि भंडारी (1974) द्वारा किए गए अध्ययन से भी होती है। इस अध्ययन से यह भी पता चलता है कि शिक्षित महिलाएँ नौकरी करना चाहती हैं क्योंकि परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उन्हें इसकी आवश्यकता है। ये सोचती हैं कि नौकरी करने पर उन्हें समाज में अधिक सम्मान मिल सकेगा। श्रीवास्तव (1957) के अनुसार बरेला आदिम जाति में किशोर आयु के लड़के-लड़कियों में कोई कठोर विभेद नहीं किया जाता। दूसरी वरीयता पाने के बावजूद ये लड़कियाँ पिता के घर में अपने को अत्यंत सुरक्षित अनुभव करती हैं। भारतीय समाज की संरचना के संबंध में राजपूत (1965) ने मालूम किया कि संयुक्त परिवारों से आने वाली छात्राएँ इस संयुक्त व्यवस्था को पसंद नहीं करतीं। उन्हें न तो अपनी पसंद का विवाह करने की अनुमति मिलती है, न शैक्षिक यात्राओं पर जाने की, और न विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेने की। अनेकों को जेब खर्च भी नहीं मिलता। अनेक लड़कियाँ अपने संरक्षकों को अपनी समस्याएँ बताना चाहती हैं, पर बता नहीं पातीं। अनेकों की इच्छा अंग्रेजी नृत्य एवं अंग्रेजी गीत सीखने की होती है, पर संरक्षकों के बन्धनों के कारण वे सीख नहीं पातीं। अनेक लड़कियों की अनुभूति यह है कि घर के धार्मिक कृत्यों में भाग लेने के लिए उन्हें विवश किया जाता हैं। इन विविध कारणों से किशोरियों के संबंध अपने संरक्षकों के साथ मधुर नहीं रहते।

विभिन्न सामाजिक वर्गों की समस्याओं से संबद्ध अध्ययनों के अन्तर्गत राजस्थान में आ जाने वाले पंजाबी, सिन्धी, पश्तो, बंगला, कश्मीरी आदि विभिन्न भाषा-भाषी शरणार्थियों की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन करते हुए परवानी (1954) ने सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों को सर्वथा अपर्याप्त पाया। अध्यापक-विद्यार्थी अनुपात 1:60 स्वीकार करते हुए उन्होंने एक ऐसी योजना प्रस्तावित की जिसके आधार पर सभी शरणार्थियों के बच्चों को शिक्षा सुलभ हो सके। ग्रामीण छात्रों द्वारा शहरी विद्यालयों में अनुभव की जाने वाली समायोजन-समस्याओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता हैं कि आर्थिक कठिनाइयाँ, अध्यापकों की उपेक्षावृत्ति, आवासीय असुविधाएँ आदि ऐसे कारक हैं जो ग्रामीण विद्यार्थियों के (शहरी वातावरण में) समायोजन में बाधक बनते हैं। अतः उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने की तथा अनुदान एवं छात्रवृत्ति द्वारा उनकी

आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने की आवश्यकता है (शर्मा 1970)। प्रवासी परिवारों के छात्रों की समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करते हुए मीढ़ा (1974) ने इस तथ्य पर बल दिया है कि सभी प्रवासी परिवारों के छात्र पारिवारिक प्रव्रजन के कारण समान रूप से प्रभावित नहीं होते, केवल अधिक संवेदनशील छात्र ही अपने को नवीन परिवेश में समायोजित करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। उनकी मुख्य कठिनाइयाँ आर्थिक अभाव एवं पारिवारिक मनमुटाव सम्बन्धी होती हैं। जनजाति परिवारों के तथा शहरी सम्पन्न परिवारों के छात्रावासी बालकों के समायोजन सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन से जनजातीय छात्रों की समयोजन सम्बन्धी कठिनाइयों की जानकारी मिलती हैं (सुन्नू जाल, 1974)।

शिक्षा के प्रति ग्रामवासियों की अभिवृत्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि ग्रामवासियों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ है, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में छात्रों की संख्या कम होने का कारण यह है कि शैक्षिक पाठ्यक्रम ग्रामीण परिवेश की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। इस तर्क को पुष्ट करने वाला एक अप्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि ग्रामवासी प्रौढ़ शिक्षा के कार्यक्रमों में अधिक रुचि लेते हैं क्योंकि ये कार्यक्रम सामान्य विद्यालयी पाठ्यक्रम की अपेक्षा ग्रामवासियों को अधिक सार्थक प्रतीत होते हैं (चौधरी 1957)। इन निष्कर्षों की पुष्टि झा (1961) द्वारा भी होती है। ग्रामीण समुदाय अनुभव करता है कि कृषि, पशु-पालन तथा ग्रामीण जीवन के अन्य पक्षों से सम्बन्धित कार्यक्रमों में अपेक्षित परिवर्तन किए जाएँ, पर शिक्षकगण पाठ्यक्रम की जड़ता यथावत बनाए रखना चाहते हैं। इन आवश्यकताओं के अतिरिक्त ग्रामीण जनता धार्मिक शिक्षा के पक्ष में है, जबकि आधुनिक शिक्षा "धर्म-निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण" विकसित करने का प्रयास करती है (झा)।

भारतीय समाज : अध्यापक समाज

समग्र शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है—अध्यापक। जिस प्रकार शिक्षा सामाजिक परिवेश से प्रभावित होती है और उसे प्रभावित करती है, उसी प्रकार शिक्षक भी अपने सामाजिक परिवेश से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित करता भी है।

आधुनिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक-आर्थिक स्तर को विशेष महत्व दिया जाता है। इसी कारण अधिकांश शोधकर्ताओं ने इसी आयाम को शोध का विषय बनाया है। उन अध्ययनों के न्यादर्श में अध्यापक वर्ग के सदस्य ही थे, कोई भी अध्ययन तुलनात्मक नहीं था। सभी अध्ययनों में यह पाया गया कि अध्यापकों जैसी ही शैक्षिक योग्यता वाले दूसरे व्यवसायों के व्यक्तियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर अध्यापकों से अच्छा है। यह देखकर अध्यापकों में व्यावसायिक असन्तोष बढ़ा है (शर्मा 1954, ठाकुर 1962, मिश्र 1969, सिसोदिया 1972)। अध्यापकों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को प्रभावित करने वाले दो अन्य प्रमुख कारक हैं : अध्यापकों के लिए समाज में सम्मान का अभाव तथा अध्यापकों का बार-बार स्थानान्तरण। दो अन्य तथ्य भी प्रकाश में आए

हैं। एक यह कि माध्यमिक विद्यालयों के, विशेषतया निजी संस्थाओं के अध्यापक, ऋणग्रस्त हैं और दूसरा यह है कि अध्यापक वर्ग भोजन की अपेक्षा अपनी सन्तान की शिक्षा पर अधिक खर्च करता है (शर्मा 1954)। अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षण व्यवसाय चुने जाने के दो कारकों की ओर सुखवाल (1971) ने संकेत किया है। एक तो यह कि लगभग 90% अध्यापिकाएँ अपनी शैक्षिक योग्यता सुधारने के लिए इस व्यवसाय को चुनती हैं, और दूसरा यह कि इस व्यवसाय द्वारा उन्हें समाज सेवा के भी अवसर प्राप्त होते हैं। परन्तु स्याल (1955) तथा वर्मा (1967) द्वारा सुखवाल के निष्कर्ष का समर्थन नहीं होता। स्याल और वर्मा के अनुसार सभी अध्यापिकाएँ आर्थिक दबावों के कारण ही इस व्यवसाय को चुनती हैं। अध्यापकों की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं पर केवल एक ही अध्ययन किया गया है, और वह अध्यापिकाओं के सम्बन्ध में हुआ है, वर्मा (1967) द्वारा। इसके अनुसार अविवाहित अध्यापिकाओं की मुख्य समस्या है—मानसिक अशान्ति। विवाहित अध्यापिकाओं की समस्याएँ दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी हैं। दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी कितनी समस्याएँ इस व्यवसाय में आने से पूर्व थीं और कितनी इसमें प्रवेश करने का परिणाम हैं, यह कहने की स्थिति नहीं बनती। विधवा अध्यापिकाओं की दो मुख्य समस्याएँ सामने आईं; एक तो मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव और दूसरी अस्वस्थता। इन समस्याओं का सामना अविवाहिताएँ भी कर रही हैं। अविवाहित, विवाहित और विधवा तीनों ही प्रकार की अध्यापिकाएँ अनुभव करती हैं कि उनका सामाजिक स्तर निम्नतर है, उनकी आर्थिक स्थिति निम्नतर है और उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण प्रतिकूल हैं।

राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा पंचायत राज के अधीन है। उस पर एक वृत्त अध्ययन भी हुआ है (जैन 1969)। इस अध्ययन के द्वारा नव-विकेन्द्रित व्यवस्था में प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की समस्याओं का पता लगा। इनमें से कुछ समस्याएँ जो प्रकाश में आईं, वे थीं : पदोन्नति के सीमित अवसर, निम्न वेतनमान, आवासीय सुविधाओं का अभाव, बार-बार स्थानान्तरण, मनोरंजन के साधनों का अभाव, निम्न सामाजिक सम्मान आदि। अध्यापकों की अवकाशकालीन प्रवृत्तियों पर केवल एक अध्ययन किया गया है (मुरारीदान सिंह 1966)। शोधकर्त्ता के अनुसार अधिकांश अध्यापक और अध्यापिकाओं को औसतन तीन-चार घण्टे तक दैनिक अवकाश प्राप्त था। इनकी अवकाशकालीन प्रवृत्तियाँ प्रायः चार प्रकार की थीं—(1) अध्ययन सम्बन्धी (2) खेल-कूद सम्बन्धी (3) बागवानी सम्बन्धी और (4) अपनी संतान को शिक्षा देने से सम्बन्धित। अधिकांश अध्यापक धार्मिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक समितियों के सदस्य नहीं थे। अध्यापकों का आर्थिक संकोच मनोरंजन के अच्छे साधन प्राप्त करने में बाधा उपस्थित करता था। उनकी अवकाशकालीन प्रवृत्तियों में भिन्नता के कारक थे—आयु, लिंग और सामाजिक-आर्थिक स्थिति।

विद्यार्थी समाज

विद्यार्थी समुदाय, विद्यालय एवं समाज से सम्बन्धित अध्ययनों के मुख्य आयाम हैं : (क) विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि (दलिया 1953, डक 1974),

(ख) विद्यार्थियों के परिवारों की संरचना (पाटीदार 1971) (ग) विद्यार्थियों की व्यावसायिक आकांक्षाएँ (दीवान 1973), (घ) विद्यार्थियों के प्रजातांत्रिक मूल्य (भंगू 1972) तथा (ङ) विद्यालय में किशोर छात्रों का असन्तोष (वर्मा 1971)।

विद्यार्थी समुदाय को सामाजिक पृष्ठिभूमि से सम्बन्धित करके दलिया (1953) ने विद्याभवन उदयपुर तथा दून स्कूल देहरादून के छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठिभूमि का अध्ययन किया। दून स्कूल के लगभग सभी छात्र उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारों से आते थे, जबकि विद्याभवन के 50% छात्र निम्न तथा निम्न-मध्य वर्ग से थे। शेष 50% अन्य सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले परिवारों से आते थे। डक (1974) ने अपने अध्ययन में प्राथमिक विद्यालय के छात्रों व अध्यापकों की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया। शोधकर्त्ता के अनुसार बालक मध्यम परिवारों से आते थे, और अधिकांश बालकों के माता-पिता उन्हें किसी न किसी राजकीय सेवा में भेजना चाहते थे। विद्यार्थियों की पारिवारिक संरचना से सम्बन्धित केवल एक अध्ययन उपलब्ध हुआ है (पाटीदार 1971), वह भी शिक्षा-स्नातक छात्राध्यापकों का। इस अध्ययन से ज्ञात होता है कि अधिकांश छात्राध्यापक संयुक्त परिवारों से तथा ग्रामीण क्षेत्रों से थे, जबकि अधिकांश छात्राध्यापिकाएँ एकल परिवारों से तथा शहरी क्षेत्रों से। छात्रों की तुलना में छात्राओं का सामाजिक-शैक्षिक स्तर बेहतर था। विद्यार्थियों की व्यावसायिक आकांक्षाओं पर संरक्षकों के शैक्षिक स्तर का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी आकांक्षाएँ उनके वर्ग के मूल्यों से प्रभावित होती हैं (दीवान 1973)। विद्यार्थियों के प्रजातांत्रिक मूल्यों के सम्बन्ध में किए गए अध्ययन से ज्ञात होता है कि शहरी विद्यार्थियों की अपेक्षा ग्रामीण विद्यार्थियों तथा लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में प्रजातांत्रिक मूल्यों के प्रति निष्ठा अधिक होती है। सामाजिक-आर्थिक स्तर और शैक्षिक संप्राप्ति एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों में कोई महत्वपूर्ण सहसम्बन्ध नहीं है, पर मानसिक योग्यता का प्रजातांत्रिक मूल्यों के साथ अनुकूल सम्बन्ध है (भंगू 1972)। विद्यालय में किशोर छात्रों के असन्तोष का अध्ययन करते हुए वर्मा (1971) ने निम्नलिखित कारकों की तरफ ध्यान आकृष्ट किया : (क) अध्यापक-छात्र के बीच अस्वस्थ सम्बन्ध, (ख) शैक्षिक क्रियाओं के प्रति अध्यापकों की उपेक्षा, (ग) विद्यालयी जीवन में राजनैतिक हस्तक्षेप तथा (घ) विद्यार्थियों के समुचित विकास के लिए सुविधाओं का अभाव।

विकलांगों की शिक्षा से सम्बन्धित केवल एक अध्ययन प्रकाश में आया है (हिंडसा 1955), जिससे ज्ञात होता है कि स्वतन्त्रता से पूर्व इस दिशा में कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया गया था। भारत में विकलांगों की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। इसका एक प्रमाण यह है कि विकलांगों के एक वर्ग (अन्धों) के लिए सन 1955 तक सारे भारत में केवल 40 विद्यालय थे जिनमें 1500 विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। एक ओर तो विद्यार्थियों की यह संख्या सर्वथा अपर्याप्त है, दूसरी ओर दुखद स्थिति यह है कि इन विद्यालयों में शिक्षा-प्राप्त विकलांगों के लिए रोजगार उपलब्ध नहीं हैं। जो साधन उपलब्ध हैं, प्रचार की कमी के कारण उनका आवश्यक दोहन

नहीं हो पाया है। ये विकलांग समाज के सांस्कृतिक जीवन में सहज रूप से भाग ले सकें, ऐसा प्रयास किया जाना चाहिए।

सम्भावनाएँ एवं सुझाव

शिक्षा समाजशास्त्र के कई क्षेत्र सर्वथा उपेक्षित रहे हैं, जिन क्षेत्रों में कुछ कार्य हुआ है, उनके भी अनेक आयाम उपेक्षित रह गए हैं। समाजीकरण के अन्तर्गत अनौपचारिक अभिकरणों के साथ तुलना के लिए मूल्यों के एवं निष्ठाओं के विकास पर तथा उनके विकास में बाधक कारकों पर भी अभी अध्ययन नहीं हुआ है। भारतीय समाज की संरचना में केवल परिवार का अध्ययन किया गया, शेष सभी संघटक अभी अध्ययन किए जाने की प्रतीक्षा में हैं। विभिन्न सामाजिक वर्ग, सामाजिक समूह, जातीय समूह तथा शिक्षा के अन्तर्गत अनुसूचित जनजातियों में, मुख्यतया भीलों के बारे में ही अध्ययन किए गए हैं। राजस्थान में अन्य भी अनुसूचित जनजातियाँ हैं; शिक्षा ने उन्हें कितना प्रभावित किया है, इसका भी अध्ययन होना चाहिए। विकलांगों की शिक्षा के क्षेत्र का विविध आयामों में अध्ययन किया जाना चाहिए। मूक, वधिर, अपंग, अपाहिज व्यक्तियों को शिक्षा देकर इस योग्य बनाना आवश्यक है कि वे सामाजिक कार्यों में संभागी बनकर सम्मानपूर्ण जीवन जी सकें। इस दृष्टि से उनकी समस्याओं की, और उस मंजिल तक पहुँचने के रास्ते के अवरोधकों की पहचान करनी आवश्यक है। जिन विषयों पर अनुसंधान हो चुका है, उनमें से अनेक क्षेत्रों के ज्ञान को अद्यतन बनाने के लिए पुनः अनुसंधान अपेक्षित हैं।

यह सत्य है कि उल्लिखित उपेक्षित क्षेत्रों में अनुसंधान सरल नहीं है, पर यह भी सत्य है कि यह आवश्यक है। यह शोधकर्त्ताओं के लिए एक चुनौती है। इधर जो कुछ भी तथ्य विद्यालय-समाज के बारे में, पारस्परिक अन्तः प्रक्रियाओं के बारे में, अध्यापकों की सामाजिक स्थितियों के, उनकी व्यावसायिक कुशलता पर प्रभाव के संबंध में प्रकाशित हुए हैं, उन्हें उपेक्षित करके कोई भी व्यवस्था शैक्षिक सुधार का दावा नहीं कर सकती। इन शिक्षानुसंधानों के तथ्यों को सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों में परख कर उनका उपयोग भविष्यमिति में करना आवश्यक है।

सन्दर्भांकित अनुसंधान

कुलश्रेष्ठ, स्नेहलता : Problems of Educated Working Women with Special Reference to Their Children, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

कैलाशचन्द : Education of Bhil Children in Vidya Bhawan, Udaipur, M. Ed., Raj. Uni., 1958

खान, इशहाक मोहम्मद : Investigation into School Attitudes (Social Distance) of High School Boys and Girls of Udaipur City, M. Ed., Raj. Uni., 1956

गंगावत, बालकृष्ण : गुरुकुल व आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्राथमिक स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1972

गुप्ता, हजारीलाल : Growth of Basic Education in India,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

गुलाटी, जी.के. : The Educational Backwardness of Women in Udaipur Division,
M. Ed., Raj. Uni., 1953

चौधरी, जहानसिंह : Social Survey of the Village Bedla with Special Reference to the Villagers' Attitude towards Education,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

जैन, बाबूलाल : A Boys' Higher Secondary School in Social Structure of a Small Pilgrim Town,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

जैन, श्यामलाल : A Study of Primary Education in Panchayat Raj (Local Self Government): A Case Study,
M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1969

जोशी, रविकान्त : A Comparative Study of the Socio-Economic Conditions of the Student Teachers of Vidya Bhawan Handicraft Institute and E. C. Ed.,
M. Ed., Udaipur Uni., 1973

झंवर, बंशीलाल : छात्रों का समाजमितिक स्तर और उसका छात्र अध्यापन सम्बन्ध पर प्रभाव,
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1970

झा, आर. के. : Outcomes of Education as viewed by the Rural Community,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

टिक्कू, दुलारी : A Degree College in the Social Structure of a Small Pilgrim Town,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

ठाकुर, जितेन्द्रसिंह : Changing Socio-Economic Status of Teachers after 1947,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

डक, प्रेम : Social Background of Guardians, Teachers and Students in Primary Education,
M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1974

त्यागी, राजकिशोर : सगे भाई-बहनों में प्रतिस्पर्द्धा भावनाओं का अध्ययन एवं उनका शाला परिस्थितियों में प्रभाव,
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

तोमर, रणजीतसिंह : A Comparative Study of Social Climate Factors of Low Achiever and High Achiever Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

दलिया, विद्यासागर : The Socio-Economic Background of Children in Vidya Bhawan and Other Indian Public Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1953

दशोरा, यमुनाशंकर : Influence of Political Parties on Students' Unions of the Colleges of Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

द्विवेदी, गंगास्वरुप : बीकानेर शहर के उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में कार्यानुभव योजना की क्रियान्विति का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1974

दीवान, रीता : Occupational Aspirations of Youth in an Urban Setting : A Field Work Report,
M. A. (Sociology), Raj. Uni., 1973

दुबे, उमेशचन्द्र : A Mixed Higher Secondary School in the Social Structure of a Town in Tribal Area,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

परवानी, चेतनदास : Educational Problems of the Refugees in Rajasthan,
M. Ed., Raj. Uni , 1954

पाटीदार., विजयपाल : शिक्षा-स्नातक छात्राध्यापकों के पारिवारिक प्रारूप का अध्ययन,
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1971

पाण्डेय, रामस्वरूप : समाज कल्याण विभाग, राजस्थान द्वारा संचालित छात्रावासों के सामाजिक एवं भावात्मक वातावरण का मनोवैज्ञानिक अध्ययन,
एम. एड., राज. वि.वि., 1972

पाण्ड्य, त्रिभुवनपट : The Mutual Contribution of School and Community in Badgaon Block,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

पालीवाल, शंकरलाल : The Culture Pattern of a School,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

भंगू, जसवन्तसिंह : A Study into Democratic Values of Ninth Class Students and their Relationship with the Mental Ability, Academic Achievement and Socio-Economic Status of these Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

भंडारी, प्रमिला : A Sociological Study of the Problems of Educated Women,
M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1974

भंडारी, विजयसिंह : A Boys' Higher Secondary School in the Social Structure of a City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

भागीरथसिंह : Attitudes of School Children towards Untouchability,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

भाटिया, विमल	:	Instrumental and Expressive Roles of Parents in the Socialization of their Children, M. S. W., Udaipur Uni., 1967
भार्गव, प्रेमनारायण	:	Human Relationship in the Classroom : An Exploratory Study in Sociometry, M. Ed., Raj. Uni., 1965
माथुर, इन्दुबाला	:	Life and Culture of the Teenagers : A Study of the Inmates of a Girls Hostel, M. A. (Sociology), Raj. Uni., 1965
माथुर, विजयबिहारीलाल	:	The Gurukul System of Education, M. Ed., Raj. Uni., 1953
मीढ़ा, सुशीला	:	Adjustment of Children from Migrated Families : Some Case Studies, M. Ed., Raj. Uni., 1974
मिश्रा, शशिप्रभा	:	A Study of the Socio-Economic Status and Teachers' Attitudes toward Education, M. Ed., Raj. Uni., 1969
मुरारीदानसिंह	:	An Investigation into the Leisure-time Activities of Secondary School Teachers of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1966
मोदी, इन्दुबाला	:	The Social System of Girls Hostel : A Study in Social Interaction, M. A. (Sociology), Raj. Uni., 1967
योगेन्द्रजीत	:	Educational Thoughts of Ravindra Nath Tagore, M. Ed., Raj. Uni., 1958
राजपूत, कुसुम	:	A Study of Harmony and Dis-harmony between Parents and their School-going Adolescent Girls, M. Ed., Udaipur Uni., 1965
लाल, रुबेका डी.	:	Education of Bhil Girls in Middle and Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
वर्मा, गिरधारीलाल	:	किशोर छात्रो में व्याप्त विद्यालय सम्बन्धी असंतोष के कारणों का एक अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1971
वर्मा, विद्योतमा	:	A Survey of Personal and Social Problems of Lady Teachers in Elementary Schools, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
व्यास, लक्ष्मीनारायण	:	School Community Relationship in Higher Secondary Schools of Udaipur District, M. Ed., Udaipur Uni., 1966
शर्मा, दाऊलाल	:	ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की शहरी विद्यालयों में समायोजन की समस्याएँ, एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1970

शर्मा, शिवकुमार : The Socio-Economic Status of Secondary School Teachers in Udaipur City,
M. Ed., Raj. Uni., 1954

श्रीमाली, नन्दकिशोर : Influence of Socio-Economic Factors of the Environment on the Growth of Children,
M. Ed., Raj. Uni , 1954

श्रीवास्तव, चम्पा : A Study of Some Aspects of Growing-up of Adolescent Barela Girls,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

सक्सेना, श्रीराम : A Study of Mixed Higher Secondary Schools in the Rural Social Structure,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

स्याल, सावित्री : The Socio-Economic Condition of Secondary School Women Teachers in Bikaner City,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

सिसोदिया, जगमल : **एस. टी. सी. छात्राध्यापकों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1972

सुखवाल, कैलाशदेवी : **अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षण व्यवसाय के चयन के कारण,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1971

सुन्नुजाल : Adjustment of Hostel Boys from Affluent Homes and Tribal Homes in School,
M. Ed., Udaipur Uni., 1974

हड़पावत, कन्हैयालाल : Adjustment Problems of Bhil Students in Secondary and Higher Secondary Schools of Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

हिडसा, हरिसिंह : The Education of the Handicapped in India,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

हीरानन्दानी, देविका : A Comparative Study of Girls' and Boys' Secondary Schools in the Social Structure of Two Small Pilgrim Towns,
M. Ed , Udaipur Uni., 1966

□

शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें

□ डा. श्यामलाल कौशिक
□ पुरुषोत्तम लाल तिवारी

यद्यपि राजस्थान राज्य में राज्य स्तरीय शिक्षा नीति 1949 में लागू हो चुकी थी तथा पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों का राष्ट्रीयकरण 1952 में ही प्रभावशील हो गया था, किन्तु शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों से सम्बन्धित अनुसंधान कार्यों का आरंभ 1954 में होने का प्रमाण मिलता है। 20–21 वर्ष की अवधि में अर्थात् 1974 तक इस क्षेत्र में 44 अनुसंधान कार्य सम्पन्न हुए जो क्षेत्रगत व्याप्ति की दृष्टि से सामान्य शिक्षाक्रम, भाषागत पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों, सामाजिक ज्ञान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों, विज्ञान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों तथा सहशैक्षिक कार्यक्रमों से सम्बन्धित हैं।

प्रयोजनों की दृष्टि से इनकी व्याप्ति, स्कूली शिक्षा में समाहित होने वाले विषयगत पाठ्यक्रमों, पाठ्येत्तर कार्यक्रमों, स्कूली कार्यक्रमों के दार्शनिक आधारों, विशेष शिक्षा-धाराओं, स्तरवार पाठ्यक्रमों और स्कूली वातावरण में प्रचलित अन्यान्य प्रवृत्तियों तक है।

प्रयुक्त अध्ययन-विधियों की दृष्टि से देखें तो केवल चार अनुसंधान कार्यों में प्रयोगात्मक विधि अपनाई गई। शेष प्रायः सभी में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया। सर्वाधिक प्रयुक्त उपकरण प्रश्नावली (70 प्रतिशत से अधिक) और साक्षात्कार (लगभग 30 प्रतिशत) रहे। अभिवृत्ति मापक, सम्प्राप्ति परीक्षा, बुद्धि परीक्षा, सामाजिक-आर्थिक स्तर मापक और अभिरुचि मापक अन्य उपकरण भी काम में लिए गए, जिनका प्रयोग 10 प्रतिशत के लगभग रहा है। सांख्यिकी विधियों में प्रतिशत, मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, काई स्क्वायर, टी टेस्ट और सह-सम्बन्ध का प्रयोग किया गया।

सामान्य शिक्षाक्रम

1964 तक देश में और राज्य में बुनियादी शिक्षा का सुनिश्चित वातावरण था। उस क्षेत्र में एक विशेष शिक्षाक्रम और स्वैच्छिक अभिव्यक्ति के प्रयास स्कूलों में चल रहे थे। शर्मा ने 1953 में बुनियादी शिक्षा की बीस वर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया और बताया कि उसके शीघ्र प्रसार और विस्तार के लिए मन्दिरों तथा अन्य भवनों के उपयोग में भी संकोच नहीं करना चाहिए। दूसरी ओर सरकार से आवश्यक वित्तीय प्रावधान की अपेक्षा भी की गई। शिक्षा की भविष्यमिति पर वह एक

अच्छा अध्ययन है। 1955 में सक्सेना ने मालूम किया कि बुनियादी स्कूलें आत्मनिर्भरता का लक्ष्य सामने रखकर उसे कताई-बुनाई व कृषि उद्योग से प्राप्त करना चाहती थीं, आत्मनिर्भरता की स्थिति शून्य प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक थी, लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक कारण थे—उद्योगों के लिए समय की कमी, अयोग्य शिक्षक, साधन सुविधाओं की कमी और विपणन की कठिनाइयाँ। श्रीमती सांघी (1955) ने मालूम किया कि बुनियादी शिक्षा में मौखिक कार्य पर अधिक बल दिया जाता था और लिखित कार्यों में अनुभवाश्रित लेखों और वर्णन-विवरणों को प्रोत्साहित किया जाता था। किन्तु मटाई (1959) ने सर्वेक्षण करने पर पाया कि वर्णन-विवरण को केवल प्रतिभाशाली छात्र पसंद करते थे और औसत छात्रों की उनमें रुचि नहीं थी। बुनियादी शिक्षा में एक लक्षण सामाजिक ज्ञान को संग्रथित इकाई के रूप में और विज्ञान को प्रायोजना कार्यों के रूप में पढ़ाने का था (श्रीमती सांघी 1955)। किन्तु शुक्ल (1956) ने यह तथ्य निकाला कि स्कूलों में चल रही तत्कालीन पाठ्यपुस्तकें संग्रथित भाव से नहीं बनी हुई थीं, और उनमें इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र के प्रकरण असम्बद्ध और विच्छिन्न भाव से प्रस्तुत किए हुए थे। त्रिपाठी (1962) द्वारा किया गया एक ही अध्ययन सामान्य विज्ञान के संग्रथित पाठ्यक्रम की संवीक्षा करता है और उसमें (इंग्लैण्ड के पाठ्यक्रम की तुलना में) अनिर्दिष्टता, अस्पष्टता और प्रायोगिक कार्यों का अभाव संकेतित करता है। इसी प्रकार बुनियादी शिक्षा-धारा और परम्परित विषय-प्रधान शिक्षा-धारा की असंगतियों के जो संकेत इन अनुसंधान-कार्यों में प्रत्यक्ष होते हैं, वे बताते हैं कि बुनियादी शिक्षा-धारा के कुण्ठित हो जाने का एक प्रबल कारण यह रहा है कि उसकी पाठ्यक्रमीय आकांक्षाएँ समानान्तर भाव से परिपूर्ण नहीं हो पाई थीं; पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें एक दिशा में चल रही थीं और बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रम और प्रयास अपने केंचुल में सिमट कर रह गए थे। ऐसे ही तथ्य चारण (1957) ने उजागर किए और बताया कि बुनियादी शिक्षा उच्चतर शिक्षा से पूर्वापर जुड़ी हुई नहीं थी, उसके योग्य पुस्तकों का नितान्त अभाव था, कृषि भूमि का अभाव था, बुनियादी और गैर-बुनियादी संस्थाएँ समानान्तर भाव से चल रही थीं, गैर बुनियादी स्कूलों के केवल नामपट्ट बदले गए थे, शिक्षकों का प्रशिक्षण नहीं हुआ था और पाठ्यक्रम को गम्भीरतापूर्वक बदलने की चेष्टा नहीं हुई थी।

शिक्षाक्रम और पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की लहर देश में 1947 के बाद आई थी। राजस्थान में राष्ट्रीयकृत शिक्षाक्रम और पाठ्यपुस्तकें 1952 में लागू हुई थीं, किन्तु दूसरे देशों की तुलना में इस राष्ट्रीयकरण का स्वरूप और संयोजन किस कोटि का था, इसका पता गिरधारीलाल (1958) ने लगाया। इस अध्ययन के अनुसार रूस में पुस्तक लेखन के लिए दस लेखकों के पैनल थे, केलिफोर्निया में नीति-निर्धारण शिक्षा-विभाग करता था और पाठ्यपुस्तक मण्डल पुस्तकों के मूल्यांकन, लेखन व सुधार की एक स्वायत्त राष्ट्रीय इकाई थी; किन्तु भारत में वैसी कोई स्थायी शिक्षाक्रम समिति या मूल्यांकन सुधार इकाई कार्यरत नहीं थी। राजस्थान में राष्ट्रीयकरण पाठ्यपुस्तक मंडल 1973 से स्वायत्तशासी संस्थान बन गया है, किन्तु पाठ्यक्रम, शिक्षाक्रम सम्बन्धी स्थायी

समिति के अभाव की बात आज भी कायम है। हाँ, माध्यमिक/उच्च माध्यमिक स्तर पर वैसी विषय समितियाँ माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अधीन अस्तित्व में हैं।

शिक्षाक्रम में शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं और उनके स्थान को महत्व देने का सिद्धान्त एवं विचार शैक्षिक चिन्तन में भले पुराना रहा हो, किन्तु व्यवहारतया फलित होने वाले पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों में वह किस कदर उपेक्षित रहा है, इसका पता फाटक (1961) ने लगाते हुए स्थापित किया कि कक्षा 3–4 के पाठ्यक्रम में ऐसी बुनियादी कमियाँ थीं कि वह छात्रों में विशिष्ट त्रुटियाँ उत्पन्न करता था और छात्रों की आवश्यकताओं और क्षमताओं का ध्यान न रखने के कारण कक्षा 4 तक, छात्रों में गुणा सम्बन्धी और कक्षा 5 तक भाग सम्बन्धी सम्बोध नहीं बन पाते। माध्यमिक स्तर पर लगभग ऐसी ही अवस्था मुरडिया (1970) ने देखी। इसके अनुसार माध्यमिक शिक्षाक्रम छात्रों की मानसिक योग्यता के अनुरूप नहीं था, पाठ्यक्रमों के प्रकरण पिछली कक्षाओं से असम्बद्ध थे, अंग्रेजी विषय और उसके पाठ्यक्रम के प्रति छात्रों में 68 प्रतिशत अनचाह थी और गणित उनके लिए हौवा था। विभिन्न पाठ्यक्रमों के प्रकरणों में पारस्परिकता और सुसम्बद्धता का भी अभाव पाया गया था। इसी प्रसंग में राव (1974) ने पाया कि भारतीय स्कूलों में वातावरणजन्य शिक्षाक्रम का नितान्त अभाव है और स्कूलों में संग्रथित विषय-शिक्षण के विकास की पूरी संभावनाएँ अभी तक शेष हैं। 1974 में ही सूरजमल हूड़ा ने पता लगाया कि माध्यमिक स्तर पर 92 प्रतिशत छात्र शिक्षाक्रम से अपने लिए सुरक्षित भविष्य की आकांक्षा रखते हैं, किन्तु अग्निहोत्री के उसी वर्ष के अध्ययन से यह तथ्य प्रकाशित होता हैं कि पाठ्यक्रम छात्रों में न तो समसामयिक जागतिक समस्याओं पर विचार करने की क्षमता पैदा करता हैं और न ही उनमें सत्यासत्य का विवेक एवं सृजनशीलता के तत्व पैदा करने की अर्हता रखता है। ओड ने 1959 में ही शिक्षाक्रम की ये प्रवृत्तियाँ निरूपित की थीं कि राज्य में समकालिक सामाजिक-आर्थिक विकास की स्थितियाँ पाठ्यक्रमों में नहीं उभर रही हैं, उद्योग शिक्षण का महत्व घटता जा रहा है, अंग्रेजी भाषा के प्रति लगाव कम होता जा रहा है और कृषि, विज्ञान तथा वाणिज्य विषयों की माँग छात्रों में बढ़ती जा रही है। यों सन 1959 से 1974 तक प्रचलित शिक्षाक्रम में शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं और उनके रुझानों की व्यवहारतया उपेक्षा स्पष्ट रूप से झलकती है।

यह तो हुई आधिकारिक रूप से निर्दिष्ट और परीक्षालक्ष्यी पाठ्यक्रमों की बात, किन्तु जब श्रीमती शर्मा (1967) ने स्कूलों में चल रही नवीन प्रवृत्तियों की खोज की तो उन्होंने पाया कि स्कूलों में उद्योग विषय का महत्व स्वीकार किया जा रहा था; प्रातःकालीन प्रार्थना-सभा, खेलकूद व खुले पुस्तकालय की प्रवृत्तियाँ स्कूलों में वर्धमान थीं; कार्यानुभव को विशेष महत्व मिल रहा था और आन्तरिक मूल्यांकन कार्यक्रमों का जोर भी बढ़ रहा था। शिक्षाक्रम में ये सब पक्ष भी आनुषंगिक अपरिभाषित पाठ्यक्रम के रूप में समाहित हैं, हमें यह मानकर चलना चाहिए। इसके अलावा धार्मिक व नैतिक शिक्षा भी उसी तरह के आनुषंगिक शिक्षाक्रम का अंग है, यह बात जैन (1974) के अनुसंधान से उभरती है, जिसमें यह पाया गया है कि शिक्षकगण उस शिक्षा को छात्रों

के लिए जरूरी मानते हैं, यद्यपि वे यह नहीं मानते कि जन्म के धर्म को ही आजीवन सिखाया जाए, उसके स्थान पर वे छात्रों को सर्वधर्म-सामान्य-सिद्धान्त सिखाना पसन्द करते हैं, वह भी नियमित पाठ्यक्रम के रूप में नहीं, वरन प्रार्थना सभा की प्रवृत्ति के समय।

देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान में भी कुछ विशिष्ट शिक्षा-धाराएँ यथा : मांटेसरी शिक्षा, पब्लिक स्कूल शिक्षा, बाधितों (अपंग, अंध) की शिक्षा, विशेष नारी शिक्षा चलती हैं। किन्तु इन अनुसंधानों की सीमा में वे सब नहीं सिमट पाई हैं। एक अध्ययन शिशु (नर्सरी) शिक्षा पर (शर्मा 1961) हुआ था जिसमें पाया गया कि अपने शिशुओं के सम्बन्ध में अभिभावकों की अपेक्षाएँ अध्यापकों से कहीं अधिक रहती हैं, यह भी कि अल्पायु में शिक्षारम्भ करने से छात्र की सीखने की गति में विशेष वृद्धि नहीं होती; किन्तु हाथ का काम करने से, विविध वस्तुओं का परिचय बढ़ने से और नानारंगी पुस्तकें सामने आने से पठनोद्यतता जरूर बढ़ती है। इसी तरह एक अध्ययन (श्रीमती ओझा 1970) स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी शिक्षाक्रम पर हुआ, जिसमें स्वामी विवेकानन्द तथा भगिनि निवेदिता के पत्रों/साहित्य आदि के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि भारतीय परिवेश में स्त्री-शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसमें (क) मातृभाषा (ख) एक विदेशी भाषा (ग) संस्कृत भाषा (घ) हस्तकला व चित्रकला तथा (ङ) सामान्य विज्ञान व सामान्य ज्ञान सिखाने की व्यवस्था रहे।

भाषागत पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें

बालक की शिक्षा में अथवा सम्पूर्ण शिक्षाक्रम में भाषा का पाठ्यक्रम रीढ़वत होता है, इसलिए यदि इन अनुसंधान-कार्यों में इस क्षेत्र में सर्वाधिक (13) अनुसंधान कार्य मिलते हैं तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। बालक की शिक्षा में प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों का अत्यधिक महत्व माना जाता है और उनके लिए बच्चों की व्यवहार शब्दावली जानने-गुनने और उनकी पाठ्यपुस्तकों में उसे फलित देखने की प्रवृत्ति भी रहती है। इस दिशा में पहला अनुसंधान श्रीमती रुक्मिणी रामचन्द्रा ने 1958 में किया और पता लगाया कि आयु वर्ग 7–8 के बच्चों की व्यवहार-शब्दावली 1232 थी, जबकि पाठ्यपुस्तकों में 825 विभिन्न शब्द आए थे। बैनी (1960) के अनुसार मोटे रूप से 36 प्रतिशत व्यवहार के शब्द पुस्तकों के शब्दों में सम्मिलित थे, और 6 प्रतिशत शब्द ऐसे थे जो बच्चों के प्रत्यक्ष ज्ञान के स्तर से परे के थे। उसी दायरे में बच्चों के व्यवहार शब्दों में दो-तिहाई संज्ञा शब्द हैं और शेष में से सर्वाधिक क्रिया शब्द होते हैं और वे सब खेलकूद, खाद्य सामग्री, घरेलू काम-काज के, पशु-जगत और प्रकृति सम्बन्धी होते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान कार्यों का उपयोग प्रारम्भिक पठन पुस्तकों में किया जा सकता है और व्यवहार-शब्द तथा पुस्तकीय शब्दों के लिए परस्पर परिपूरक सहायक सामग्री की सम्भावनाएँ खोजी जा सकती हैं।

भाषागत शिक्षाक्रम में बच्चों की पठन-रुचियाँ और आवश्यकताएँ जानकर उनके लिए आकर्षक सामग्री प्रस्तुत करना एक अनिवार्य सिद्धान्त होता है। इस दिशा

में शर्मा (1954) ने मालूम किया कि आयु-वर्ग 8–12 के बच्चों में से 53.73 प्रतिशत कहानियाँ, 12.23 प्रतिशत जीवनियाँ और 9.7 प्रतिशत कविताएँ पसन्द करते हैं; अभिभावक तथा शिक्षक दोनों बच्चों की मानसिक क्षमता और रुचि को उनके शिक्षाक्रम में मुख्य निर्णायक मानते हैं। इधर मटाई (1959) के अध्ययन से पता लगता है कि छात्रों में आत्मकथा, संक्षिप्तीकरण, संवादलेखन, विस्तार व अनुवाद जैसे रचनाकार्यों के प्रति रुचि बिलकुल नहीं थी, तर्कयुक्त लेख भी एकदम नापसन्द किए जाते थे, प्रतिभाशाली छात्र वर्णन-विवरण वाले लेख पसन्द करते थे, किन्तु औसत दर्जे के छात्र उन्हें नापसन्द करते थे। उधर औसत छात्रों को काल्पनिक लेखों में आनन्द आता है तो पिछड़े हुए छात्र उन्हें अच्छा नहीं मानते। छात्राएँ वर्णनात्मक लेख पसन्द करती हैं और जीवनियों को नापसन्द। छात्राओं की इस पसन्द की पुष्टि सुश्री माथुर (1968) के अध्ययन से भी होती है। वे एक आयाम और जोड़ती हैं कि किशोर छात्राएँ (कक्षा XI की) सामाजिक कहानियाँ और उपन्यास ज्यादा पसन्द करती हैं, जबकि आयु वर्ग 8–10 की कन्याएँ परियों की और राजा-रानी की कहानियों में दिलचस्पी रखती हैं। हमारे लिए यह कहने का आधार बनता है कि अगर अलग-अलग समय की खोजों से समान तथ्य उभरें तो उन्हें पाठ्य-सामग्री का निकष बनाने में उपेक्षित नहीं माना जाना चाहिए।

समकालीन पाठ्यपुस्तकों के जो विश्लेषणात्मक अध्ययन हुए हैं, वे बताते हैं कि शिक्षार्थी की अपेक्षाओं वाले सिद्धान्त की शिक्षाक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्रियात्मक अथवा व्यवहृति पक्ष में कितनी और कैसी स्थिति हैं। पुरोहित (1970) ने पाया कि कक्षा VIII की हिन्दी पुस्तक शिक्षणगत उद्देश्यों की परिपूर्ति नहीं करती, छात्रों के लिए अनुभव आधारित या जीवनगत मूल्य नहीं प्रदाब करती और उसके अधिकांश पाठों को छात्र रुचिपरक नहीं मानते। अब्दुल रहमान (1972) ने भी कक्षा VI, VII, VIII तीनों की हिन्दी पुस्तकों को छात्रों की जरूरतों के अनुकूल नहीं पाया। उनके अनुसार ये समाज की समकालिक विकास की अवस्थाओं और आकांक्षाओं को प्रतिफलित करती प्रतीत नहीं हुई, इनमें चित्रों का अनावश्यक समावेश और विषयगत एकता की दृष्टि से असन्तुलन था।

किन्तु माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर पर एक दूसरा ही तथ्य इन अनुसंधानों में उभरता है। श्रीमती शर्मा (1970) ने पाया कि ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थी भाषा पुस्तकों के सांस्कृतिक आशयों की समुचित श्लाघा करते हैं, और अपने पारिवारिक और जातीय सांस्कृतिक परिवेश के सन्दर्भ से पुस्तकीय आशयों की व्याख्या करते हैं। उधर तिवारी (1972) ने मालूम किया कि माध्यमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में भाषा का पक्ष अधिक मुखर हुआ था, उद्देश्यनिष्ठता शत-प्रतिशत आई थी, जबकि वह 1964 की पुस्तकों में केवल 50 प्रतिशत ही थी, मौखिक कार्य के प्रसंग 14 प्रतिशत आए। लघूत्तर व वस्तुनिष्ठ प्रश्न व अभ्यास 90 प्रतिशत बढ़े, जबकि लम्बे उत्तर वाले प्रश्न घट गए। यह प्रभाव सार्वजनिक परीक्षाओं का ढाँचा बदल जाने के कारण भी था और सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश की बदली चेतना के कारण भी।

इन अध्ययनों के आशय से इतना तो कहा जा सकता है कि कक्षा VI, VII, VIII के स्तर को छोड़ कर, शेष स्तरों पर भाषागत पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में शिक्षार्थी की अपेक्षा से और युगबोध की अपेक्षा से सन्तोषजनक परिवर्तन की प्रवृत्ति मुखर है।

अंग्रेजी हमारे शिक्षाक्रम में एक अनिवार्य विषय रहा आया है, बावजूद इसके कि ओड (1959) ने पाया था कि छात्र उसे पसन्द नहीं करते और छिब्बर (1959) के अनुसार 68.9 प्रतिशत छात्र उसे इसलिए पढ़ते थे कि वह उनके लिए अनिवार्य कर दिया गया था। 50 प्रतिशत छात्र उच्चारण और वर्तनी की कठिनाइयों के कारण दुखी थे, और अगर छात्रों को विश्वास हो जाए कि तकनीकी, उद्योगों और विज्ञान में उसके बिना काम चल सकेगा तो वे उसे पढ़ने को भी तैयार नहीं थे। हेहर (1961) के अनुसार सातवीं कक्षा के छात्रों की अंग्रेजी शब्दावली नितान्त रूप से उनकी पाठ्य-पुस्तक से बँधी रहती है, और औसत छात्रों की अपेक्षा प्रतिभाशाली छात्र कुछ ही शब्द ज्यादा जानते हैं। सुश्री बागची (1973) के अनुसार उनकी गलतियों के दायरे वर्तनी, शब्दार्थ, केपिटल वर्ण और विराम के हैं जिनमें प्रतिभाशाली छात्र कम गलतियाँ करते हैं और पिछड़े छात्र सर्वाधिक। वर्तनीगत त्रुटियों की सीमा 6.99 से 14.74 प्रतिशत तक, शब्दार्थ की 7.29 से 16.69 प्रतिशत तक, केपिटल वर्ण की 5.7 से 10.96 प्रतिशत तक, और विराम चिह्नों की 12.71 से 24.24 तक थी। सुश्री माथुर (1972) ने मालूम किया कि अंग्रेजी में केवल शब्द रूप में सिखाई गई बातें छात्रों की याद नहीं ही पातीं, प्रजेन्ट इनडेफिनिट के वाक्य उनके लिए कठिन होते हैं और ce, ie, e और ei वाले वर्तनी व उच्चारण रूप बहुत कष्टदायक होते हैं।

अंग्रेजी के शिक्षाक्रम में इन तथा ऐसे ही अन्य अनुसंधान कार्यों से प्राप्त तथ्यों का उपयोग करके, उस शिक्षाक्रम और शिक्षण सामग्री को भारतीय /प्रादेशिक स्तर पर ढालने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है।

भाषा के क्षेत्र में संस्कृत आदि तृतीय भाषाएँ भी हमारे शिक्षाक्रम का एक आवश्यक अंग है किन्तु उनके बारे में एक भी अध्ययन हमारे सामने उपलब्ध नहीं है।

सामाजिक ज्ञान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें

भाषा के साथ-साथ सामाजिक ज्ञान हमारे शिक्षाक्रम का दस वर्षीय अनिवार्य अंग है। यों इस शिक्षा अवयव की सैद्धान्तिक भूमिका बहुत व्यापक और आदर्श- लक्ष्यी मानी जाती हैं, किन्तु हमारा प्रचलित पाठ्यक्रम इसे सम्बोध के किस धरातल पर उतारे हुए है, इसका पता हमें राजेसिंह (1962) के अध्ययन से लगता है। तदनुसार उसमें समसामयिक सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का समावेश नहीं है, सामाजिक जीवन के शैक्षिक उद्देश्य को पूरा करने में पाठ्यक्रम सक्षम नहीं है और यह बात राजस्थान और पंजाब दोनों राज्यों के लिए समान रूप से लागू है। यही तथ्य शुक्ल (1956) ने प्राप्त किया था जब उन्होंने उस समय की कक्षा VI, VII, VIII की सामाजिक ज्ञान की पाठ्यपुस्तकों का सर्वेक्षण किया था। उसमें उन्होंने समसामयिक प्रसंगों के अभाव के

साथ-साथ यह भी मालूम किया था कि पुस्तकों की सामग्री छात्रों की आयु, योग्यता व रुचि के अनुकूल नहीं थी; इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र के अलग-अलग और विच्छिन्न प्रकरणों से सामाजिक ज्ञान नामक पुस्तकें बनाई गई थीं, और उनमें संग्रथन-समन्वयन बिलकुल नहीं था। किन्तु सामाजिक ज्ञान का पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें सन 1971 में इसके विपरीत बहुत ठीक पाई गईं, उनमें ग्रामीण और शहरी छात्रों के लिए प्रायः समस्थानिकता रही (ग्रामीण छात्रों की उपलब्धि 58 प्रतिशत तथा शहरी की 55 प्रतिशत) और शिक्षण उद्देश्यों की अधिकतम आपूर्ति उनमें पाई गई (गुप्ता 1971)। इस परिवर्तन का कारण यह था कि 1968 में कक्षा I से VIII तक के पाठ्यक्रम का नवीनीकरण हो गया था और उस पर आधारित नई पाठ्यपुस्तकें सन 1970 से प्रचलित हो गई थीं। गुप्ता के निष्कर्षों का समर्थन चंपावत (1974) के अध्ययन से भी होता है जिन्होंने सामाजिक ज्ञान की कक्षा VI, VII, VIII की नई पाठ्यपुस्तकों की सामग्री को राष्ट्रीय एकता की कसौटी पर भी सानुकूल पाया।

किन्तु माध्यमिक/उच्च माध्यमिक स्तर पर सामाजिक ज्ञान के शिक्षाक्रम अथवा पाठ्यपुस्तकों का शैक्षिक प्रभाव इन अनुसंधानों में सन्तोषजनक नहीं उभरता। 1957 में कुण्डू ने मालूम किया था कि पुस्तकों की सामग्री सम-सामयिक स्थितियों से नितान्त विच्छिन्न थी, छात्रों के जीवन व अनुभवों से उसका दूर का भी नाता नहीं था। इधर 1973 में जब शर्मा ने छात्रों की सामाजिक ज्ञान-क्षमता का सर्वेक्षण किया तो पाया कि उनमें ऐतिहासिक घटना ज्ञान की शून्यता थी। अस्पृश्यता का तीखापन व सामाजिक समकालिक चेतना का अभाव 60 प्रतिशत तक विद्यमान था, यद्यपि दो राष्ट्रीय पर्वों (स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस) को वे जानते थे मगर सुभाषचन्द्र बोस और चन्द्रशेखर आजाद के सिवा अन्य स्वतन्त्रता सेनानियों की उन्हें जानकारी नहीं थी। उसी प्रकार भूगोल विषय के प्रति छात्रों में 90 प्रतिशत रुचि वैष्णव (1973) ने देखी, किन्तु उसका सामाजिक चेतनागत प्रभाव शून्य पाया। उस समय पाठ्यक्रम में व्यावहारिक अनुभव, प्रयोगों की सुविधा और सहायक सामग्री की स्थिति दयनीय देखी गई। इस स्तर पर सामाजिक ज्ञान की प्रभावहीनता का एक कारण तो यह दिखाई पड़ता है कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के अधीन इस क्षेत्र की पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण की स्थिति राजस्थान में नहीं बनी है। आज भी इस क्षेत्र में व्यक्ति-लेखकों की व्यक्तिगत कृतियों को अभिस्तावित करने की प्रथा है जिससे स्तर-भेद और मूल्य-भेद आना स्वाभाविक हो सकता है। समसामयिक और गतिशील जीवन के प्रकरण इस स्तर पर पाठ्यक्रम में न होना (कुण्डू 1957 तथा वैष्णव 1973) वस्तुतः एक चौंकाने वाला तथ्य है और इस ओर बोर्ड तथा विभाग का ध्यान अवश्य जाना चाहिए।

विज्ञान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकें

विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान के प्रथम दर्शन 1962 में हीं हो पाते हैं। उसके बाद 10 वर्षों का लम्बा अन्तराल। और तब पुनः 1972 से इस क्षेत्र में अनुसंधान

कार्य होते दिखाई देते हैं। 1972 से सम्भवतः इस कारण भी कि इसी वर्ष से क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर ने विशेषतः विज्ञान में एम. एड. पाठ्यक्रम आरम्भ किया था।

1962 में त्रिपाठी ने राजस्थान के सामान्य विज्ञान पाठ्यक्रम की इंग्लैण्ड के समवर्ती पाठ्यक्रम से तुलना करके पता लगाया कि वहाँ की तुलना में यहाँ का पाठ्यक्रम अनिर्दिष्ट और गोलमाल ढंग से तैयार हुआ था, उनमें छात्रों की रुचियों और उनकी क्षमताओं का ध्यान नहीं रखा गया था, पुस्तकें केवल सूचनात्मक थीं और उनमें समझदारी या समालोचना जगाने की क्षमता नहीं थी, उनमें प्रयोग के उपकरण, उत्प्रेरणा और उपयोजन के अवसर नहीं दिए गए थे। किन्तु सन 1970 में जिस नये पाठ्यक्रम का प्रचलन हुआ और उसमें जिन-जिन प्रकरणों/विषयों को सामान्य विज्ञान नाम से अन्तर्ग्रथित किया गया, उनके बारे में सुश्री जसजीत कौर (1973) ने मालूम किया कि ब्रह्मांड 52 प्रतिशत, रसायन विज्ञान 30 प्रतिशत, भौतिक शास्त्र 40 प्रतिशत, जीव विज्ञान 30 प्रतिशत, वनस्पति जगत 7 प्रतिशत, कृषि विज्ञान 10 प्रतिशत, शरीर विज्ञान 19 प्रतिशत, पोषण 9 प्रतिशत और रोग विज्ञान 19 प्रतिशत छात्रों की रुचियाँ प्राप्त करते हैं। पुस्तक में उनका समानुपात क्या हो, उसका निर्धारण करने में ये तथ्य उपयोगी माने जा सकते हैं। किन्तु पुस्तक के बारे में सुश्री जसजीत का कहना है कि वे सैद्धान्तिक निरूपण ज्यादा करती हैं और छात्र उसे पसन्द नहीं करते। विज्ञान की पुस्तकों की इस कमी वाले तथ्य को मिश्रा (1972) के अध्ययन से भी पुष्टि का प्रमाण मिलता है। वे कहते हैं कि इन पुस्तकों में न तो अनुसंधान पद्धति पर प्रस्तुतीकरण हुआ है, न समस्या-समाधान की शैली पर, न ही उनमें छात्रों की कल्पना को मुखरित करने के अवसर हैं। गुप्ता (1974) भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि पुस्तकें अनुसंधान पद्धति पर तैयार की जानी चाहिएँ। 1974 में ही शर्मा ने पाया कि माध्यमिक स्तर का सामान्य विज्ञान पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों, भौगोलिक आवश्यकताओं व भारतीय परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त है। पुस्तकों में प्रयोग या तो आडम्बरपूर्ण या असम्भव स्थितियों वाले हैं। सबसे बड़ी कमी यह है कि मानविकी व विज्ञान संकायों के लिए एक ही पाठ्यक्रम है।

इन सब अध्ययनों से यह मति बनती है कि राजस्थान के सामान्य विज्ञान तथा विज्ञान पाठ्यक्रमों में अभी भी लोकोन्मुखता और जीवनोपयोगिता की भारी गुंजाइश बनी हुई है। एक विचार यह भी है कि यदि पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें सम्यक पूर्ण न हों तो शिक्षकों के लिए विज्ञान संदर्शिकाएँ तैयार कराई जानी चाहिए। इस दिशा में गुप्ता (1972) ने रसायन विज्ञान संदर्शिका की रूपरेखा विकसित की जिसके अनुसार उसमें प्रकरण/इकाई की परिभाषा, व्यवहारगत शिक्षण-उद्देश्य, मूल्यांकन-उद्देश्य, सहायक सामग्री, प्रयोग, चित्र, उदाहरण, उपयोजन के अवसर और पूर्वापर सम्बन्धों की जानकारी आनी चाहिए।

सहशैक्षिक कार्यक्रम

आज स्कूलों में हम जिन प्रवृत्तियों/कार्यक्रमों को सहशैक्षिक प्रवृत्तियों के नाम से जानते समझते हैं, वे वस्तुतः हमारे घोषित और प्रकाशित पाठ्यक्रमों के साथ-साथ

चलने वाले उनके प्रतिक्षेपक हैं। जब 1947 के पहले असंगठित, प्रकीर्णभावी पाठ्यक्रम थे, तब भी खेलकूद, सांस्कृतिक आयोजन व समाज सेवा के कार्यक्रम स्कूलों में किसी न किसी रूप में विद्यमान थे। 1952 में जब विभाग और शिक्षा बोर्ड द्वारा घोषित स्कूली शिक्षाक्रम प्रकाश में आए तो उनमें पठन-कार्य सम्बन्धी विषयानुसारिता ही प्रकाशित हुई, किन्तु विकासमान समाज की अपेक्षाओं से, स्कूलों में इन प्रतिक्षिप्त कार्यक्रमों की संख्या और सघनता बढ़ती चली गई। हमारे सामने अभी तक ऐसे अध्ययन तो उपलब्ध नहीं हैं जो बता सकें कि कौन से कार्यक्रम कब-कब अस्तित्व में आए; किन्तु आनुभविक तथ्य बताते हैं कि पर्व, उत्सव, विद्यालय सुधार, सजावट, खेलकूद प्रतियोगिताएँ, छात्र-सभाएँ, साहित्यिक कार्यक्रम, स्काउटिंग-गाइडिंग वगैरह कार्यक्रम स्कूलों में स्वैच्छिक रूप से समाहित और सघनतर होते चले गए। सन 1956 तक इन्हें पाठ्येतर माना जाता रहा था, उसके बाद उन्हें 'पाठ्य सहगामी' मानने-कहने की बात 1960 से जोर पकड़ती गई। आज हम इन्हें 'सहशैक्षिक' (की-करिकुलर) कहना ज्यादा पसन्द करते हैं। 1967 में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने कक्षा IX से XI तक के लिए उन्हें विधान-सम्मत बनाने के प्रयोजन से "व्यापक आन्तरिक मूल्यांकन" योजना में उन्हें समेटने का उपाय किया और विभाग ने, विभिन्न संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के माध्यम से और पंचांग में उनके समावेश के माध्यम से, उन्हें स्कूली कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बनाने का विधान किया। सन् 1972 में विभाग ने इसी निमित्त स्कूलों के पुराकालीन 6 घण्टे के दैनिक कार्यकाल को बढ़ाकर 7 घण्टे का किया।

इस आनुभविक विकास क्रम को प्रमाणभूत बनाने वाले कुछ गिनती के अध्ययन इन अनुसंधान कार्यों में भी उपलब्ध हैं जो विद्यालयों में सहशैक्षिक प्रवृत्तियों की स्थिति उजागर करते हैं। सिराज अहमद सिंधी ने 1956 में मालूम किया था कि विद्यालयों में पाठ्येतर कार्यक्रमों (एक्स्ट्रा करिकुलर) में छात्रों का प्रतिभागीत्व अनिवार्य नहीं था, उनके लिए स्कूलों में प्रावधान भी नहीं था, विद्यालय और प्रशासन उनके प्रावधान में प्रवर्तन-कारी दृष्टिमति भी नहीं रखते थे, इसलिए मैदान, साज-सामान और प्रशिक्षकों की कोई स्पष्ट स्थिति नहीं थी। शर्मा (1962) ने मालूम किया कि विद्यालय के सभी शिक्षक उन प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेते थे बल्कि कहते थे कि शिक्षण और परीक्षण मुख्य बात है, खेलकूद आदि से लाभ नहीं होता, उन्हें अपना शिक्षण कार्य ही बहुत भारी मालूम होता था, स्कूल-समय के बाद प्रवृत्तियाँ चलाने हेतु रुकने में वे असुविधा अनुभव करते थे, उन्हें यह बात खटकती थी कि इस 'अतिरिक्त' कार्य के लिए उन्हें कोई 'प्रोत्साहन' नहीं है। विद्यालयों में से 36 प्रतिशत उन कार्यक्रमों को सफल आयोजन मानते थे, 43 प्रतिशत निरर्थक अपव्यय मानते थे और 21 प्रतिशत इस मामले में तटस्थ भाव रखते थे। शर्मा ने पता लगाया कि सह-शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रार्थना-सभा, सामूहिक ड्रिल, राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन और वाद-विवाद नियमित तथा मुख्य थे। विभिन्न विद्यालयों में से 80 प्रतिशत अभिनय, 84 प्रतिशत सहायक केडेट कोर, 80 प्रतिशत संगीत, 66.60 प्रतिशत छात्र-संघ, 53.3 प्रतिशत भ्रमण, 5 प्रतिशत बालचर, 43.3 प्रतिशत विद्यालय पत्रिका, 40 प्रतिशत राष्ट्रीय कैडेट कोर

25 प्रतिशत विद्यालय प्रदर्शनी और 20 प्रतिशत वाटिका निर्माण के कार्यक्रम चला रहे थे। विभिन्न घटकों का और खास करके 73.3 प्रतिशत छात्रों का मत था कि उनसे छात्रों की शैक्षिक चेतना में वृद्धि होती हैं, किन्तु 26.7 प्रतिशत छात्र या तो परीक्षा के भय से या आर्थिक-सामाजिक हीन-भावना के कारण, या अभिभावकों के असहयोग के कारण उनमें इच्छुक नहीं पाए गए। जब सिंघवी ने 1970 में स्थिति का जायजा लिया तो छात्रों की सामाजिक गतिशीलता और इन कार्यक्रमों में उनके प्रतिभागीत्व के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध पाया, किन्तु विद्यालयों में शैक्षिक कार्यों और सह-शैक्षिक आयोजनों के बीच सम्बन्ध समन्वय की कोई स्थिति नहीं थी। योजनाबद्ध कार्य का अभाव, शिक्षकों की अरुचि और अभिभावकों की उपेक्षावृत्ति मुखर थी।

सम्भावनाएँ एवं सुझाव

विश्वविद्यालयीय उपाधियाँ प्राप्त करने हेतु किए गए इन अनुसंधान कार्यों में भी वे न्यूनताएँ स्पष्ट झलकती हैं जो ऐसे अनुसंधान कार्यों में प्रायः रह जाया करती हैं। ये भी सीमित न्यादर्श पर आधारित हैं जिनका विस्तार क्षेत्र प्रायः एक कक्षा, एक विद्यालय अथवा एक नगर तक ही है। फिर न्यादर्श के चयन में अनुसंधानकर्त्ता की सुविधा प्रायः निर्णायक घटक रही हैं, परिणाम स्वरूप न्यादर्श प्रतिनिधि नहीं बन पाए हैं। जैसा कि पूर्व विश्लेषण से स्पष्ट है, इन अनुसंधान कार्यों में से अधिकांश (90 प्रतिशत से अधिक) में सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त हुई है और प्रश्नावली प्रमुख उपकरण (70 प्रतिशत से अधिक में) रहा है। ये दोनों विश्वसनीयता की दृष्टि से सन्तोषप्रद नहीं माने जाते और इन पर आधारित निष्कर्षों की पुष्टि करने की आवश्यकता बनी रहती है। क्रमिकता का अभाव होने के कारण इन अनुसंधान कार्यों में अनेक रिक्तताएँ रह गई हैं और कोई पूर्ण चित्र प्रायः उभर नहीं पाए हैं।

परिव्याप्ति की दृष्टि से देखें तो 80 प्रतिशत से अधिक अनुसंधान कार्य माध्यमिक स्तर के शिक्षाक्रम सें सम्बन्धित हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अन्य स्तरों के शिक्षाक्रमों पर अनुसंधानकर्त्ताओं का समुचित ध्यान नहीं गया है। प्राथमिक स्तरीय शिक्षा (जिसे सार्वजनीन बनाने के लिए हमारा देश विशेष रूप से प्रयत्नशील है) के विषय में अनुसंधान कार्य का यह अभाव विशेष रूप से खटकने वाली बात है, क्योंकि इस क्षेत्र में व्याप्त अतिशय अपव्यय एवं अवरोधन और धीमी प्रगति के प्रमुख कारणों में प्रचलित शिक्षाक्रम की अनुपयुक्तता भी संभवतया एक है।

किन्तु इन सीमाओं के बावजूद गत बीस वर्षों में किए गए इन अनुसंधान कार्यों ने शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों सम्बन्धी ऐसे अनेक तथ्य उजागर किए गए हैं जो न केवल भावी अनुसंधानकर्त्ताओं को ही उपयोगी आधार प्रदान करते हैं, वरन् शिक्षाक्रम आयोजकों एवं पाठ्यपुस्तक निर्माताओं के लिए भी महत्वपूर्ण दिशा-निर्देशन करते हैं। कक्षा-शिक्षकों के लिए अपने अध्यापन कार्य को अधिक प्रभावी बनाने एवं उपयोगी क्रियानुसंधान कार्य आरम्भ करने में सहायक अनेक सम्भावनाएँ एवं सुझाव भी इन अनुसंधान कार्यों में निहित हैं।

ऐसी सम्भावनाओं एवं सुझावों को जिन्हें अनुसंधान कार्यों का विश्लेषण करते समय यथा स्थान संकेतित कर दिया गया है, एक साथ इस प्रकार रखा जा सकता है :

- बुनियादी शिक्षा-योजना की विफलता से हम पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को शैक्षिक आकांक्षाओं से भिन्न दिशा में न जाने देने के लिए विशेष रूप से सतर्क रहना सीखें।
- शिक्षाक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में वांछित सुधार-कार्य को गतिशील बनाने के लिए राज्य में स्थायी समितियों का गठन करना अत्यावश्यक है।
- शिक्षाक्रम में शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं, अभियोग्यताओं एवं अभिरुचियों को समुचित महत्व देने की वांछित अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए व्यापक स्तर पर अनुसंधान कार्य प्रारम्भ किया जाना चाहिए।
- व्यवहार में आने वाले शब्दों एवं पुस्तकीय शब्दों के मध्य पाया गया अन्तर जहाँ एक ओर कक्षा-शिक्षण में इस तथ्य की ध्यान में रखने की वांछनीयता को प्रकट करता है, वहाँ दूसरी ओर पाठ्यपुस्तक निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देशन भी करता हैं।
- विभिन्न कक्षा-स्तरों के छात्रों के रुचि-क्षेत्रों का ज्ञान भी इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।
- इसी प्रकार हिन्दी, सामाजिक विषयों एवं विज्ञान विषयों की पाठ्यपुस्तकों के उद्देश्यों की सम्पूर्ति की दृष्टि से किए गए विश्लेषणों ने इन पुस्तकों के सुधार हेतु अनेक उपयोगी तथ्य उपलब्ध कराए हैं।
- पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को अनिवार्य विषय के रूप में बनाए रखने की वांछनीयता पर कई अनुसंधान कार्यों द्वारा प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं और इस प्रकार इस प्रश्न के गहन एवं व्यापक स्तर पर अध्ययन की आवश्यकता को उजागर किया है।
- सह-शैक्षिक प्रवृत्तियों के आयोजन से सम्बन्धित अनुसंधान कार्य संख्या में कम होते हुए भी विद्यालयों में इनके आयोजत की स्थिति को स्पष्ट करने में काफी हद तक सफल हुए हैं और शिक्षण कार्य के साथ इनके गुम्फन एवं समन्वय की संभावनाएँ खोजने की वांछनीयता को स्पष्ट करते हैं।

इन अनुसंधान कार्यों की सीमाओं और उपेक्षित रह गए पक्षों की दृष्टि से देखने पर भावी अनुसंधान कार्य के लिए जो सम्भावनाएँ उभरती हैं, उनमें से कतिपय इस प्रकार हैं :

—ब्लूम द्वारा प्रस्तावित उद्देश्यों के वर्गीकरण की भारतीय सन्दर्भ में परख;

—ज्ञान के विस्फोट और वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के सन्दर्भ में विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण;

—शिक्षाक्रम-आयोजन में शिक्षकों, अभिभावकों, छात्रों, राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के सम्भागीत्व की सम्भावनाओं की खोज;

—वर्तमान परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षाक्रम प्रतिमान का निर्माण;

—पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों एवं प्रकरणों के समावेश के निष्कर्ष तैयार करना;

—शिक्षा को उत्पादन से सम्बद्ध करने के लिए किए गए प्रयोगों का अध्ययन करके इस दिशा में उपयुक्त प्रतिमानों का निर्माण एवं परीक्षण;

—प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनीन बनाने के उद्देश्य को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षाक्रम में परिवर्तन के लिए किए गए प्रयासों का अध्ययन और सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्निर्माण एवं वैविध्यीकरण;

—महिलाओं और पुरुषों के लिए समान अथवा भिन्न प्रकार के शिक्षाक्रम के औचित्य अनौचित्य का अध्ययन; तथा

—अनौपचारिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा एवं अंशकालीन शिक्षाचर्याओं सम्बन्धी अनुसंधान कार्य।

संदर्भांकित अनुसंधान

अग्निहोत्री, रवीन्द्र : An Evaluation of the Arts Curriculum at the Higher Secondary Stage in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1974

अब्दुल रहमान : **कक्षा VI, VII और VIII की हिन्दी पाठ्यपुस्तकों का एक मूल्यांकन,** एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1972

ओझा, सीतादेवी : **स्त्री शिक्षा में भगिनि निवेदिता का योगदान,** एम. एड., राज. वि. वि., 1970

ओड, लक्ष्मीलाल केसरीलाल : A Comparative Study of Curriculum Development at the Secondary Stage, M. Ed., Raj. Uni., 1959

कपूर, बी. के. : An Experiment in Developing Appreciation for a Foreign Culture, M. Ed., Raj. Uni., 1961

कुण्डू, चुन्नीलाल : Evaluation of History Text Books for High School Classes, M. Ed., Raj. Uni., 1957

केशना, जी. हृषि. : Basic Education in the Light of Montessory Principles, M. Ed., Raj. Uni., 1960

खुशलानी, गगनदास श्यामदास	:	A Study of Some Correlates in Work Experience of the Delta-Class, M. Ed., Raj. Uni., 1968
गिरधारीलाल	:	The Trends in Nationalization of School Text Books, M. Ed., Raj. Uni., 1958
गुप्ता, बनवारीलाल	:	An Evaluation of the Text book of Social Study of Class VII, M. Ed., Raj. Uni., 1971
गुप्ता, मनजीतसेन	:	Evaluation of Science Curricula in the State of Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1974
गुप्ता, महेशकुमार	:	Developing Curriculum Guide in Chemistry for Secondary School Teachers in Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1972
चम्पावत, भीमसिंह	:	उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए निर्धारित सामाजिक ज्ञान पाठ्यपुस्तकों का राष्ट्रीय एकता में योगदान के सन्दर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन, एम.एड., राज. वि. वि., 1974
चारण, भँरूँदान	:	Problems of Conversion of Non-Basic Schools into Basic Schools in Udaipur City, M. Ed., Raj. Uni., 1957
छिब्बर, केवलकृष्ण	:	Secondary School Pupils' Attitude towards English, M. Ed., Raj. Uni., 1959
जसजीत कौर	:	छात्र-जिज्ञासा के सन्दर्भ में माध्यमिक कक्षाओं के लिए निर्धारित सामान्य विज्ञान पाठ्यसामग्री का अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1973
जैन, श्यामसुन्दर	:	माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों की धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्तियाँ, एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974
तरुण, तेजसिंह	:	उच्च माध्यमिक विद्यालय में पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों के प्रति रुचि : एक अध्ययन, एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974
तिवारी, पुरुषोत्तमलाल	:	The Effects of Rajasthan Board's New Type Question Papers on the Teaching of Compulsory Hindi at Secondary Level, M. Ed., Raj. Uni., 1972
पण्डित, सुजाता	:	An Investigation into the Mental Abilities Developed in Higher Secondary School Girls Offering Optional Subjects in Humanities and Science Groups, M. Ed., Raj. Uni., 1966

पुरोहित, जेड. एच. : A Critical Study of Nationalized Text Books in Hindi VIII Standard in relation to the Objectives Determined by the State Institute of Education, Udaipur (Rajasthan), M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

फाटक, ए. बी. : Diagnostic and Remedial Work for Curriculum Development, M. Ed., Raj. Uni., 1961

बागची, नमीता : Diagnosis of Language Errors in English for Class VIII and Exploration of Probable Causes, M. Ed., Raj. Uni., 1973

बीदावत, शेरसिंह : राष्ट्रगान : अर्थ एवं उद्गम और माध्यमिक विद्यालय छात्र (एक अन्वेषण), एम. एड., राज. वि. वि., 1970

बैनी, निर्वाणसिंह : A Study of the Vocabulary of the Children of the Eight plus Age-group, M. Ed., Raj. Uni., 1960

भारतीय, सुधा : A Comparative Study of the Interests and Attitudes towards Family Life of the XIth Grade Girl-Students Studying Domestic Science and Not Studying Domestic Science, M. Ed , Raj. Uni., 1974

मटाई, भगवानदास चन्दीराम : Likes and Dislikes of Pupils in Written Hindi Composition (Class IX), M. Ed., Raj. Uni., 1959

माथुर, आभा : An Investigation into the Types of Stories Liked by Girls between the Age of 8 and 10 Years, M. Ed., Raj. Uni., 1968

माथुर, सुशीलरानी : Diagnosis of Language Errors in English in Class VI, M. Ed., Raj. Uni., 1972

मिश्रा, श्यामपाल : A Comparative Study of Prescribed Chemistry Text Books for Schools in Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1972

मुरडिया, सुन्दरसिंह : माध्यमिक विद्यालय के छात्रों और छात्राओं की वर्तमान पाठ्यक्रम के प्रति मनोवृत्तियाँ, एम. एड., राज. वि. वि., 1970

रंधावा, जीवासिंह : Influence of Home on the Efficiency in Craft in Basic Education, M. Ed., Raj. Uni., 1955

राजदान, प्राणनाथ : A Study of the Recent Efforts to Promote International Understanding through School Programmes, M. Ed., Raj. Uni., 1963

रावेसिंह	:	A Comparative Study of Social Studies Syllabus in Higher Secondary Schools of Rajasthan and Punjab, M. Ed., Raj. Uni., 1962
रामचन्द्रा, रुक्मिणी	:	A Study in Children's Vocabulary, M. Ed., Raj. Uni., 1958
रामचन्द्रा, रुक्मिणी	:	A Study of the Development of Vocabulary of Children of Age-group 6 to 8, Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1967
राव, एन. संगमेश्वर	:	Environmental Studies in Indian Schools, M. Ed., Raj. Uni., 1974
वर्मा, भागीरथसिंह	:	A Study into the Understanding of National Integration at the Different Age Levels of the Adolescents in Secondary Schools of Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1969
वाजपेयी, आनन्दविहारी	:	Innovative Practices in Schools : An Investigation, M. Ed., Udaipur Uni., 1973
वैष्णव, रतनदास	:	Attitude of Geography Students towards Geography, M. Ed., Udaipur Uni., 1973
शर्मा, कृष्णकुमार	:	किशोर छात्र-छात्राओं का राष्ट्रीय सम्बन्धी अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1973
शर्मा, गजेन्द्रपाल	:	An Investigation into the Provisions made for Co-curricular Activities in High and Higher Secondary Schools for Boys and Girls of Bikaner Division, M. Ed., Raj. Uni., 1962
शर्मा, चन्द्रप्रकाश	:	A Study of Children's Literature in Hindi, M. Ed., Raj. Uni., 1954
शर्मा, पुष्पलता	:	A Survey of XI Class Students' Evaluation of the Cultural Content of Higher Secondary Text Books in Hindi, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970
शर्मा, बाबूलाल	:	A Plan of Compulsory Basic Education, M. Ed., Raj. Uni., 1953
शर्मा, रामकिशोर	:	Outcomes of Nursery Education, M. Ed., Raj. Uni., 1961
शर्मा, सत्या के.	:	A Study of New Trends in Secondary Schools, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
शर्मा, सुशीलकुमार	:	राजस्थान में माध्यमिक स्तर पर सामान्य विज्ञान शिक्षण की वर्तमान प्रस्थिति का अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1974
शुक्ल, अम्बाप्रसाद	:	Critical Study of Social Studies Text Books for Class VI, VII and VIII, M. Ed., Raj. Uni., 1956

सक्सेना, के. के. : Self-Sufficiency in Basic Education,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

सांघी, गुणवती : Scope of Creative Expression in Basic School,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

सारस्वत, हरिशंकर : Understanding the Nature of Science : A Comparison of Science Teachers and Science Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

सिंघवी, बजरंगमल : A Survey of Co-curricular Activities of the Students of Class IX of Some of the Higher Secondary Schools of Jodhpur and their Effect on their Sociability,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

सिंधी, सिराजअहमद : A Survey of Extra-curricular Activities in Udaipur High Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1956

हूडा, सूरजमाल : The Needs of Secondary Class Boys and their Implications for Developing a Core Curriculum for them,
M. Ed., Udaipur Uni., 1974

हेहर, अमरजीतसिंह : A Study of English Vocabulary with reference to Pupils of VII Class,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

त्रिपाठी, जयंतशिवदेवकुमार : General Science Curriculum : A Comparative Study of Rajasthan with England,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

□

अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया

□ डा. ओंकारसिंह देवल
□ कैलाशविहारी वाजपेयी

अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया का क्षेत्र अध्ययन-विधियों की अपेक्षा अधिक व्यापक है। साथ ही अध्ययन व अध्यापन प्रक्रिया एक-दूसरी से इतनी अन्तःसम्बन्धित हैं कि कि उन्हें दो अलग-अलग प्रक्रियाएँ मानकर, उन पर हुए अनुसंधान कार्यों का विश्लेषण करना कठिन लगता है। राजस्थान में शिक्षानुसंधान के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया से सम्बन्धित जो अध्ययन अब तक हुए हैं, उन्हें क्षेत्र की दृष्टि से निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत किया जा सकता है : शिक्षण-विधियाँ व उनके प्रति अभिवृत्ति, अभिक्रमित अध्ययन, अभिप्रेरण, छात्र व शिक्षक के अन्तःसम्बन्धों का स्वरूप, दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग, गृहकार्य एवं त्रुटियों का विश्लेषण, ज्ञानात्मक विकास सम्बन्धी अध्ययन तथा अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया से सम्बन्धित अन्य क्षेत्र।

अनुसंधानों की देखने से ज्ञात होता है कि शिक्षण विधियों में सर्वाधिक अध्ययन अभिक्रमित अध्ययन पर हुए हैं, जो 1969 से 1974 तक ग्यारह थे। बुनियादी शिक्षा पर कुल चार शोध-कार्य उपलब्ध है, जो सभी 1959 से पूर्व के हैं। कार्यानुभव के रूप में बुनियादी शिक्षा के एक पक्ष को पुनः 1970 में छुआ गया है। विशिष्ट शिक्षण विधियों एवं उपागमों को लेकर कुल 14 अध्ययन हुए हैं, जिनमें से सात सिर्फ हिन्दी शिक्षण विधि पर हैं।

शोध-कार्य में सर्वाधिक अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित हैं। प्रयोगात्मक विधि पर आधारित 14 अध्ययन उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक एवं प्रकरण विधि को लेकर एक भी अध्ययन नहीं किया गया लगता है।

शिक्षण विधियाँ एवं उनके प्रति अभिवृत्ति

इस वर्ग में 12 अध्ययन एम. एड. स्तर के तथा 5 अध्ययन राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा किए गए हैं।

एक अध्ययन मिश्रा (1973) द्वारा 'समस्या समाधान में पूर्व कल्पना के योग-दान' पर किया गया। उन्होंने मालूम किया कि पन्द्रह साल के विद्यार्थियों में समस्या समाधान के लिए पूर्व कल्पना का उपयोग करने की क्षमता विकसित नहीं होती। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि इस अवस्था के विद्यार्थियों के प्रयोग का स्तर भी निम्न कोटि का था।

त्रिपाठी (1974) ने बड़ी कक्षाओं की समस्याओं का एवं उनमें शिक्षण विधियों की उपयुक्तता पर अध्ययन किया। उनके अनुसार बड़ी कक्षाओं में अनुशासन की समस्याएँ आती हैं, छात्रों व शिक्षकों के अन्तःसम्बन्ध नहीं बन पाते व एक दूसरे से विचारों के आदान-प्रदान में बाधा आती है। बड़ी कक्षाओं में बालकों की अभिवृत्ति प्रायः सैनिकवादी बन जाती है व अध्यापक आधुनिक व उन्नत शिक्षण विधियों का प्रयोग नहीं करते।

एक महत्वपूर्ण तथ्य जो इन अध्ययनों से प्रकट होता है, वह यह कि विद्यालय के विभिन्न विषयों एवं उनकी शिक्षण विधियों में से केवल तीन विधियों को छुआ गया है। बुनियादी शिक्षा पर कोई भी अध्ययन 1960 व 1970 के बीच में नहीं किया गया।

हिन्दी शिक्षण

रामावतार शर्मा (1973) ने यह सर्वेक्षण किया कि हिन्दी भाषा के प्रशिक्षित शिक्षक कहाँ तक आधुनिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हैं। उन्होंने पाया कि आधुनिक शिक्षण विधियों के प्रति प्रशिक्षित हिन्दी अध्यापकों की सकारात्मक अभिवृत्ति थी। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि अध्यापक कविता एवं नाटकों के अध्यापन में आधुनिक शिक्षण-तकनीकें काम में नहीं लेते थे। चौधरी (1969) का निष्कर्ष था कि मौनपठन से अर्थग्राह्यता में वृद्धि होती हैं, तथा अभ्यास से वाचन की गति में। रघुनाथ सिंह गौड़ (1970) ने शिक्षकों द्वारा अवधारणात्मक भाषा शिक्षण की विभिन्न तकनीकों—(अ) शब्दकोष तकनीक, (आ) संश्लेषण तकनीक, (इ) परिभाषा तकनीक व (ई) प्रत्यक्ष अनुभव की तुलना करके ज्ञात किया कि चारों तकनीकों की प्रभावशीलता में काफी अन्तर है; शब्दकोष तकनीक अन्य तकनीकों की अपेक्षा कम प्रभावशाली है। पंचोली (1968) ने अक्षर विधि एवं वाक्य विधि का तुलनात्मक अध्ययन करके पाया कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में, जहाँ हिन्दी मातृभाषा के रूप में सिखाई जाती है, वाक्य विधि विशेष प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुई। अक्षर विधि भाषा तत्वों का ज्ञान देने में विशेष उपयोगी पाई गई। अक्षर विधि को अपनाने से वाचन व लेखन गति में बाधा नहीं आती। वाजपेयी एवं पंचोली (1970) ने हिन्दी में कलम, होल्डर, पेन व पेन्सिल द्वारा सुलेख लिखने के परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन किया। इससे पाया गया कि हिन्दी के अच्छे लेखन में सभी प्रकार से प्रथम स्थान पेन का व तत्पश्चात क्रमशः पेन्सिल, होल्डर व कलम का रहता है। तिवारी (1967) ने त्रुटि संशोधन की दो विधियों—सीधा संशोधन व सांकेतिक संशोधन—का एक प्रयोगनिष्ठ तुलनात्मक अध्ययन राज्य शिक्षा संस्थान के तत्वावधान में किया। उन्होंने पाया कि सीधे संशोधन की अपेक्षा सांकेतिक संशोधन समय की बचत व त्रुटि परिहार में अधिक प्रभावशाली था। सीधे संशोधन के परिणाम स्वरूप त्रुटियों का प्रतिशत 18 से गिरकर 13, जबकि सांकेतिक संशोधन के फलस्वरूप 15 से गिरकर 8 हो गया।

व्यास एवं मेहता (1970) ने माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों के बच्चों की वाचन प्रवृत्ति में पुस्तकालय के योगदान पर अध्ययन करके मालूम किया कि

शालाओं में सुसज्जित पुस्तकालय नहीं थे, न ही उनमें ठीक से लेखा जोखा रखा जाता था। अतः उच्च-माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में वाचन प्रवृत्ति का विकास नहीं हो पाता था। साल में छह पुस्तकें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 8 प्रतिशत थी, 18 प्रतिशत ऐसे विद्यार्थी पाए गए जिन्होंने एक भी पुस्तक नहीं पढ़ीं। जिन्होंने कुछ पुस्तकें पढ़ीं, उनमें से 43 प्रतिशत ने केवल उपन्यास व कहानी की पुस्तकें पढ़ीं।

पंचोली (1967) ने कक्षा 8 के बालकों की हिन्दी कविता में रुचि पर राज्य शिक्षा संस्थान के तत्वावधान में अनुसंधान किया, जिसमें पाया कि बालक उन कविताओं में अधिक रुचि लेते हैं जो राष्ट्रीय ध्वज, वीरता व प्रेरक घटनाओं के बारे में हों। बालक उन कविताओं में भी अधिक रुचि लेते हैं जो भक्ति की हों अथवा महान पुरुषों के बारे में हों। बालक राजस्थानी में लिखी कविताओं को अधिक पसन्द करते हैं।

स्वामी (1968) ने हिन्दी विषय में किशोरों की अध्ययन प्रक्रिया का अध्ययन किया। उन्होंने यह पाया कि उच्च एवं मध्यम सामाजिक-आर्थिक स्तर के विद्यार्थी हिन्दी में पठन-पाठन के प्रति ज्यादा जागरूक थे। शोधकर्त्ता ने यह भी पाया कि हिन्दी के कुछ अध्यापक पढ़ाने में काफी अक्षम थे। कुछ प्रधानाध्यापकों में हिन्दी-शिक्षण प्रक्रिया के प्रति उदासीनता पाई गई। बैजनाथ शर्मा (1969) ने हिन्दी के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों को लेकर अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित अध्यापकों की शिक्षण विधियों में कोई विशेष अन्तर नहीं था। शर्मा ने यह भी पाया कि हिन्दी शिक्षण के प्रति प्रशिक्षित हिन्दी अध्यापकों की सकारात्मक अभिवृत्ति थी तथा दोनों प्रकार के अध्यापक अपने व्यवसाय में अच्छी तरह समायोजित थे।

संस्कृत शिक्षण

अग्रवाल (1971) ने संस्कृत शिक्षण की विधियों एवं संगठन पर किए गए अध्ययन में पाया कि सभी विद्यालयों में (निजी संस्थाओं को छोड़ कर) संस्कृत को तीन कालांश दिए जाते थे, वहाँ संस्कृत साहित्य की कमी पाई गई, दृश्य-श्रव्य सामग्री भी उपलब्ध नहीं थी और केवल अनुवाद पद्धति अपनाई जाती थी। घाणेकर (1971) ने संस्कृत के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि उन छात्राओं की अपेक्षा जो संस्कृत को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ रही थीं, ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ने वाली छात्राओं में अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति पाई गई। उन्होंने यह भी ज्ञात किया कि मराठी भाषी बालिकाएँ राजस्थानी भाषी बालिकाओं की अपेक्षा संस्कृत के प्रति अधिक अनुकूल अभिवृत्ति रखती हैं।

अन्य विषय शिक्षण

माथुर (1974) ने उच्च माध्यमिक विद्यालयों में गणित शिक्षण का अध्ययन किया। छोटी कक्षाओं को पढ़ाने वाले अध्यापकों की गणित में विशेष रुचि नहीं थी।

पाठ्यक्रम भारी व असन्तोषजनक था, प्रभावहीन शिक्षण विधियाँ अपनाई जा रही थीं तथा पढ़ाने में कोई भी सहायक सामग्री काम में नहीं ली जा रही थी। नवीन गणित में अधिकांश विद्यार्थियों की विशेष रुचि नहीं थी।

बलवन्तसिंह (1958) ने पूर्व प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों की खेल-क्रियाओं का सर्वेक्षण किया। उन्होंने पाया कि शिक्षण में खेल-विधि बालक को अधिक रुचि-पूर्वक व्यस्त रखती है, परन्तु विद्यालयों में इस विधि को उचित महत्व नहीं दिया जा रहा था। त्रिलोटिया (1974) ने किंडर गार्टन व प्राथमिक विद्यालयों मे शिक्षण के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात किया कि जहाँ तक सामाजिक ज्ञान व गणित के अध्यापन का प्रश्न है, वहाँ दोनों की शिक्षण विधियों में विशेष अन्तर नहीं था। लेकिन उन्होंने देखा कि हिन्दी शिक्षण में दोनों की विधियों में उल्लेखनीय अन्तर था।

दो अध्ययन बुनियादी विद्यालयों में प्रयुक्त विधियों पर मिलते हैं। शर्मा (1957) ने पाया कि जो कक्षाएँ बुनियादी शिक्षा के ढंग से पढ़ाई जाती थीं, उनका स्तर पारम्परिक ढंग से पढ़ाई जाने वाली कक्षाओं की अपेक्षा अच्छा था। किन्तु उन्होंने यह भी पाया कि जो अध्यापक बुनियादी विद्यालय में कार्य करते थे, उन्हें बुनियादी शिक्षण विधियों का बहुत अपूर्ण ज्ञान था। बुनियादी विद्यालय शिक्षण-सामग्री के माने में शोच-नीय स्थिति में थे। जुल्का (1957) ने पाया कि बहुत थोड़े अध्यापक सहसम्बन्ध की तकनीक के सही अर्थ को समझते थे, तथा कोई भी विद्यालय पूर्णरूपेण सहसम्बन्ध की तकनीक को नहीं अपनाता था।

सिंधी (1957) ने बुनियादी शालाओं में अध्ययनरत बच्चों की अभिवृत्ति में हुए परिवर्तन का अध्ययन किया जिसमें बुनियादी शालाओं के बच्चों ने रचनात्मक एवं सत्यता आदि गुणों के लिए अधिक अंक प्राप्त किए। सामाजिक एवं सहयोगपूर्ण रहन-सहन के सम्बन्ध में बुनियादी व गैर बुनियादी शालाओं के बच्चों में सांख्यिकी दृष्टि से कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं था, परन्तु बुनियादी शालाओं के बच्चों में श्रम के प्रति विशेष झुकाव पाया गया।

अन्य अध्ययनों में त्रिजयवर्गीय (1970) ने कार्यानुभव का सर्वेक्षण करते हुए ज्ञात किया कि 67–68 में केवल 56 विद्यालयों में और 68–69 में 190 विद्यालयों में कार्यानुभव का कार्य चल रहा था। इन विद्यालयों में 42 प्रकार के कार्य लिए गए थे। कार्यानुभव में लगे छात्रों को शैक्षिक संप्राप्ति, पढ़ाई-लिखाई, खेलकूद व अन्य प्रवृत्तियों में उन्नत पाया गया।

छिब्बर (1959) ने अंग्रेजी के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि समग्र रूप से विद्यार्थियों की अभिवृत्ति अनुकूल थी। अभिवृत्ति एवं संप्राप्ति में धनात्मक सहसम्बन्ध भी पाया गया। अंसारअहमद (1969) ने संर-चनात्मक उपागम के प्रति अंग्रेजी के शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया। निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि उस उपागम के प्रति छात्राध्यापकों में सेवारत शिक्षकों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक अभिवृत्ति थी। उन्होंने यह भी ज्ञात किया किया कि प्रशिक्षित

अध्यापकों की अभिवृक्षि भी सकारात्मक थी एवं पुरुष शिक्षकों की अभिवृत्ति महिला शिक्षकों की अपेक्षा अधिक अनुकूल थी। पन्त (1967) ने अंग्रेजी के अध्यापकों की समस्याएँ ज्ञात कीं। उन्होंने पाया कि अंग्रेजी में बालकों की न्यून संप्राप्ति के कारण थे : अच्छे और प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी, उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का अभाव, तथा नीचे की कक्षाओं में गलत विधियों से शिक्षण कार्य करना। अध्यापकों की मूल समस्या यह पाई गई कि बालकों का पूर्वज्ञान ठीक नहीं होता, अतः उपचारात्मक कार्य करने पर भी कई बालक कक्षा के अपेक्षित स्तर तक आ ही नहीं पाते।

विजयरानी (1969) ने उन घटकों का अध्ययन किया जो नई शिक्षण विधियों के प्रति नव-प्रशिक्षित शिक्षकों की रुचि में ह्रास लाते हैं। उन्होंने ज्ञात किया कि रुचि में अभिवृत्ति की एक महत्वपूर्ण भूमिका रहती है तथा नई तकनीकों व विषयों के प्रति प्रशिक्षित शिक्षकों की सकारात्मक अभिवृत्ति रहती है।

अभिक्रमित अध्ययन

अभिक्रमित अध्ययन पर प्रयोगात्मक कार्य करते हुए माथुर (1969) ने नागरिक शास्त्र में स्वशिक्षण सामग्री तैयार की। उन्होंने स्वशिक्षण तथा पारम्परिक विधि से पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की निष्पत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि प्रायोगिक दल की व नियन्त्रित दल की उपलब्धि में उल्लेखनीय अन्तर रहा। ऐसा ही अन्तर शर्मा (1971) ने अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में पाया। शर्मा के अध्ययन से यह निष्कर्ष सामने आया कि प्रायोगिक दल की संप्राप्ति नियन्त्रित दल की अपेक्षा अच्छी रही। यह भी पाया गया कि विद्यार्थियों ने अभिक्रमित अध्ययन के प्रति अधिक अनुकूल अभिवृत्ति दिखाई। बहल (1971) ने अभिक्रमित अध्ययन सामग्री की व्याख्यान विधि से तुलना की। दोनों दलों की एक ही जाँच-पत्र दिया गया, जिससे ज्ञात हुआ कि विद्यार्थियों की संप्राप्ति अभिक्रमित-अध्ययन विधि से पढ़ाने पर उल्लेखनीय रूप से अधिक रही। भार्गव (1972) ने तीन विधियों—पारम्परिक विधि, अभिक्रमित अध्ययन व नियन्त्रित अभिक्रमित अध्ययन का तुलनात्मक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि अभिक्रमित-अध्ययन की तकनीक, पारम्परिक शिक्षण की अपेक्षा अच्छी थी एवं नियन्त्रित-अभिक्रमित अध्ययन मात्र-अभिक्रमित अध्ययन की अपेक्षा अच्छा था। नियन्त्रित-अभिक्रमित अध्ययन वाले दल की संप्राप्ति उच्चतम रही। गुप्ता (1972) ने गणित में पारम्परिक शिक्षण तकनीक की अभिक्रमित अध्ययन तकनीक से तुलना की एवं दोनों तकनीकों के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन करके पाया कि विद्यार्थी अभिक्रमित अध्ययन तकनीक से ज्यादा अच्छा सीखते हैं। किन्तु यह भी ज्ञात किया कि उस दल की, जिसे अभिक्रमित अध्ययन की विधि से पढ़ाया गया, बुद्धि एवं संप्राप्ति में सहसम्बन्ध गुणांक ·05 के स्तर पर सार्थक नहीं था। विद्यार्थियों ने अभिक्रमित-अध्ययन तकनीक के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति प्रकट की। शर्मा (1972) ने मालूम किया कि इतिहास में स्वशिक्षण-सामग्री से अध्ययन करने पर उच्चतर बुद्धि वाले विद्यार्थी अधिक संप्राप्ति प्रदर्शित करते हैं। किन्तु उसी विषय में

छाजेड़ (1973) ने पाया कि अभिक्रमित अध्ययन विधि बुद्धिमान लड़कियों के लिए बहुत सहायक नहीं थी। उन्होंने यह भी पाया कि उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाली लड़कियाँ अभिक्रमित अध्ययन विधि से अधिक सम्प्राप्ति नहीं कर सकीं।

मुद्गल (1973) ने ज्ञात किया कि रेखीय अथवा शाखीय अभिक्रमों से पढ़ाए जाने पर विद्यार्थियों की सम्प्राप्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता। यादव (1974) ने पाया कि अभिक्रम वाले शिक्षक अनभिक्रम वाले शिक्षकों की अपेक्षा अधिक शाब्दिक पुनर्बलन का प्रयोग करते थे।

अभिप्रेरण

अभिप्रेरण से सम्बन्धित केवल एक अध्ययन शाकल्य (1971) का उपलब्ध है। शाकल्य ने शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त प्रेरकों एवं प्रतिरोधकों के प्रति किशोर छात्र व छात्राओं की अभिवृत्ति की जाँच की। अध्ययन से प्रकट हुआ कि विद्यार्थी जिन प्रेरकों की ओर सर्वाधिक अनुकूल अभिवृत्ति रखते थे वे थे : पारितोषिक, विशेष उत्तरदायित्व देना, सामाजिक प्रतिष्ठा देना (कक्षा नायक आदि चुनकर) तथा उत्साहवर्द्धक टिप्पणी देना (यथा संतोषजनक, अच्छा, उत्कृष्ट आदि)। जिन प्रतिरोधकों के प्रति सर्वाधिक प्रतिकूल अभिवृत्ति पाई गई, वे थे : दूसरे विद्यार्थियों के सामने किसी विद्यार्थी को शर्मिन्दा करना, दूसरों के सामने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करना तथा कड़े शब्दों में अपमानित करना। ऐसा प्रतीत होता है कि अनुसंधान की दृष्टि से अभिप्रेरण का क्षेत्र लगभग उपेक्षित-सा ही रहा है।

छात्रों व शिक्षकों में सम्बन्धों का प्रतिरूप

दो अध्ययन छात्रों व शिक्षकों में सम्बन्धों के प्रतिरूप पर किए गए। खुल्लर (1959) द्वारा हुआ अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान से अधिक सम्बन्धित है, तथा उसमें विद्यार्थियों द्वारा शिक्षकों की भूमिका के बोध और शिक्षकों द्वारा छात्रों की भूमिका के बोध का अध्ययन किया गया। श्रीवास्तव (1974) ने जीव-विज्ञान के शिक्षकों के शाब्दिक व्यवहार का अध्ययन किया। उनके निष्कर्ष निम्न प्रकार से रहे : अध्यापक एवं अध्यापिकाएँ दोनों ही अपेक्षा से अधिक वार्ता करते हैं; भावनाओं, विचारों आदि को स्वीकार करते हुए, अध्यापक अध्यापिकाओं की अपेक्षा अधिक पुनर्बलन (Reinforcement) का प्रयोग करते हैं; अध्यापिकाएँ अध्यापकों की अपेक्षा निर्देश देने व आलोचना करने में अधिक समय बिताती हैं; प्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा अप्रशिक्षित शिक्षकों की कक्षा में छात्र-वार्ता अधिक समय तक चलती है तथा प्रशिक्षित शिक्षक अप्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा अधिक पुनर्बलन का प्रयोग करते हैं।

दृश्य-श्रव्य सामग्री का उपयोग

विद्यालयों में दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग से सम्बन्धित अध्ययनों में गौहल (1961) ने राजस्थान व पंजाब के विद्यालयों में दृश्य-श्रव्य साधनों के उपयोग के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात किया कि पंजाब के विद्यालय दृश्य-श्रव्य सामग्री के माने में

अधिक सुसज्जित थे। हरस्वरूप (1963) ने राजस्थान में सामाजिक शिक्षा में दृश्य-श्रव्य साधनों की उपलब्धि व उपयोग पर अध्ययन किया। उनका निष्कर्ष था कि हालांकि कुछ दृश्य-श्रव्य साधन प्राप्त थे, परन्तु उनका पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा था।

गृहकार्य एवं त्रुटियों का विश्लेषण

गृहकार्य पर केवल एक अध्ययन उपलब्ध हुआ। गहलोत (1970) ने पता लगाया कि विद्यार्थियों के पास गृहकार्य करने हेतु न तो कोई निश्चित समय होता था और न ही उसके लिए सुविधाएँ ही। अनुसंधानकर्त्ता ने यह भी ज्ञात किया कि अंग्रेजी, गणित व सामाजिक ज्ञान में गृहकार्य उपयोगी एवं लाभदायक है, परन्तु सामान्य-विज्ञान में प्रायोगिक कार्य के अभाव में वह प्रभावशाली नहीं हो पाता।

त्रुटियों की खोज करने के लिए छह अध्ययन मिलते हैं। हिमकर (1961) ने पाया कि हिन्दी वर्तनी में छात्राओं की अपेक्षा छात्र अधिक अशुद्धियाँ करते हैं, तथा अशुद्ध उच्चारण ही मुख्यतः वर्तनी की अशुद्धि का कारण हैं। जोशी (1970) ने ज्ञात किया कि राजस्थानी विद्यार्थी अधिकतम अशुद्धियाँ (अ) शब्द क्रम, (आ) कर्त्ता-क्रिया का मेल (इ) क्रिया का रूप आदि की करते हैं। (अ) लिंग (आ) अधिकरण कारक, (इ) विशेषण व (ई) अव्यय के क्षेत्रों में अशुद्धियाँ न्यूनतम थीं। रामनिवास शर्मा (1969) ने भी अपने अध्ययन में हिन्दी की अशुद्धियों का निदान करते हुए ज्ञात किया कि विद्यार्थी मात्रा व अनुस्वार की अशुद्धियाँ अधिक करते हैं तथा व्याकरण, उच्चारण व शब्दों के ज्ञान में भी वे कमजोर रहते हैं। भाटी (1969) ने भाषा तात्त्विक (वर्तनी विषयक) त्रुटियों का अध्ययन किया।

एसवाल (1956) ने पाया कि विद्यार्थी रेखागणित में रचना एवं अंकों की, गलत एवं अनचाहे निष्कर्षों की, न दी हुई स्थिति की अभिधारणा, अस्वच्छ आकृतियों, अशुद्ध मापन आदि की गलतियाँ करते हैं।

अन्य अध्ययन

पियाजे (Piaget) के प्रमेय पर आधारित करके बालकों के ज्ञानात्मक विकास पर एक अध्ययन किया गया। पचोरी (1974) ने ज्ञात किया कि निम्न सामाजिक पृष्ठभूमि वाले बच्चे मात्रा, भार व आयतन के सम्बोध हेतु उपयुक्त ज्ञानात्मक क्षमता नहीं रखते।

राणा प्रब्रापसिंह (1968) ने सामान्य विज्ञान की अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया पर शोध कार्य करके अध्यापकों की प्रतिक्रिया ज्ञात की। उन्होंने देखा कि अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया का उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के साथ सहसम्बन्ध ·38, मध्यम स्तरीय सामाजिक-आर्थिक स्तर के साथ ·15 तथा निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के साथ ·23 था।

कटियार (1974) ने आठवीं कक्षा की लड़कियों की बुद्धि व रुचि का सामान्य विज्ञान के संप्रत्ययों व अवबोध से सम्बन्ध ज्ञात किया। उन्होंने पाया कि बुद्धि का

संप्रत्यय और अवबोध की वृद्धि के साथ सम्बन्ध है। रुचि का भी संप्रत्यय की वृद्धि के साथ सम्बन्ध देखा गया।

गंजू (1965) ने शिक्षण-कौशल के तत्त्वों के निश्चायकों की जाँच की। उन्होंने पता लगाया कि अध्यापक की बुद्धिलब्धि, अभिवृत्ति व शिक्षण अभ्यास मुख्य निश्चायक तत्त्व हैं। उन्होंने यह भी देखा कि दीर्घकालीन अध्यापन अनुभव और अच्छे शिक्षण में कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके अनुसार अध्यापकों के व्यक्तित्व का समायोजन समंक बहुत कम स्तर पर था। व्यास (1971) ने पाया कि अध्ययन गति बौद्धिक क्षमता व प्रत्यक्षज्ञानात्मक गति से सम्बन्धित है, और वह आयु के साथ बढ़ती हैं।

सम्भावनाएँ एवं सुझाव

प्राथमिक एवं पूर्व प्राथमिक स्तर के न्यादर्श पर शोध कार्य उपेक्षित सा रहा लगता हैं। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार एवं महत्व को देखते हुए सर्वाधिक शोध इसी स्तर के न्यादर्श पर किए जाने चाहिए थे। एक अध्यापकीय प्राथमिक विद्यालयों में प्रयुक्त तथा अपेक्षित शिक्षण विधियों के स्वरूप पर शोध कार्य का अभाव खटकने वाला है, जब कि आज राजस्थान में ऐसे प्राथमिक विद्यालय 55% है। इस पक्ष पर अब शोधकर्त्ताओं का ध्यान जाए, इसका भी औचित्य है। अब जबकि प्राथमिक शिक्षा सार्वजनीन होने जा रही है, तब शोधकर्त्ता एवं अध्यापकों को यह जानने की आवश्यकता रहेगी कि वे वर्ग जो कि अब तक उपेक्षित रहे हैं, की रुचि के विषय व अभिप्रेरण के घटक आदि क्या हैं।

प्रयोगात्मक अध्ययनों में एक शिक्षण-विधि की दूसरी शिक्षण-विधि से तुलना करने की अपेक्षा एक ही विधि के विभिन्न परिवर्तको पर अध्ययन अधिक उपादेय हो सकते हैं। साथ ही इस दृष्टि से भी प्रायोगिक शोध कार्य किए जाने चाहिए कि देश के वातावरण में ही किसी व्यावहारिक शिक्षा विधि का विकास किया जा सके।

प्रशिक्षित शिक्षकों ने आधुनिक शिक्षण विधियों के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति प्रदर्शित की है। परन्तु इस सकारात्मक प्रवृत्ति के उपरान्त भी विद्यालयों में आधुनिक शिक्षण विधियों के प्रभावशाली उपयोग का अभाव क्यों है, यह शोध का विषय बन सकता है।

गृहकार्य से सम्बन्धित कई क्षेत्र ऐसे हैं जो अभी तक अछूते हैं, यथा-विभिन्न कक्षाओं, विभिन्न विषयों व सत्र के विभिन्न महीनों में गृहकार्य की अपेक्षित मात्रा पर भी अनुसंधान किया जा सकता है। त्रुटि विश्लेषण के क्षेत्र सें गणित, सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण विषय शोध की परिसीमा से लगभग अछूते रहे हैं।

ज्ञानात्मक विकास, अभिप्रेरण तथा छात्र शिक्षक अन्तःसम्बन्धों का स्वरूप जैसे आधुनिक कहे जा सकने वाले वर्गों में केवल एक-एक अध्ययन हुआ है। उन्हें अधिक महत्वपूर्ण माना जाकर, आजकल अधिक बल दिया जाता है। इस ओर भी शोधकर्त्ताओं का ध्यान अपेक्षित है। ऐसा लगता हैं कि आधुनिक कही जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण विधियों पर शोध बिल्कुल नहीं हुए हैं, जिनमें दल शिक्षण, परिसीमित शिक्षण (Micro Teaching) व जन संचार माध्यम (Mass Media) आदि प्रमुख हैं।

सन्दर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, कमला : राजस्थान उच्च माध्यमिक विद्यालयों में संस्कृत शिक्षण का संगठन, कक्षाध्यापन-विधि तथा छात्रोपलब्धि का सर्वेक्षण,
एम.एड., उदयपुर वि.वि., 1971

अंसार अहमदखान : A Study of the Attitude of English Teachers towards the Structural Approach to the Teaching of English,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

एसवाल, रामचन्द्र : An Investigation into the Causes of Errors in Geometry for Class IX,
M. Ed., Raj. Uni., 1956

कटियार, प्रभादेवी : To Investigate into the Relationship of Concept and Understanding of General Science with Intelligence and Interests of Girls of VIII Class,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

खुल्लर, बीरबिक्रमजीत : Pattern of Teacher Pupil Relationship,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

गंजू, मखनलाल : An Investigation into the Determinants of Teaching Skill,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

गहलोत, मोहनसिंह : A Study of the Homework given in Upper Primary Classes,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

गुप्ता, हरेन्द्रनाथ : A Comparative Study of Conventional Teaching Technique with Programmed Instruction Technique as Applied to Teaching Set Theory in Mathematics and Study of Attitudes of Students towards Instructional Technique,
M. Ed., Raj. Uni , 1972

गौड़, अरुणा : बच्चों की भाषा शिक्षा में प्रत्यय निर्माण के लिए अध्यापकों द्वारा प्रयुक्त विधियों का तुलनात्मक अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1970

गौड़, रघुनाथसिंह : A Comparative Study of Techniques used by Teachers in the Conceptual Teaching of Language to Childern,
M. Ed., Raj Uni., 1970

गौहल, जी. एस. : A Comparative Study of the Use of Audio-Visual Aids in Schools (with special reference to the Teaching of Social Studies),
M. Ed., Raj. Uni., 1961

घाणेकर, विजया : किशोर छात्राओं की संस्कृत के प्रति अभिवृत्ति,
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

चौधरी, बच्चनसिंह : **अर्थ-ग्राह्यता और वाचन गति पर मौन पठन के अभ्यास के प्रभाव का अध्ययन,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1969

छाजेड़, सरोज : **इतिहास में स्वाध्याय कार्यक्रम का निर्माण एवं शैक्षिक परिस्थितियों में प्रभावोत्पादकता,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

छिब्बर, केवलकृष्ण : Secondary School Pupils' Attitude towards English,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

छिब्बर, विजयलक्ष्मी : **अभिक्रमित अध्ययन तथा परम्परागत प्रणाली की प्रभावोत्पादकता का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

जुल्का, गुलशनलाल : A Study of Correlation in Basic Schools of Udaipur,
M. Ed., Raj. Uni , 1957

जोशी, कन्हैयालाल : **राजस्थानी-भाषी छात्रों द्वारा हिन्दी लिखने में की जाने वाली वाक्य संरचनात्मक त्रुटियों का विवेचनात्मक अध्ययन,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1970

तिवारी, पुरुषोत्तमलाल : **लिखित कार्य के संशोधन की दो विधियों का एक प्रयोग-निष्ठ तुलनात्मक अध्ययन,**
राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1967

पचौरी, अविनाशचन्द्र : Horizontal Decalage in Seven, Nine, Eleven and Twelve Year-old Children of Contrasting Social Backgrounds,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

पचोली, घासीलाल : A Study of the Children's Interest in Hindi Poetry at the Stage of Class VIII,
S.I.E., Udaipur, 1967

पंचोली, घासीलाल : A Comparative Study of Alphabet Method and Sentence Method in Hindi,
S.I.E., Udaipur, 1968

पन्त, हरिश्चन्द्र : An Enquiry into the Problems of English Teachers Teaching Class IX in the Schools of Udaipur City,
M. Ed , Udaipur Uni., 1967

पांडे, आभा : A Comparative Study of Efficacy in Learning through Proprammed Learning Versus Traditional Learning,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

बलवन्तसिंह : Play Activities of Nursery School Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1958

बहल, सत्येनसिंह : An Experimental Evaluation of the Technique of Programmed Instructions in Commerce at Secondary Stage,
M. Ed., Udaipur Uni., 1971

भाटी, मदनसिंह	:	**परिनिष्ठित हिन्दी सीखने में राजस्थानी छात्र-छात्राओं की भाषा तात्विक (वर्तनी-विषयक) त्रुटियों का विवेचनात्मक अध्ययन,** एम. एड., राज. वि.वि., 1969
भार्गव, माया	:	A Comparative Study to show the Effectiveness in the Teaching of English to Primary Classes, M. Ed., Raj. Uni., 1972
माथुर, ओमप्रकाश	:	Preparation of Auto-Instructional Programmes in Civics, M. Ed., Raj. Uni., 1969
माथुर, मोहिनी	:	A Critical Study of Mathematics Teaching in Higher Secondary Schools of Ajmer City, M. Ed., Raj. Uni., 1974
मिश्र, मोहन	:	Role of Hypotheses in Problem Solving, M. Ed., Raj. Uni., 1973
मुद्गल, बिशनस्वरूप	:	A Comparative Study of Linear versus Branching Programmed Instructions to Teach Multiple Principles to Class IX, M. Ed., Raj Uni., 1973
यादव, प्रहलादसिंह	:	A Comparative Study of Achievement of Two Groups of Students Exposed to Two different Instructional Strategies, M. Ed., Raj. Uni., 1974
राणा प्रतापसिंह	:	An Investigation into Teaching-Learning Process in General Science for 12+, M. Ed., Raj. Uni., 1968
वाजपेयी, अवधविहारी एवं पंचोली, घासीलाल	:	A Comparative Study of Handwriting with Kalam, Holder, Pen & Pencil, S.I.E., Udaipur, 1970
व्यास, बी. सी. एवं मेहता, बी. एस.	:	A Study of the Utilisation of Library for Promoting Proper Reading Habits among the Students of Secondary and Higher Secondary Schools, S.I.E., Udaipur, 1970
व्यास, शुभा	:	Childern's Learning as related to their Intelligence and Perceptual Speed, M. Ed., Raj. Uni., 1971
विजयवर्गीय, डी. पी.	:	**कार्यानुभव सर्वेक्षण,** राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1970
विजयरानी	:	A Study of Factors that Deteriorate the Interests of Newly Trained Teachers in the New Methods of Teaching, M. Ed., Raj. Uni., 1969
शर्मा, नाथूलाल	:	An Auto-Instructional Programme on Factors of Production : Its Preparation and Evaluation, M. Ed., Raj. Uni., 1971

शर्मा, बैजनाथ : A Comparative Study of Teaching-Learning Process of Trained and Untrained Teachers of Hindi in Rajasthan,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

शर्मा, मांगीलाल : **छात्रों के धर्म सम्बन्धी ज्ञान एवं अभिवृत्ति में परिवर्तन : एक प्रयोगात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

शर्मा, रामनिवास : Diagnosis of Errors in Hindi,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

शर्मा, रामावतार : A Study into the Methods of Teaching Hindi in School Situations,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

शर्मा, समर्थसिंह : **इतिहास में स्वाध्याय कार्यक्रम का निर्माण एवं इसकी शैक्षिक परिस्थितियों में प्रभावोत्पादकता,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

शर्मा, सूरजमाल : Relative Merits of Basic and Non Basic Methods of Teaching,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

शर्मा, हरिश्चन्द्र : Auditory Discrimination of English Consonant Phonemes,
M. Ed., Udaipur Uni., 1973

शाकुल्य, उषा : **शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त प्रोत्साहकों व हतोत्साहकों के प्रति किशोर छात्र-छात्राओं की मनोवृत्तियाँ,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1971

श्रीवास्तव, नगेन्द्रनाथ : Verbal Behaviour Pattern of Biology Teachers Variables: Sex, Training Experience and Students' Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

शुक्ला, ओमप्रकाश : Developing a Strategy for Individualized Teaching in Chemistry at X Class Level,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

सक्सेना, राधारानी : **उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों के समायोजन तथा कक्षा में उत्पन्न संवेगात्मक समस्याओं का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

स्वामी, बंशीलाल : An Investigation into the Teaching-Learning Process of Adolescents in Hindi along with the Optimum Use of the Existing Facilities in Rajathan,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

सिंघी, धनराज : Change of Attitudes among Children in Basic Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

हरस्वरूप : A Study of the Use of Audio-Visual Aids in Social Education in Rajasthan,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

हिमकर, चन्द्रमोहन : Spelling Errors in Hindi,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

त्रिपाठी, बृजनन्दनलाल : Problems of Large Classes and Suitable Methods of Teaching,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

त्रिलोटिया, भगवानसिंह : A Comparative Study of the Effective Teaching in Kindergarten and Primary Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

□

व्यक्तित्व

□ डा. छैल बिहारी माथुर
□ डा. चन्द्र प्रकाश माथुर

राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में पीएच. डी. तथा एम. एड. स्तर पर व्यक्तित्व को शोध का मुख्य विषय निश्चित करके जो शोध कार्य 1974 तक सम्पन्न हुए उन्हें कुल 12 अनुभागों में विभाजित किया जा सकता है। यथा: व्यक्तित्व के कारक, व्यक्तित्व के विभेदकारी घटक, व्यक्तित्व के धार्मिक नैतिक घटक, व्यक्तित्व निर्धारण, दुश्चिन्ता एवं आक्रामक प्रकृति, प्रत्यक्षन, आत्म-प्रत्यय, आवश्यकता एवं समायोजन, सामाजिक संबंध, सामाजिक व्यवहार, सृजनशीलता तथा शैक्षिक निहितार्थ।

व्यक्तित्व के कारक (Factors of Personality)

व्यक्तित्व के कारकों से सम्बन्धित अनुसंधानों में अध्ययनकर्त्ताओं की रुचि किशोर एवं किशोरियों के बुद्धि स्तर एवं किन्हीं विशिष्ट व्यक्तित्व कारकों के बीच सम्बन्ध ज्ञात करने में ही रही है। द्विवेदी (1970) ने उच्च एवं निम्न सम्प्राप्ति स्तर के किशोरों की बुद्धिलब्धि तथा व्यक्तित्व समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करके निष्कर्ष निकाले कि बुद्धि के स्तर का संप्राप्ति पर प्रभाव पड़ता है, निम्न संप्राप्ति वाले बालक प्रायः कुसमायोजित एवं लापरवाह व उच्च संप्राप्ति वाले बालक प्रायः विचार, चिन्तन एवं मनन करने वाले होते हैं। सक्सेना (1973) ने विद्यालयी किशोरियों के व्यक्तित्व के कतिपय घटकों पर बुद्धिलब्धि एवं मौलिक चिन्तन के प्रभाव का अध्ययन करके पता लगाया कि मौलिकता बुद्धि स्तर पर इतनी आश्रित नहीं है जितनी कि कल्पना पर; व्यक्तिगत सम्बन्धों पर वैचारिक भिन्नताओं का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता तथा किशोरियों की वैयक्तिक मानसिक आवश्यकताओं (यथा, आक्रामकता स्वायत्तता, प्रभुत्व, परिपोषण, सैक्स इत्यादि) पर उनके बुद्धि स्तर एवं मौलिक चिन्तन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

व्यक्तित्व के विभेदकारी घटक (Differential Traits of Personality)

विभेदकारी घटकों के अध्ययन के क्षेत्र में कुण्डू (1966) ने पीएच. डी. स्तर पर अनुसूचित जनजाति एवं अन्य जातियों के बाल अपराधियों के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन किया। अपराधी व्यक्तित्व के जो महत्वपूर्ण विभेदकारी घटक प्रकाश में आए, वे थे: घर पर असुरक्षा की भावना, असन्तोषजनक बालक-अभिभावक सम्बन्ध, माँ-बाप की ओर से कटुता, मनोरंजन के साधनों का अभाव, संपीडन,

आर्थिक अभाव, माँ का घर से बाहर रहना, अभिरुचियों का अभाव एवं अस्वास्थ्यकर पर्यावरण।

तंवर (1972) ने छात्रों में उत्तरदायित्व की भावना एवं अन्य घटकों से उसके सहसम्बन्ध के अध्ययन में उत्तरदायित्व की भावना और बुद्धिलब्धि स्तर के बीच तथा संप्राप्ति और उत्तरदायित्व में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया, परन्तु सामाजिक-आर्थिक स्तर विभेदक नहीं पाया गया। ढिल्लो (1959) द्वारा किए व्यक्तित्व के विभेदकों के अध्ययन में उच्च बुद्धिलब्धि वाले छात्रों में निम्न बुद्धि वालों की अधिक संगठनात्मक शक्ति, वैचारिक परिपक्वता, भावनात्मक नियन्त्रण एवं स्थिरता पाई गई। मानसिक साधनों, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, दुश्चिन्ता एवं सृजनात्मक क्षमता के सन्दर्भ में दोनों प्रकार के छात्रों में अन्तर स्पष्ट नहीं हुआ। चौहान (1972) द्वारा किए गए अध्ययन में निम्न संप्राप्ति वाले छात्र प्रायः अथिति सत्कारी, नैतिक एवं सामाजिक आदर्शों वाले व बहिर्मुखी पाए गए, जबकि उच्च संप्राप्ति वाले छात्र अन्तर्मुखी पाए गए।

ललवानी (1972) ने विभिन्न विषय संकायों के छात्राओं के व्यक्तित्व वैशिष्ठ्य का अध्ययन किया। केटल द्वारा निर्मित व्यक्तित्व के चौदह घटकों के टेस्ट के आधार पर विज्ञान के छात्र अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिलब्धि वाले, शान्त, निर्मल स्वभाव के, आत्म विश्वासी एवं कुण्ठाविहीन; मानविकी वर्ग के (आर्ट्स) छात्र स्थिर संवेगात्मक स्थिति वाले परन्तु कमजोर परम अहम् वाले एवं वाणिज्य के छात्र कमजोर अहम् वाले वास्तविक दृष्टिकोण वाले, कुण्ठा विहीन एवं आत्मविश्वासी पाए गए। प्रभाकर (1970) द्वारा किए गए अध्ययन से भी लगभग ऐसे ही निष्कर्ष निकले। गौड़ (1970) ने शहरी किशोरों की वैयक्तिक विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। व्यक्तित्व विशेषता परख (केटल द्वारा निर्मित) के आधार पर दोनों वर्गों में कोई महत्वपूर्ण भेद प्रदर्शित नहीं हुआ, यद्यपि ग्रामीण किशोर अपेक्षाकृत अधिक चिन्ताग्रस्त, संवेदनशील, खिन्न, नम्र स्वभावी, आसानी से उत्तेजित हो जाने वाले एवं कर्त्तव्य-परायण पाए गए।

लक्ष्मी पाण्डे (1968) ने कुमार की आवश्यकता निर्धारिणी (नीड रेटिंग स्केल) के आधार पर 13 एवं 17 आयु के विभिन्न कक्षाओं के लड़के एवं लड़कियों की आवश्यकताओं का अध्ययन किया जिससे प्रदर्शित हुआ कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में विभिन्न स्तरों में अवमानीकरण, सम्बन्ध स्थापन, सम्मान, प्रभुसत्ता की उपलब्धि, सेवाभाव, स्वायत्तता, आत्म प्रदर्शन एवं आक्रामक प्रकृति अधिक पाई जाती है। सत्य-प्रकाश शर्मा (1968) ने लोकप्रिय एवं तिरस्कृत छात्रों के अध्ययन में पाया कि लोकप्रिय छात्र सामान्यतः व्यक्तित्व में, घर में, स्कूल में, स्वास्थ्य में, व मनः स्थिति में अधिक समायोजित होते हैं; जहाँ तक घर में समायोजन की स्थिति है दोनों प्रकार के छात्रों में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं होता, मगर लोकप्रिय छात्र आत्मविश्वास के साथ उत्तरदायित्व वहन करने में तत्पर, सही समय पर एवं लगातार विद्यालय में उपस्थित रहने वाले, झगड़ों से दूर रहने वाले व सहयोगी होते हैं। लक्ष्मीलाल शर्मा (1971) ने चुने हुए छात्र नेताओं के व्यक्तित्व के लाक्षणिक घटकों का अध्ययन करने पर मालूम किया कि

उनमें सामान्य से उच्च स्तर की बुद्धिलब्धि मिलती हैं, वे स्वयं की औरों से अधिक उच्च समझते हैं, वे आत्म विश्वासी, समाज में घुलने मिलने वाले, बातूनी, महत्वाकांक्षी एवं समायोजित होते हैं। वे अच्छी योजना बनाने वाले, उच्च आदर्श वाले, आशावादी व अध्यवसायी उच्च आदर्श वाले होते हैं, तथा वे प्रायः उच्च कुलीन परन्तु अधिकारिवों के विरुद्ध विद्रोह करने वाले होते हैं।

रमाकुमारी शर्मा (1969) ने पब्लिक स्कूल के विद्यार्थियों का अध्ययन करके ज्ञात किया कि वे भावनात्मक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व, स्थिर, जीवन के प्रति वास्तविक दृष्टिकोण वाले व एकाग्रचित थे। साधारण स्कूलों के विद्यार्थियों में शर्मीले, आत्मोन्मुख, विपरीत सैक्स वालों से आँख चुराने वाले, दूसरों की भावनाओं के के प्रति जागरूक छात्र मिले, परन्तु पब्लिक स्कूल के छात्र अपेक्षाकृत अधिक सहृदयी, आत्माभिव्यक्ति वाले, सहयोग के लिए तत्पर, औपचारिक समूह बनाने वाले, आलोचना से न डरने वाले एवं स्वतन्त्र दृष्टिकोण वाले थे।

इनके अतिरिक्त दो अध्ययन ऐसे भी हैं जिनमें शिक्षकों पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। धरनीधर शर्मा (1969) ने अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं के अध्ययन में पाया कि महिलाओं की अपेक्षा पुरुष अधिक सामाजिक, स्थिर (संवेगात्मक) मनःस्थिति वाले, उत्साही, दृढ़ परमअहम् वाले, साहसिक कार्य पसन्द करने वाले, नियन्त्रित एवं अनुशासित होते हैं, जबकि महिलाओं में अपेक्षाकृत अधिक आक्रामकता, शक्कीपन, रूढ़ियों से चिपके रहने की प्रवृत्ति एवं अपने संगठन पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति पाई गई। गुप्ता (1972) ने पाया कि अन्य विषयों के छात्राध्यापकों की अपेक्षा विज्ञान के छात्राध्यापक अधिक बुद्धिलब्धि वाले, शर्मीले परन्तु आत्मनिर्भर थे। वे वाणिज्य के छात्राध्यापकों से अधिक संकोची; कला अध्यापकों से कम अहम्पुंज वाले, परन्तु संकोची एवं व्यावहारिक; कृषि के छात्राध्यापकों से अधिक उच्च बुद्धि स्तर वाले, कल्पनात्मक एवं आत्मनिर्भर पाए गए।

व्यक्तित्व के धार्मिक नैतिक घटक (Religious & Moral Traits)

मूल्यों एवं अभिवृत्तियों का अध्ययन इस क्षेत्र में किया गया हैं। दामोदर य. पाठक (1964) का अध्ययन ऐसे किशोरों को पहिचानने के लिए किया गया जिनमें आस्तिकता, अनास्तिकता अथवा अर्द्ध आस्तिकता की स्थिति हो। पता चला कि ईश्वर में विश्वास रखने वाले अपेक्षाकृत अधिक थे, अनास्तिकों का बुद्धिलब्धि स्तर आस्तिकों की अपेक्षा ऊँचा पाया गया, किशोरों के व्यक्तित्व निर्माण में उनके घरेलू वातावरण का महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया। आतमसिंह (1959) ने किशोरों की नैतिक मान्यताओं का अध्ययन करके पाया कि धार्मिक शिक्षा एवं प्रार्थना का किशोरों की नैतिक मान्यताओं से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है; नैतिक मान्यता के परीक्षण में छात्राओं के अंक छात्रों से कम रहे और यह अन्तर ईमानदारी के संदर्भ में अधिक सार्थक था। बुद्धि परीक्षण में उच्च अंक प्राप्त करने वाले सामान्यतः नैतिक मान्यताओं में भी उच्च ही रहे। जैन (1962) ने जब ग्रामीण एवं शहरी किशोरों की नैतिक मान्यताओं का अध्ययन किया तो पाया कि धोखा देने के सन्दर्भ में 11–12 वर्ष के समुदाय एवं 14–15

वर्गीय समुदाय में अधिक भेद नहीं था एवं लड़कियाँ धोखा देने में लड़कों से तथा ग्रामीण बालक शहरी बालकों से ऊँचे निकले। चिरंजीलाल भट्ट (1966) के अनुसार दोनों के नैतिक मूल्यों में भी अन्तर था और बुद्धिलब्धि स्तर एवं नैतिक मूल्यों में सीधा सम्बन्ध था। केलर (1962) ने मालूम किया कि नैतिक निर्णयों पर ग्रामीण एवं शहरी छात्रों में कोई भेद नहीं था, परन्तु अभिभावकों के आर्थिक-सामाजिक स्तर, स्वयं का बुद्धिलब्धि स्तर एवं संप्राप्ति स्तर नैतिक निर्णयों के स्तर को सीधा प्रभावित करते हैं। उधर चिरंजीलाल भट्ट (1966) ने मालूम किया कि आयु वृद्धि के साथ-साथ नैतिक मूल्य गहनता प्राप्त करते हैं।

व्यक्तित्व-निर्धारण (Prediction of Personality)

व्यक्तित्व निर्धारण संबंधी अनुसंधानों में पीएच. डी. तथा एम. एड. दोनों स्तरों पर सम्पादित ढोंढियाल का कार्य अपने क्षेत्र में नवीन प्रयोग था, परन्तु वह विसामान्य बालकों के न्यादर्श पर किया गया था। छैलबिहारी माथुर का पीएच. डी. शोधकार्य इस दिशा में अपना अलग स्थान रखता है क्योंकि वह शोधकार्य सामान्य बालक-बालिकाओं के न्यादर्श पर सम्पादित किया गया था।

ढोंढियाल (1959) के एम. एड. अनुसंधान से निष्कर्ष निकलता है कि किसी भी व्यक्ति की कलाकृतियों के अध्ययन से उसके व्यक्तित्व को पहिचानना संभव है। कुछ विशिष्ट संकेत इस प्रकार से निकले कि सामान्य बालक घर को चित्रित करते हैं, जबकि असामान्य बालक नहीं करते; बालक प्रायः अपने समलिंगी व्यक्तियों को ही चित्रित करते हैं। चित्र का स्तर चित्रकार के बुद्धिलब्धि स्तर से सीधे सहसम्बद्ध था; उच्च बुद्धि वाले बालकों ने विभिन्न रंगों का उचित प्रयोग किया, मगर रंगों की पसंद का बुद्धि के स्तर से कोई सीधा संबंध नहीं दिखा। ढोंढियाल (1964) द्वारा ही संपन्न समविषयक पीएच. डी. शोध कार्य में बालकों द्वारा निर्मित चित्रों के विश्लेषण से कल्पना, सामाजिकता, वास्तविक अंकन, अहम्, अपराध बोध इत्यादि का मापन संभव पाया गया; मानसिक आवश्यकताओं, भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्व, दुश्चिन्ताओं इत्यादि की जानकारी भी सम्भव पाई गई। छैलबिहारी माथुर (1972) ने पीएच. डी. स्तर के अनुसंधान में बालकों के मौलिक चित्रांकन को उनके व्यक्तित्व का अभिदर्शक पाया। शशि भार्गव (1972) ने स्वतः चित्रण में किशोरी छात्राओं के पेन्सिल के आघातों को उनके संवेगों का व्यंजक सिद्ध किया। शिवशंकर व्यास (1972) ने व्यक्तित्व संरूपों के पूर्वसूचक के रूप में नियंत्रित कल्पना (Controlled Fantacy) के लिए प्रक्षेपण उपकरण तैयार किया, जो शाब्दिक है।

दुश्चिन्ता एवं आक्रामक प्रवृत्ति (Anxiety & Aggression)

इस क्षेत्र में एम. एड. स्तर पर शोधकार्य 1962 में प्रारम्भ हुए तथा तीन वर्ष के अन्तराल के पश्चात्, 1970 एवं 1974 के वर्ष को छोड़ कर, इस क्षेत्र में 1966 से एक-दो शोधकार्य प्रतिवर्ष होते रहे। पीएच. डी. स्तर पर भी एक शोधकार्य 1963 में गुलशनलाल जुल्का द्वारा संपन्न किया गया था। अनुसंधान के लिए प्रिय विषय

दुश्चिन्ता का रहा जिसमें अब तक पाँच शोध कार्य सम्पादित हुए हैं, उसके बाद कुण्ठा प्रिय विषय रहा है।

पीएच. डी. स्तर पर जुल्का (1963) ने बच्चों में आक्रामक प्रवृत्ति, भय एवं दुश्चिन्ताएँ विषय पर शोधकार्य किया। न्यादर्श था—भील व दूसरे बालक जो बीहड़ में रहते थे। निष्कर्षों से पाया गया कि—जंगली जानवरों तथा साँप से, अध्यापक द्वारा दण्ड, भूत-प्रेत, चोर इत्यादि से, घर पर दण्ड, जंगल, अंधेरे से, बाढ़ तथा ऐसे ही मनोवैज्ञानिक भय के रूप क्रमशः सभी में विद्यमान थे। भील बालकों की अपेक्षा अन्य बालकों में अधिक आक्रामक प्रवृत्ति पाई गई। इसमें विशेष रूप से—हमला, गाली-गलौज, खून करने संबंधी बातचीत व आक्रामक विचार विशेष थे। दूसरों से अस्वीकृति के कारण तथा हीनता की भावना के कारण भी दुश्चिन्ता पाई गई। शोधकर्त्ता ने पाया कि दोनों प्रकार के न्यादर्शों में भय व दुश्चिन्ताओं का सार्थक अन्तर नहीं था, परन्तु दूसरे बालक भील बालकों की तुलना में अधिक आक्रामक प्रकृति के पाए गए। जोशी (1966) ने पाया कि दुश्चिन्ता की अधिकता का सीधा प्रभाव शैक्षिक संप्राप्ति पर पड़ता है। दुश्चिन्ता के बढ़ने पर संप्राप्ति कम तथा उसके घटने पर अधिक होती है। अंग्रेजी, गणित व सामान्य विज्ञान के प्रति दुश्चिन्ता अधिक पाई गई। यह भी पाया गया कि लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा अधिक दुश्चिन्ताएँ होती हैं। मगर, बैद (1972) ने दुश्चिन्ताओं तथा उनकी बुद्धिलब्धि के मध्य कोई सम्बन्ध नहीं पाया। जोशी के अनुसार दुश्चिन्ता का आर्थिक-सामाजिक स्तर से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं दिया। वीरमानी (1968) ने नवयुवतियों के न्यादर्श को लेकर किए गए अध्ययन में पाया कि कोई भी छात्रा दुश्चिन्ता से मुक्त नहीं थी तथा उनकी दुश्चिन्ताएँ उनके जीवन में समायोजन से सीधी सम्बन्धित थीं। दुश्चिन्ताओं एवं द्वन्द्व के प्रति प्रतिक्रिया संवेगात्मक थी। यह भी पाया गया कि दुश्चिन्ताएँ अधिकांशतः अभिभावकों द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों के कारण थीं। असमायोजित नवयुवतियों में दुश्चिन्ता की अधिकता थी। धाँगड़ (1971) ने पाया कि खेलने वाले छात्रों में न खेलने वाले छात्रों की अपेक्षा कम दुश्चिन्ताएँ होती हैं। होड़ा (1973) ने पाया कि स्कूली शिक्षा से शिक्षार्थियों में दुश्चिन्ताओं का प्रादुर्भाव नहीं होता। मगर कुण्ठित व अकुण्ठित विद्यार्थियों के नेतृत्व के गुणों एवं उनके आर्थिक-सामाजिक स्तर में सार्थक अन्तर होता है।

कुण्ठा के क्षेत्र में छत्रमोहन शर्मा (1962) का शोधकार्य अपने ढंग का सर्व-प्रथम था। न्यादर्श-वर्गीकरण का आधार था मानसिक योग्यता। उन्होंने पाया कि उच्च स्तरीय व सामान्य स्तरीय बालकों में निम्न स्तरीय बालकों की तुलना में कुण्ठा की परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता अधिक होती है। निम्न स्तरीय बालकों में अहम् प्रतिरक्षा की कमी, परमअहम् सामान्य से कम तथा दंडित होने की आशंका की भावना अधिक होती हैं। 1973 में अपने पीएच. डी. अध्ययन में उन्होंने कुण्ठा-प्रतिक्रिया मापनी का निर्माण तथा मानकीकरण किया जिसका विश्वसनीयता गुणांक (परीक्षण–पुनः परीक्षण विधि के आधार पर) ·21 से ·71 तक था। शर्मा ने निष्कर्ष निकाले कि किशोर युवक-युवतियों में 12 से 16 वर्ष की आयु

में अतिरिक्त आक्रामकता पाई जाती है तथा इसके साथ ही उनमें अनुक्रमण व अन्तः प्रवेश की प्रवृत्ति भी पाई जाती है; किशोर युवक-युवतियों में अहम् प्रतिरक्षा के साथ-साथ आवश्यकता का नैरन्तर्य तथा अवरोध-प्रधानता भी पाई जाती है; किशोर युवतियों में 14 वर्ष की आयु तक आयुवृद्धि के साथ-साथ अतिरिक्त आक्रामकता भी बढ़ती है, परन्तु 15 वर्ष की आयु तक अनुक्रमण भावना आयु के बढ़ने के साथ-साथ कम होती है; किशोर युवकों में अन्तः प्रवेशी वृत्ति पर आयु के बढ़वे का कोई प्रभाव नहीं होता। वे सामान्यतया स्थिर रहते हैं, परन्तु आवश्यकता के नैरन्तर्य के सन्दर्भ में उनमें उतार-चढ़ाव पाए गए। आयु के बढ़ने के साथ-साथ युवकों में अहम् प्रतिरक्षा कम होती पाई गई। चौधरी (1967) के अनुसार निम्न उच्च समूह को छोड़कर अन्य सभी आर्थिक-सामाजिक स्तर के समूह कुण्ठा से ग्रस्त पाए गए तथा आर्थिक-सामाजिक स्तर और कुण्ठा-प्रतिक्रिया के मध्य सार्थक सम्बन्ध पाया गया। कमला शास्त्री (1967) ने निष्कर्ष निकाले कि तरुणाई के आरम्भ के समय लड़कियों में आवश्यकताएँ व दृढ़ता कम होने लगती हैं; उस समय लड़कियों का परिवार व स्वास्थ्य में समायोजन अप्रभावित रहता है, परन्तु उनके सामाजिक तथा संवेगात्मक समायोजन पर प्रभाव दिखता है; स्कूली अध्ययन पर इस समय कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मगर, इस समय उनमें अतिरिक्त आदिमभावना उभरती है और अहम् प्रतिरक्षा बढ़ती है।

आक्रामक प्रकृति के क्षेत्र में केवलए क अध्ययन 1969 में पंचोली का हुआ मिलता है। उन्होंने पाया कि आक्रामक प्रकृति के छात्रों में गाली-गलौज करना, दूसरों को मारना-पीटना, बड़ों के आदेशों की अवहेलना करना तथा कक्षा में बाधा डालना आदि प्रवृत्तियाँ पाई गईं। इस प्रकृति के कारण थे—जन्म के समय खराब स्वास्थ्य, कुरूपता, वाग्दोष, सामान्य से भिन्न बुद्धिलब्धि आदि। शहरी व ग्रामीण किशोरों की आवश्यकताओं के अध्ययन में कौल (1969) ने पाया कि लड़के व लड़कियों, दोनों में ही, स्वायत्तता, संबंधन समानता तथा सम्मान की भावना की आवश्यकता समान रूप में होती है। परिपाटी की आवश्यकता सबने स्वीकार की। ग्रामीण छात्राओं में विपमलैंगिक रति की भावना कम पाई गई, परन्तु हीनता की भावना उनमें अधिक पाई गई। शहरी बालकों में खून, आक्रमण आदि से संबंधित साहित्य के प्रति रुचि पाई गई तथा खुली आलोचना, जिनसे विचार न मिलें उनसे लड़ने की भावना भी उनमें पाई गई।

तनाव के क्षेत्र में 1972 में रामेश्वर प्रसाद व्यास ने व्यावसायिक शिक्षाधीन विद्यार्थियों का समाज मनोमितिक अध्ययन किया, जिसके अनुसार विधि एवं शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में दुश्चिन्ताएँ समान्तर थीं। मेडिकल व्यवसाय के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में ग्रामीण विद्यार्थियों की अपेक्षा कम तनाव पाया गया। ग्रामीण व शहरी शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के तनाव, आर्थिक-सामाजिक स्तर तथा समायोजन में अन्तर नहीं था।

प्रत्यक्षन (Perception)

इस क्षेत्र में चौहान (1958) द्वारा राजस्थान में दृष्टि प्रत्यक्षन सम्बन्धी अब तक किए गए एक मात्र अनुसंधान के बाद इस क्षेत्र में कोई काम नहीं हुआ

मिलता। इस अध्ययन में पाया गया कि इकतन्त्रिका में होने वाली गति से प्रतिबोधन पैदा होता हैं, गति के उपरान्त विभेदीकरण की प्रक्रिया स्वरूप आकृतियाँ जनमती हैं। प्रतिबोधन में नर्सरी स्कूलों के छात्र समान आयु के भील बालकों से अधिक सक्षम थे। प्रतिबोधन क्षमता ऐसे व्यक्तियों में अपेक्षाकृत कम पाई गई जो मानसिक रूप से अस्वस्थ थे।

आत्म-प्रत्यय (Self concept)

व्यक्तित्व एवं आत्म-प्रत्यय के क्षेत्र में कुल चार शोधकार्य उपलब्ध हुए हैं। सर्वप्रथम 1968 में तथा उसके पश्चात् 1972 से 1974 के मध्य प्रति वर्ष एक-एक। सर्वप्रथम पाण्डे ने 1968 में निष्कर्ष निकाला कि किशोर बालक स्वयं अपने में दोष अनुभव करते हैं, दायित्व से दूर भागते हैं, नवीन परिस्थितियों में समायोजित नहीं हो पाते तथा अपने में हीनता की भावना अनुभव करते हैं, उनमें उपलब्धिगत ग्रंथि होती है तथा कुछ लाभप्रद व मूल्यात्मक काम करने की भावना होती है। किशोरियाँ अपेक्षाकृत भाग्यवादी होती हैं, उनमें आक्रामक भावना होती है, परन्तु वे परीक्षा के समय में सामान्यतया अधीर भी रहती हैं, और आलोचना से दूर रहना चाहती हैं। आशाकुमारी शर्मा (1973) ने विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के परिणामों के मध्य सह-सम्बन्ध गुणांक एवं क्रांतिक अनुपात (क्रिटिकल रेशो) की गणना करने पर पाया कि किशोर छात्र-छात्राओं का व्याख्यात्मक एवं उपार्जित 'स्व' बुद्धिलब्धि से सम्बन्धित हैं तथा आर्थिक-सामाजिक स्तर का इसके विकास पर कोई प्रभाव नहीं होता। कक्षा स्तर के अनुसार इसके विकार में कोई अन्तर नहीं पाया गया, परन्तु 15 आयु के छात्र-छात्राओं के मध्य अन्तर पाया गया। सरलाकुमारी शर्मा (1974) ने पाया कि लोकप्रिय एवं साधारण छात्राओं के व्याख्यात्मक एवं उपार्जित 'स्व' के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं था, मगर दोनों के नेतृत्व विशेषकों में सार्थक अन्तर था। लोकप्रिय छात्राएँ साधारण छात्राओं की अपेक्षा अधिक दृढ़ निश्चयी, संवेगात्मक रूप से स्थिर तथा मेहनती थीं। चन्दोक (1972) ने पाया कि आत्म-प्रत्यय एवं मानसिक योग्यता स्तर तथा असमायोजन के बीच उच्च तथा धनात्मक सहसम्बन्ध था। छात्रों की तुलना में छात्राओं में हीनता की भावना तथा संवेगात्मक अस्थिरता अधिक थी।

आवश्यकता एवं समायोजन (Needs & Adjustment)

व्यक्तित्व समायोजन के क्षेत्र में शंकरलाल शर्मा (1966) ने मालूम किया कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों तथा छात्राओं में उत्तरदायित्व की भावना के मध्य कोई सार्थक अन्तर नहीं होता। उत्तरदायित्व की भावना का धनात्मक एवं सार्थक सम्बन्ध शैक्षिक सम्प्राप्ति एवं सामाजिक स्वीकृति के बीच प्राप्त हुआ, परन्तु व्यक्तित्व समायोजन के साथ यह सम्बन्ध ऋणात्मक रूप में रहा। यज्ञनारायणसिह (1968) तथा जैन (1969) ने छात्रों के समाजमिति स्तर को आधार बनाकर उनके व्यक्तित्व समायोजन का अध्ययन किया। उन्होंने लोकप्रिय, एकान्तप्रिय, उपेक्षित एवं अस्वीकृत छात्रों का चयन करके निष्कर्ष निकाला कि लोकप्रिय छात्रों का घर में, समाज में तथा विद्यालय में संवेगात्मक समायोजन एकान्तप्रिय, उपेक्षित एवं अस्वीकृत छात्रों से

निस्सन्देह रूप से अच्छा था। एकान्तप्रिय छात्रों का विद्यालय समायोजन उनके सामाजिक तथा संवेगात्मक समायोजन से अच्छा पाया गया। अस्वीकृत छात्रों का कुल समायोजन लोकप्रिय, एकान्तप्रिय एवं उपेक्षित छात्रों की तुलना में निम्न स्तरीय पाया गया तथा अस्वीकृत एवं उपेक्षित छात्रों का गृह समायोजन लोकप्रिय एवं एकान्तप्रिय छात्रों की तुलना में निम्न स्तरीय प्राप्त हुआ। जैन के अनुसार लोकप्रिय एवं अस्वीकृत छात्रों के गृह, स्वास्थ्य, संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अन्तर नहीं था, परन्तु अध्यापकों और कक्षा के साथियों से उनके सम्बन्धों में, खेलकूद, भ्रमण व कैम्प तथा शैक्षिक कार्यों में सार्थक अन्तर था। अस्वीकृत छात्रों को उनके अभिभावकों द्वारा मंत्रणा दी जाती थी, उनमें बीमारी के चिह्न पाए गए तथा वे अजनबी लोगों से वातचीत करने में हिचकिचाते थे। उनमें संवेगात्मक अस्थिरता पाई गई।

सुशीला पीटर्स (1969) ने किशोर छात्राओं में मित्रता तथा व्यक्तित्व विशेषकों के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करके पाया कि मित्रता-निर्माण में आयु का महत्व होता है तथा आपसी रुचियों और घर से बाहर के मनोरंजन के साधनों में रुचिगत समानता मित्रता-निर्माण के घटक होते हैं। नागपाल (1972) ने विद्यार्थियों के व्यक्तित्व कारकों का अध्ययन करके मालूम किया कि अधियोग्य (Talented) विद्यार्थी उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर के होते हैं, उनका अध्ययन कार्यक्रमानुसार होता है तथा उनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, उनका सामाजिक समायोजन सामान्य रूप से अच्छा होता है तथा उनकी अभिवृत्तियों में परस्पर भिन्नता तो होती है परन्तु वे उच्च स्तरीय अभिवृत्ति वाले होते हैं। मीढ़ा (1974) ने मालूम किया कि अधिकांश स्थितियों में परिवारों के प्रवास का प्रभाव बालक-बालिकाओं के समायोजन पर पड़ता है। प्रवासी परिवारों के बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण में मुख्य विशेषक थे—माता-पिता व अध्यापकों का उनके प्रति उदासीनतापूर्ण व्यवहार, दुश्चिन्ताएँ, संवेदनशीलता, सामाजिक असमायोजन, मित्रों की कमी आदि। कुछेक परिस्थितियों में प्रवासी बच्चों में परस्पर समायोजन जीवन के प्रति वास्तविक अभिवृत्ति, दृढ़ निश्चय, कार्य में संलग्नता व व्यवस्थित आदतें भी पाई गईं।

सुश्री रेखी (1974) ने आवश्यकता व समायोजन को क्षेत्र मानकर छात्रालयवासी व अन्य किशोर विद्यार्थियों की आवश्यकता एवं समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन करने पर मालूम किया कि छात्रावास में रहने वाली छात्राओं में घर पर रहने वाली छात्राओं से काम, स्वातन्त्र्य, उपलब्धि एवं प्रदर्शन अधिक होता है। छात्रालयवासी किशोरियों का गृह, सामाजिक तथा संवेगात्मक समायोजन भी घर में रहने वाली छात्राओं से अच्छा पाया गया। पारीक (1971) ने अनुशासन के सन्दर्भ में शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के व्यक्तिगत एवं आपसी मूल्यों पर किए गए अध्ययन से मालूम किया कि स्वतन्त्रता तथा प्राकृतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत अनुशासन के बीच कोई सहसम्बन्ध नहीं था, नेतृत्व व प्राधिकारिक अनुशासन में कोई सम्बन्ध नहीं था। नेतृत्व व प्राकृतिक अनुशासन में तो सम्बन्ध पाया गया, परन्तु व्यक्तिगत अनुशासन व नेतृत्व असम्बन्धित पाए गए।

सामाजिक सम्बन्ध (Social Relationship)

व्यक्तित्व और सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में अटवाल (1960) ने पाया कि 60 प्रतिशत विद्यार्थियों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होती है। परन्तु स्वीकृत एवं अस्वीकृत विद्यार्थियों के मानसिक योग्यता के स्तर व व्यक्तित्व की समस्याओं में सार्थक अन्तर नहीं होता। मगर गुप्ता (1973) ने मालूम किया कि बुद्धि व आर्थिक-सामाजिक स्तर सामाजिक स्वीकृति अथवा अस्वीकृति को प्रभावित करते हैं। इनके उच्च होने पर स्वीकृति तथा निम्न होने पर अस्वीकृति प्राप्त होती है। माथुर (1966) ने ज्ञात किया कि लड़के व लड़कियों की ईमानदारी व परहितवाची नैतिक गुणों में अन्तर होता हैं। परन्तु समाजमितिक उच्च व निम्न समूहों के मूल्यों में अन्तर नहीं था। गौतम (1970) के अनुसार विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में कक्षाओं की सामाजिक संरचना लगभग समान सी होती है, तथा लोकप्रिय लड़कियों का आर्थिक-सामाजिक स्तर लोकप्रिय लड़कों की अपेक्षा उच्चतर होता है। चौधरी (1974) ने अस्वीकृति के कारणों का अध्ययन करने पर घमण्ड, अधिक बोलना, लड़ाई की आदत, अनुशासन तोड़ना, बीमारी, गंदी आदतें, सुस्तीपन आदि को प्रमुख घटक बताया। चरित्र विकास के क्षेत्र में हखरू (1965) ने मालूम किया कि आयु के बढ़ने के साथ-साथ चरित्र का विकास भी होता है। माहेश्वरी (1970) ने कक्षा-व्यवहार की संरचना विषय पर शोधकार्य करने पर पाया कि तीव्र रूप से प्रतिगामी विचार रखने वाले छात्र दूसरों के ध्यानाकर्षण हेतु असामाजिक व्यवहार अपनाते हैं तथा उच्च स्तर पर स्वोपक्रमित विद्यार्थी लजीले स्वभाव के होते हैं। दोनों ही प्रकार के विद्यार्थियों ने विद्यालय कार्यक्रमों में रुचि प्रदर्शित की।

सामाजिक व्यवहार (Social Behaviour)

सामाजिक व्यवहार के क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों में सामाजिक व्यवहार के साथ ही लिंग व काम (सेक्स) सम्बन्धी अध्ययन भी सम्मिलित हैं। नर्सरी विद्यार्थियों की व्यवहारगत समस्याओं के अध्ययनों में अग्रवाल (1960), गौतम (1967) तथा नरूला (1972) ने मालूम किया कि नर्सरी विद्यार्थियों की समस्याएँ पर्यावरण पर अधिक आधारित होती हैं तथा उनमें व्यक्तिगत कारक कम होते हैं। इन शोधकर्त्ताओं ने यह भी पाया कि छात्राओं की अपेक्षा छात्रों की व्यवहारगत समस्याएँ अधिक होती हैं। छात्राओं की समस्याओं में प्रमुख समस्याएँ थीं—ईर्ष्या, दब्बूपन, संकोच, अधीरता तथा विद्यालय के सामान की तोड़-फोड़। छात्रों की समस्याओं में प्रमुख थीं— भागना, पत्थर फैंकना, अवहेलना, चोरी आदि। गौतम (1967) ने अपने अध्ययन में यह भी पाया कि उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर के छात्र-छात्राओं में व्यवहारगत समस्याएँ अधिक होती हैं।

जैन (1970) ने ग्रामीण एवं शहरी किशोर बालकों के काम-व्यवहार का अध्ययन करके पाया कि शहरी बालकों में ग्रामीण बालकों की अपेक्षा काम सम्बन्धी ज्ञान अधिक होता है। शहरी बालक लड़कियों से बातचीत करने में कोई संकोच नहीं

करते । शहरी बालक छोटी उम्र में विवाह के विरुद्ध पाए गए, जबकि ग्रामीण बालक उसके पक्ष में रहे । शहरी बालक शरीर-प्रदर्शन में ग्रामीण बालकों से अधिक विश्वास रखते हैं । ग्रामीण बालक संयुक्त परिवार प्रणाली में विश्वास रखते पाए गए, जबकि अधिकांश शहरी बालक एकल परिवार में विश्वास रखते पाए गए । ग्रामीण बालकों में समलैंगिक काम-व्यवहार पाया गया, जबकि शहरी बालकों में केवल प्रदर्शनवृत्ति और काम-साहित्य के प्रति रुचि पाई गई ।

सृजनशीलता (Creativity)

इस क्षेत्र में शोधकार्य काफी देर से ही प्रारम्भ हुए । व्यास (1973) ने अपने शोधकार्य में पाया कि सृजनशील विद्यार्थियों पर माता की ममता का प्रभाव अधिक होता है । सृजनशील विद्यार्थी संवेदनशील होते हैं, वे अपने से बड़ों के प्रति आदर रखते हैं तथा स्वयं के प्रति जागरूक होते हैं । सृजनशील विद्यार्थियों का व्यक्तित्व-समायोजन सामान्य रूप से अच्छा होता है । उच्च स्तर के सृजनशील विद्यार्थियों का दृष्टिकोण अधिक आलोचनात्मक होता है । माथुर (1974) ने भी पाया कि उच्च स्तर के सृजनशील विद्यार्थियों का व्यक्तित्व-समायोजन सामान्य रूप से अच्छा होता है, मगर उच्च व निम्न स्तर के सृजनशील विद्यार्थियों के मध्य रक्षात्मक युक्ति के परिप्रेक्ष्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता । जैन (1971) ने पाया कि पुरुष व महिला प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक प्रभाव, सृजनशीलता एवं प्रज्ञात्मक शिक्षण में सार्थक अन्तर होता है, महिला प्रशिक्षणार्थी पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की अपेक्षा उच्च स्तरीय सृजनशील एवं प्रज्ञात्मक शिक्षण का कार्य करती हैं ।

शैक्षिक विवक्षा (Educational Implications)

व्यक्तित्व एवं शैक्षिक विवक्षा के क्षेत्र को लेकर ग्रोवर (1970) ने ज्ञात किया कि अन्तर्मुखी छात्राओं पर माताओं के स्नेहपूर्ण अथवा आतंककारी स्वभाव का अधिक प्रभाव पड़ता है, स्नेहपूर्ण व्यवहार का बहिर्मुखी छात्राओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है । अन्तर्मुखी छात्राओं के साथ अधिक स्नेहपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए, परन्तु बहिर्मुखी छात्राओं की अवहेलना नहीं करनी चाहिए । प्रभाकर (1970) ने ज्ञात किया कि विज्ञान व कला वर्ग के बालकों की शैक्षिक संप्राप्ति तथा उनके व्यक्तित्व के घटकों में धनात्मक संबंध होता है ।

संभावनाएँ एवं सुझाव

इस क्षेत्र में सम्पन्न शोधकार्यों का अवलोकन करने पर ऐसा लगता है कि 1956 से 1974 के मध्य जितने शोधकर्त्ताओं ने इस क्षेत्र विशेष को चुना, उनको व्यक्तित्व के कुछ घटकों ने विशेष रूप से आकृष्ट किया तथा उनमें सामान्यतः निरन्तर कार्य होता रहा । इन घटकों में विशेष रूप से व्यक्तित्व के विभेदकारी घटक, आवश्यकता एवं समायोजन, दुश्चिन्ता एवं आक्रामक प्रकृति, सामाजिक सम्बन्ध, तथा धार्मिक नैतिक घटक थे । इसके विपरीत प्रत्यक्षन, शैक्षिक विवक्षा, व्यक्तित्व कारक, आत्म-प्रत्यय तथा व्यक्तित्व निर्धारण के घटक ऐसे थे जिनमें बहुत ही कम शोधकर्त्ताओं ने रुचि ली ।

सम्पन्न शोधकार्यों में एक कमी विशेष रूप से सामने आई कि इक्के-दुक्के शोध-कर्त्ताओं को छोड़कर शेष ने विदेशी मनोवैज्ञानिक उपकरणों तथा मानकों का प्रयोग भारतीय न्यादर्श पर किया जो शोध-बिधि के नियमों के अनुकूल नहीं है। अच्छा तो यह रहता कि शोधकर्त्ता उन उपकरणों का भारतीयकरण करके, अपने न्यादर्श के आधार पर मानक तैयार करके, उनका उपयोग करते। कुछेक शोधकार्यों को छोड़कर जिनमें प्रायोगिक आधार पर शोधकार्य किए गए, अन्य शोधकार्य मुख्य रूप से सर्वेक्षण विधि पर ही आधारित रहे।

शोधकर्त्ताओं का न्यादर्श भी मुख्यत: शहरी क्षेत्र और उसमें भी विशेष रूप से किशोरावस्था के बालक-बालिकाओं तक सीमित रहा। बहुत कम अनुसंधाता ग्रामीण क्षेत्र की ओर आकृष्ट हुए तथा दुरूह क्षेत्र के जनजाति के बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व का अध्ययन तो केवल एक ही शोधकर्त्ता ने किया।

वर्तमान समय में सांख्यिकी का महत्त्व शोधकार्यों में निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सांख्यिकी भी विश्वसनीय तथा वैध निष्कर्ष निकालने में शोधकर्त्ताओं की पूर्णत: सहायता करती है। परन्तु इन शोधकार्यों में उच्च सांख्यिकी के प्रयोग का अभाव विशेष रूप से खटकता है।

शोधकार्य किशोरावस्था के अतिरिक्त अन्य आयु के बालक-बालिकाओं का न्यादर्श लेकर भी सम्पन्न किए जाएँ तथा न्यादर्श में शहरी के साथ ही ग्रामीण तथा विशेष रूप से जनजाति क्षेत्र के बालक-बालिकाओं को भी चुना जाए। व्यक्तित्व के अन्य घटकों के साथ-साथ प्रक्षेपण, व्यक्तित्व निर्धारण, आत्म-प्रत्यय आदि घटकों पर भी शोध-कार्य होना जरूरी है। प्रायोगिक आधार पर शोधकार्य नहीं होंगे तब तक मनोवैज्ञानिक शैक्षिक उपपत्ति नहीं होगी। विदेशों में निर्मित जाँच-उपकरणों का भारतीय परिप्रेक्ष्य में सत्यापन तथा मानकीकरण भी जरूरी है। बल्कि तैयार भारतीय उपकरणों के सत्यापन का कार्य भी किया जाए तथा नये उपकरण विकसित करने की चेष्टा भी रहे।

संदर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, शान्ताकुमारी : Survey of Behaviour Difficulties of Nursery School Children, M. Ed., Raj. Uni., 1960

अटवाल, मोहिन्दरसिंह : An Investigation into the Relationship of Social Acceptance with Intelligence and Personal Problems of the High School Students of Sardarshahar, M. Ed., Raj. Uni., 1960

आतमसिंह : A Study of Moral Beliefs of Adolescents, M. Ed., Raj. Uni., 1959

कालरा, शमेसरचन्द्र : The Religious Beliefs of Adolescents, M. Ed., Raj. Uni., 1962

कुण्डू, सी.एल. : Differential Personality Traits in Juvenile Offenders belonging to Scheduled Tribes and Others,
Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1966

केलर, रामसिंह : A Study of the Moral Judgment of the Students at Different Age-levels and the Relationship between Moral Judgment and Other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

कौल, सूरज : A Study of the Needs of Adolescents,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

खाँ, इशहाक मोहम्मद : An Investigation into Social Attitudes,
M. Ed., Raj. Uni., 1956

गर्ग, निर्मला : कक्षा दस के छात्र एवं छात्राओं की चिन्ता, मनोकामनाएँ एवं शैक्षिक अभिप्रेरणा का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

गुप्ता, रामनिवास : A Study of the Personality Characteristics of Science and Non-Science Student Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

गुप्ता, शशिप्रभा : कक्षा आठ के सामाजिक स्वीकृत एवं उपेक्षित विद्यार्थियों की बुद्धि, सामाजिक-आर्थिक स्तर, रुचि एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

ग्रोवर, पुष्पलता : A Study of Loving and Punishing Maternal Behaviour as related to Extrovert and Introvert Tendencies among School-going Girls of Class IX of Jodhpur,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

गौड़, रघुनाथसिंह : A Comparative Study of Personality Characteristics of Urban and Rural Adolescents,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

गौतम, बुद्धिप्रकाश : Behaviour Problems of the Delta Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

गौततम, राजेन्द्रकुमार : लोकप्रिय, उपेक्षित एवं एकांकी बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1970

चंडोक, उषा : A Study of Self concept in relation with their Intelligence, Socio-Economic Status and Adjustment of X Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

चौधरी, चन्द्रसिंह : Reactions to Frustration Among the Children of Various Socio-Economic Status Levels,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

चौधरी, मीनाकुमारी : छात्राओं में सामाजिक अस्वीकृति के कारण एवं सामाजिक अस्वीकृति का अन्य चरों से संबंध: एक शोध कार्य,
एम. एड., राज. वि. वि., 1974.

चौहान, श्यामसिंह : A Study of Perceptual Maturation Process, M. Ed., Raj. Uni., 1958

चौहान, हरिश्चन्द्र : **उच्च तथा निम्न उपलब्धि वाले छात्रों के व्यक्तित्व विशेषक,** एम.एड., राज. वि.वि., 1972

जुल्का, गुलशनलाल : Aggression, Fear and Anxieties in Children : Their Educational Implications, Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1963

जैन, आशा : An Investigation into the Relationship between Personality Characteristics and Creative and Intellectual Teaching of Student Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1971

जैन, दुलीचन्द : The Adjustment Problems of Stars and Rejectees, M. Ed., Udaipur Uni., 1969

जैन, प्रकाशचन्द्र : **ग्रामीण और शहरी किशोर बालकों के काम व्यवहार का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1970

जैन, स्वरूपचन्द्र : A Study of Moral Behaviour of Adolescents, M. Ed., Raj. Uni., 1962

जोशी, नवलकिशोर : Neurotic Tendencies among Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1970

जोशी, विद्याधर : Anxiety and its Effect on Scholastic Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1966

ढिल्लो, जोगेन्द्रसिंह : Group Rorschach Test as a Tool for investigating Personality Differences between the Intellectually Above Average and Below Average Students, M. Ed., Raj. Uni., 1959

ढिल्लो, हरभजनसिंह : A Study of Students' Leadership Patterns and Personality Traits of Student-Leaders of High and Higher Secondary Schools for Boys of Amritsar City (Punjab) in relation with their Intelligence, Achievement, Vocational Performances and Participation in Co-curricular Activities, M. Ed., Raj. Uni., 1963

ढोंढियाल, सच्चिदानन्द : Art as a Projective Technique for Deviant Children, M. Ed., Raj. Uni., 1959

ढोंढियाल, सच्चिदानन्द : Art as a Projective Techique for Children, Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1964

तंवर, उदयचन्द : **नवीं कक्षा के विद्यार्थियों की जिम्मेवारी की भावनाओं का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1972

तारासिंह : व्यायाम प्रेमी तथा खिलाड़ी छात्रों का व्यक्तित्व संबंधी अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1974

दाहिया, नथमल : अच्छे खिलाड़ी तथा न खेलने वाले किशोर छात्रों के व्यक्तित्व का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1970

द्विवेदी, प्रकाशचन्द्र : उच्च एवं निम्न संप्राप्ति स्तर के किशोरों की बुद्धिलब्धि, व्यक्तित्व कारक एवं व्यक्तित्व समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1970

धांगड़, श्रीचन्द : अच्छे खिलाड़ी तथा न खेलने वाले छात्रों का दुश्चिन्ता परीक्षण,
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

नरुला, प्रतापकौर : Intelligence and Social Behaviour as observed among Nursery School Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

नायपाल, अरविन्द : Study of Personality Factors of the Talented Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

नाटानी, प्रकाशनारायण : Reading Readiness and Some Personality Correlates among Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

पंचोली, बद्रीलाल : Factors Leading to Aggressiveness,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

प्रभाकर, सरोज : A Comparative Study of the Personality Factors of Boys and Girls Specialising in Various Fields of Study in relation to their Academic Achievements,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

पाठक, दामोदर य० : Comparative Study of Atheists and Theists among Adolescents,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

पाण्डे, लक्ष्मी : विभिन्न कक्षाओं के स्तर पर लड़के एवं लड़कियों की आवश्यकताओं का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1968

पाण्डे, रमाकान्त : A Study of the Self Concept of the Students of Class X,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

पारीक, मंजु : छात्राध्यापकों के व्यक्तिगत पारस्परिक मूल्यों के सन्दर्भ में अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

पीटर्स, सुशीला : Friendship Formation among Adolescent Girls and its Relation to Personality Traits,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

बहुगुणा, शक्तिधर : A Study into the Moral Judgment of School-going Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

बागची, कृष्णा : Personality Adjustment among High and Low Anxious Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

बान्दा, कुलवन्त : A Comparative Study of Popular and Isolated Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

बैद, बसन्तकुमारी : छात्र एवं छात्राओं में दुश्चिन्ताएँ,
एम.एड., राज. वि.वि., 1972

बैनीवाल, ओमप्रकाश : राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विशिष्ठ अभिकरणों के कार्यों का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

बौराय, एच.एच.ए. : A Comparative Study of Some Trends of Personality Development and other Relevant Variables as revealed by Non-Harijan and Harijan Children of 11 to 14 Years of Sardarshahr (Rajasthan),
M. Ed., Raj. Uni., 1961

भट्ट, चिरंजीलाल : An Investigation into the Values of Students at Different Age-levels and the Relationship between Values and other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

भार्गव, शशि : Projection of Personality in Spontaneous Drawings,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

माथुर, ईश्वरचन्द्र : An Investigation into Some Religious Traits of Adolescents and their Relationship with other Relevant Factors at Different Age-levels,
M. Ed , Raj. Uni., 1970

माथुर, राधेश्याम : Sociometric Status and Moral Attitude of Adolescents,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

माथुर, श्यामशरण, : उच्च सृजनशील तथा निम्न सृजनशील छात्रों के कुछ तत्त्वों का रोजेंज्वाइग तकनीक के आधार पर अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1974

माथुर, छैलबिहारी : An Analytical Study of Children's Paintings as Indicators of their Personality Patterns,
Ph. D. (Edu.), Udaipur Uni., 1972

माहेश्वरी, कृष्णा : A Study into the Structures of Classroom Behaviour of Divergent and Convergent Thinkers of Class VII,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

मीढ़ा, सुशीला : Adjustment of Children from Migrated Families,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

राठौर, घीसूसिंह	:	A Comparative Study of Values of High School Boys and Girls, M. Ed., Raj. Uni., 1972
राय, राज	:	An Investigation into the Personality Values of High and Low Achievers among X Class Girls, M. Ed., Jodhpur Uni., 1968
रेखी, गुरुशरण	:	To Study the Needs and Adjustment of Residential and Non-residential School-going Adolescent Girls, M. Ed., Raj. Uni., 1974
ललवानी, गोदावरी	:	To Study the Personality Characteristics of Students Choosing Various Streams of Courses, M. Ed., Raj. Uni., 1972
वर्मा, जयवीर	:	**अध्यापकों के व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुण,** एम.एड., राज. वि.वि., 1970
व्यास, भगवतीलाल	:	Personality Patterns of Creative Students, M. Ed., Udaipur Uni., 1973
व्यास, रामेश्वरप्रसाद	:	Psycho-Socio Study of Tension among Professional Students, M. Ed., Raj. Uni., 1972
व्यास, शिवशंकर	:	Controlled Fantasy as Predictor of Personality, M. Ed., Raj. Uni., 1972
वीरमानी, स्नेह	:	A Study of Anxiety in Indian Adolescent Girls, M. Ed., Udaipur Uni., 1968
शर्मा, आशाकुमारी	:	A Study of the Development of the Self Concept of the Boys and Girls of Higher Secondary Classes, M. Ed., Raj. Uni., 1973
शर्मा, छत्रमोहन	:	Reaction to Frustration among Adolescents in the School Situations, Ph. D. (Ed.), Raj. Uni., 1973
शर्मा, छत्रमोहन	:	A Study of Reaction to Frustration among the Super Normals, Normals and Sub Normals, M. Ed., Raj. Uni., 1962
शर्मा, धरनीधर	:	A Study of the Personality Traits of Higher Secondary School Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1969
शर्मा, मांगीलाल	:	**छात्रों के धर्म सम्बन्धी ज्ञान एवं अभिवृत्ति में परिवर्तन : एक प्रयोगात्मक अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1969
शर्मा, रमाकुमारी	:	A Study of the Personality Characteristics of Public School Boys, M. Ed., Raj. Uni., 1969

शर्मा, लक्ष्मीलाल : An Investigation into the Personality Traits of Elected Student Leaders,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

शर्मा, शंकरलाल : An Investigation into the Responsibility Feelings of X Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

शर्मा, सत्यप्रकाश : Personality Patterns of Stars and Isolates,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शर्मा, सत्यपाल : खिलाड़ियों एवं न खेलने वाले छात्रों का व्यक्तित्व-समायोजन सम्बन्धी अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1974

शर्मा, सरलाकुमारी : A Comparative Study of Self Concept and Leadership Traits among Popular and Unpopular Adolescent Subjects,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

शर्मा, हरदयाल : A Comparative Study of Responsibility Feelings of VIII Class Students belonging to Rural and Urban Areas,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शास्त्री, कमला : A Study of Reactions to Frustration, Adjustment and Attitudes towards Studies of the Girls during Pubertal and Prepubertal Periods,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

सक्सेना, चन्द्रलेखाकुमारी : An Investigation into the Personality Traits and Adjustment of Adolescent Girls in relation to their Intelligence,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

सक्सेना, मिथिलेशकुमारी : A Study of the Impact of Intelligence and Thinking upon Certain Personality Dimensions of School-going Adolescent Girls,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

सिंधु, रणजीतसिंह : Social Maturity of Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

सिंह, सत्येन्द्रपाल : A Comparative Study of Neurotic Trends among Sportsmen and Non-sportsmen,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

सिंह, यज्ञनारायण : A Study of the Personality Adjustment of the Populars, Rejectees, Neglectees and Isolates of Class IX of Ajmer,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

हखरू, बन्शीलाल : An Investigation into the Character Development of the Students of Rajasthan at different Age-Levels and the Relationship between Character Development and other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

होड़, राजेन्द्र : A Comparative Study of Leadership Traits of Anxious and Non-Anxious Adolescents in Relation to Parents' S.E.S. and their Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1973 □

शैक्षिक संप्राप्ति के सह-सम्बन्धक

□ जगदीशनारायण पुरोहित
□ कृष्णगोपाल बीजावत

विद्यालयी शिक्षा से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह विद्यार्थी हो या अध्यापक, चाहे वह अभिभावक हो या प्रधानाध्यापक, चाहे वह शैक्षिक प्रशासक हो या शिक्षक-प्रशिक्षक, यह चाहता है कि शैक्षिक संप्राप्ति उच्च स्तर की हो। परन्तु यह तथ्य किसी से छिपा हुआ नहीं है कि विद्यार्थियों की शैक्षिक संप्राप्ति का स्तर अपेक्षित स्तर से निम्नतर है। वस्तुतः शैक्षिक संप्राप्ति अनेक घटकों (factors) के परस्पर अन्तर्सम्बन्धों का प्रतिफल है। इसमें एक ओर विद्यार्थी की बुद्धि तथा उसके व्यक्तित्व से सम्बन्धित घटक कार्य करते हैं, तो दूसरी ओर उसके पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश से संबंधित घटक होते हैं, तथा तीसरी ओर विद्यालय के सम्पूर्ण पर्यावरण, जिसमें मुख्यतः प्रधानाध्यापक, अध्यापक, अध्ययन-अध्यापन की संस्थितियाँ तथा साधन-सुविधाओं सम्बन्धी घटक होते हैं। इन तीनों आयामों में विद्यमान विभिन्न घटकों के परस्पर अन्तर्सम्बन्धों का प्रतिफल हमें विद्यार्थी की शैक्षिक संप्राप्ति के रूप में देखने को मिलता हैं।

राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में शोध-कार्य प्रारम्भ होने से लेकर सन् 1974 तक शैक्षिक संप्राप्ति के सह-सम्बन्धक के क्षेत्र में जो शोधकार्य हुए हैं (जिनमें से 4 पीएच. डी. स्तर तथा शेष एम. एड. स्तर के हैं), उन्हें अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शैक्षिक संप्राप्ति तथा बुद्धि/आत्मप्रत्यय/अभिवृत्ति/चिन्ता/समायोजन/समाजमिति/अध्ययन-आदतें/व्यक्तित्व के अन्य पक्ष/सामाजिक-आर्थिक स्तर/ग्रामीण-नगरीय परिवेश/सहशैक्षणिक प्रवृत्तियाँ/अध्ययन-अध्यापन की स्थितियाँ आदि वर्गों में बाँटा जा सकता है।

बुद्धि एवं शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में 15 शोधकर्त्ताओं ने अन्य सहसम्बन्धकों व बुद्धि का शैक्षिक संप्राप्ति के साथ सह-सम्बन्ध ज्ञात किया हैं। बलदेवसिंह (1957), शर्मा (1961), रंगरू (1964), रैना (1964), रस्तोगी (1964), गुप्ता (1965), शिवचरण (1965), सुथार (1967), जैन (1967), शास्त्री (1967), बनवारी लाल शर्मा (1968), माहेश्वरी (1969) और पँवार (1973) ने बुद्धि तथा शैक्षिक संप्राप्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध देखा है। परन्तु पारीक (1970) के अनुसार शैक्षिक संप्राप्ति का बुद्धि से महत्वपूर्ण सहसम्बन्ध नहीं है। कुछ शोधकार्य ऐसे भी हुए हैं जिनसे विषय विशेष में

संप्राप्ति के सहसम्बन्धकों की जानकारी मिलती है। शर्मा (1966) ने विज्ञान विषय में योग्यता के पाँच महत्वपूर्ण सहसम्बन्धक ज्ञात किए हैं, जिनमें बुद्धि प्रमुख है। माथुर (1971) ने अपने पीएच. डी. अध्ययन में यह ज्ञात किया है कि जलोटा सामान्य-मानसिक-योग्यता-मापनी विज्ञान तथा मानवीय विषयों की उपलब्धि का अच्छा प्राक्सूचक (Predictor) है। फाटक (1972) की पीएच. डी. गवेषणा के अनुसार उच्च स्तर की संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों की मध्यमान बुद्धिलब्धि 131.2 और निम्न स्तर की संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों की मध्यमान बुद्धिलब्धि 93.7 पाई गई। यह तथ्य सिद्ध करता है कि बुद्धिलब्धि शैक्षिक संप्राप्ति का प्रमुख सह-सम्बन्धक है। शुक्ला (1972) के अनुसार रसायन विज्ञान में विद्यार्थियों की संप्राप्ति का बुद्धि से सहसम्बन्ध ·609 पाया गया। मलिक (1973) का भी रसायन विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा ही निष्कर्ष है। गुरदयालसिंह (1972) के अनुसार भौतिक विज्ञान में विद्यार्थियों की संप्राप्ति तथा बुद्धि के मध्य सार्थक (Significant) तथा धनात्मक सहसम्बन्ध है। सांघी (1973) ने अपनी गवेषणा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि बुद्धि के साथ सामान्य विज्ञान विषय की संप्राप्ति का सहसम्बन्ध ·61 है।

भाषा के क्षेत्र में पूनिया (1970) की गवेषणा के अनुसार हिन्दी-पठन योग्यता और बुद्धि का गहरा सहसम्बन्ध है। व्यास (1971) के अनुसार बुद्धि का बालकों के सहज शब्द-भंडार पर प्रभाव पड़ता है।

उक्त गवेषणाओं में शोधकर्त्ताओं ने बुद्धिमापन के लिए अधिकांशतः जलोटा सामान्य मानसिक-योग्यता-मापनी काम में ली है। शेष ने अन्य शाब्दिक बुद्धि-परीक्षणों का उपयोग किया हैं। शैक्षिक संप्राप्ति के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षा के प्राप्तांक, जामिया मिलिया संप्राप्ति परखों तथा स्वनिर्मित संप्राप्ति परखों को आधार बनाया गया है।

बुद्धि तथा शैक्षिक संप्राप्ति के क्षेत्र में हुए उक्त अनुसंधानों के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है कि बुद्धि शैक्षिक संप्राप्ति का एक प्रमुख सहसम्बन्धक है।

आत्म-प्रत्यय तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में केवल दो ही शोध कार्य उपलब्ध हैं और वे भी एम. एड. स्तर के। देवल (1966) ने स्वनिर्मित आत्म-प्रत्यय मापनी (Self Concept Scale) के द्वारा आत्म-प्रत्यय तथा शैक्षिक संप्राप्ति का सहसम्बन्ध ज्ञात किया, जो ·39 आया। यह सह-सम्बन्ध ·01 स्तर (Level of Significance) पर सार्थक पाया गया। रोहतगी (1970) ने विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के आत्म-प्रत्यय के शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रभाव का अध्ययन किया। इस शोध के अनुसार विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के आत्म-प्रत्यय तथा उनकी संप्राप्ति में समरूपता थी। यदि आदर्श आत्म (Ideal self) तथा वास्तविक आत्म (Real self) में धनात्मक असंगति (Positive discrepancy) थी, तो शैक्षिक संप्राप्ति उच्च पाई गई और यदि आदर्श आत्म तथा वास्तविक आत्म में ऋणात्मक असंगति थी तो शैक्षिक संप्राप्ति निम्न स्तर की पाई गई।

इन गवेषणाओं में शोधकर्त्ताओं ने आत्म-प्रत्यय मापनी तथा सेमैटिक विभेदीकरण-मापनी (Sematic Differential Scale) का आत्म-प्रत्यय मापन के लिए तथा संप्राप्ति परखों का संप्राप्ति मापने के लिए उपयोग किया।

यद्यपि इस क्षेत्र में हुई गवेषणाओं से आत्म-प्रत्यय तथा शैक्षिक संप्राप्ति का धनात्मक सम्बन्ध सिद्ध हुआ है, फिर भी यह सम्बन्ध कितना घनिष्ठ है, यह जानने के लिए और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

अभिवृत्ति तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में रायर (1960) ने अंग्रेजी विषय के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति तथा विषयगत संप्राप्ति के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात किया। इस अध्ययन के अनुसार सकारात्मक तथा नकारात्मक अभिवृत्ति का सीधा सम्बन्ध क्रमशः उच्च एवं निम्नस्तर की संप्राप्ति से है। संधू (1960) ने अपने अध्ययन में हिन्दी, गणित, सामाजिक ज्ञान तथा सामान्य विज्ञान विषयों के प्रति विद्यार्थियों की सकारात्मक अभिवृत्ति का उच्च संप्राप्ति से घनिष्ठ सहसम्बन्ध ज्ञात किया। माहेश्वरी (1961) ने विद्यार्थियों की गृहकार्य के प्रति अभिवृत्ति तथा उनकी शैक्षिक संप्राप्ति के मध्य सकारात्मक सम्बन्ध पाया। यह सह-सम्बन्ध अधिकांश विषयों में ·61 से ·87 के मध्य था। देवल (1966) ने अध्ययन के प्रति अभिवृत्ति तथा शैक्षिक सम्प्राप्ति के मध्य ·29 सहसम्बन्ध ज्ञात किया, जो कि ·01 स्तर पर सार्थक बताया गया है।

इन शोधकर्त्ताओं ने स्वनिर्मित प्रश्नावलियों का अभिवृत्ति मापन के लिए तथा जामिया मिलिया वस्तुनिष्ठ-परख का संप्राप्ति मापन के लिए उपयोग किया है।

अभिवृत्ति तथा शैक्षिक संप्राप्ति के क्षेत्र में हुई उक्त गवेषणाओं से यह स्पष्ट है कि अभिवृत्ति तथा शैक्षिक संप्राप्ति का सार्थक सह-सम्बन्ध है, परन्तु शोध का क्षेत्र इतना सीमित है तथा शोधों की संख्या भी इतनी कम है कि इनके आधार पर शैक्षिक संप्राप्ति में अभिवृत्ति का सापेक्षिक महत्व निश्चित कर पाना कठिन है।

चिन्ता तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस क्षेत्र में एम. एड. स्तर के जो शोध कार्य हुए है, उनमें से एक अध्ययन में शर्मा (1967) ने चिन्ता तथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित में क्रमशः ·12, – ·11, – ·15 का सहसम्बन्ध पाया है। महावीरप्रसाद शर्मा (1968) ने चिन्ता तथा शैक्षिक संप्राप्ति के मध्य ऋणात्मक सहसम्बन्ध ज्ञात किया तथा अपने अनुसंधान से यह निष्कर्ष निकाला कि चिन्ता का शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकाला गया है कि चिन्ताग्रस्त विद्यार्थी अध्ययन में पिछड़ जाते हैं। गुप्ता (1971) ने भी अत्यधिक चिन्ताग्रस्त किशोर विद्यार्थियों तथा चिन्तामुक्त किशोर विद्यार्थियों की शैक्षिक संप्राप्ति के मध्य सार्थक अन्तर पाया। इन अनुसंधानकर्त्ताओं ने चिन्ता का मापन करने के लिए क्रमशः जेनट जेलर, आर. पी. भटनागर तथा सिन्हा द्वारा निर्मित चिन्ता-मापनियों को काम में लिया।

इस क्षेत्र में हुई उक्त गवेषणाओं से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अत्यधिक चिन्ता का शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परन्तु, इससे समस्या का समाधान नहीं होता। क्या अत्यन्त कम चिन्ता का शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ? क्या चिन्ता अधिगम के प्रति ग्रहणशील नहीं बनाती ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर ज्ञात करना आवश्यक है।

समायोजन तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में जो अनुसंधान हुए हैं उनमें से एक पीएच. डी. स्तर का तथा शेष एम.एड. स्तर के हैं। पारीक (1968) ने किशोरावस्था के समय विभिन्न विषयों में संप्राप्ति पर समायोजन के प्रभाव का अध्ययन करने पर पाया कि समायोजन का विभिन्न विषयों की संप्राप्ति पर तद्वत प्रभाव पड़ता है। रैना (1964) ने उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों का मध्यमान समायोजनांक 79.11 तथा निम्न संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों का 56.34 ज्ञात किया। शर्मा (1966) ने व्यक्तित्व समायोजन को विज्ञान विषय में उच्च संप्राप्ति के पाँच प्राक्सूचकों में से एक ज्ञात किया। शर्मा (1967) ने व्यक्तित्व समायोजन तथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान और गणित की संप्राप्ति के मध्य क्रमश ·25, ·05, तथा ·29 का सहसम्बन्ध ज्ञात किया। शिखरचन्द जैन (1969) ने विद्यालय एवं परिवार में कुसमायोजन का विद्यार्थियों की निम्न संप्राप्ति के साथ सीधा सम्बन्ध पाया। शर्मा (1971) ने निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न क्षेत्रों में कुसमायोजन का कुप्रभाव उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों पर पड़ता है। साथ ही यह भी ज्ञात किया कि निम्न स्तर की संप्राप्ति का कारण घर, विद्यालय तथा समाज में कुसमायोजन भी है। फाटक (1972) ने अपने पीएच. डी. अनुसंधान में यह पाया कि विज्ञान विषय में उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों का समायोजन निम्न संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों से अपेक्षाकृत अच्छा है। पँवार (1973) ने भी बालिकाओं के संदर्भ में ऐसे ही निष्कर्ष निकाले।

उक्त शोधकर्त्ताओं ने समायोजन मापने के लिए बेल की व्यक्तित्व सूची (Bale's Personal Inventory), डा. एम. एस. एस. सक्सेना की व्यक्तित्व सूची तथा अन्य निर्धारण मापनियों (Rating Scales) का उपयोग किया।

इन अनुसंधानों से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरता है कि समायोजन का शैक्षिक संप्राप्ति से सहसम्बन्ध तो है, मगर समायोजन किस सीमा तक शैक्षिक संप्राप्ति को प्रभावित करता हैं; पारिवारिक समायोजन, सहपाठियों के साथ समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन, संवेगात्मक समायोजन आदि में से किसका शैक्षिक संप्राप्ति पर अधिक प्रभाव पड़ता है तथा शैक्षिक संप्राप्ति के विभिन्न घटकों में समायोजन का सापेक्षिक महत्व क्या हैं, ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनकी ओर शोधकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित नहीं हो पाया है।

समाजमिति स्तर तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस क्षेत्र में एम. एड. स्तर के केवल दो शोधकार्य उपलब्ध हैं। उपमन्यु (1968) ने समाजमितिक स्तरांक (Sociometric Status Score) तथा शैक्षिक

संप्राप्ति के मध्य निम्न स्तर का धनात्मक सहसम्बन्ध पाया। अलग-अलग विषयों की दृष्टि से अध्ययन करने पर यह सहसम्बन्ध अंग्रेजी, गणित तथा सामान्य विज्ञान में सार्थक पाया गया; जबकि हिन्दी, सामाजिक ज्ञान, चित्रकला, संस्कृत तथा उद्योग में यह सहसम्बन्ध सार्थक नहीं था। नीलमलता (1972) ने सामाजिक स्वीकृति का हिन्दी, सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान तथा सम्पूर्ण शैक्षिक संप्राप्ति पर धनात्मक प्रभाव पाया। इस शोध के अनुसार खेलकूद में सामाजिक स्वीकृति भी संप्राप्ति पर अनुकूल प्रभाव डालती है।

इन शोधकर्त्ताओं ने समाजमिति स्तर तथा सामाजिक स्वीकृति ज्ञात करने के लिए समाजमिति तकनीक अपनाई है।

अध्ययन-आदतें तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में उपलब्ध एम. एड. स्तरीय अध्ययनों में तिवारी (1965), चोरड़िया (1969), पारीक (1970) तथा पँवार (1973) ने अध्ययन-आदतों का शैक्षिक संप्राप्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध देखा। फाटक (1972) ने अपने पीएच. डी. अनुसंधान में विज्ञान विषयों में उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों की अध्ययन-आदतें निम्न संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों की अध्ययन-आदतों से उच्च स्तर की पाईं। इसके विपरीत पुरोहित (1971) ने अध्ययन-आदतों तथा संप्राप्ति का सहसम्बन्ध केवल ·09 बताया।

कुछ शोधकर्त्ताओं ने बुद्धि तथा अध्ययन-आदतों का संबंध भी ज्ञात किया। चोरड़िया (1969) ने अध्ययन-आदतों का बुद्धि से घनिष्ठ सहसम्बन्ध ज्ञात किया, जबकि पुरोहित (1971) ने इनके मध्य सहसम्बन्ध केवल ·17 पाया। शास्त्री (1967) ने अध्ययन-आदतों को शैक्षिक संप्राप्ति के प्राक्सूचकों में से एक ज्ञात किया है। शर्मा (1966) ने भी विज्ञान विषयों में अच्छी उपलब्धि के प्राक्सूचकों में से अध्ययन-आदतों को एक पाया। दवे (1959) के अनुसार सामान्य से उच्च स्तर वाले विद्यार्थी योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन करते पाए गए। प्यारेसिंह (1972) ने राजकीय एवं सहायता प्राप्त विद्यालयों के विद्यार्थियों की अध्ययन-आदतों में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया।

इस वर्ग में शोधकर्त्ताओं ने अध्ययन-आदतों का सर्वेक्षण करने के लिए स्वनिर्मित प्रश्नावलियों का तथा एस. एन. राव की अध्ययन-आदत-तालिका (Study Habit Inventory) का उपयोग किया।

उक्त गवेषणाओं से यह निष्कर्ष स्वाभाविक रूप से निकाला जा सकता है कि अध्ययन-आदत शैक्षिक संप्राप्ति का एक सहसम्बन्धक है। साथ ही अध्ययन-आदत शैक्षिक संप्राप्ति का एक प्राक्सूचक भी है।

व्यक्तित्व के अन्य पक्ष तथा शैक्षिक संप्राप्ति

व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों तथा शैक्षिक संप्राप्ति के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करने की दृष्टि से चार एम. एड. स्तर के तथा दो पीएच. डी. स्तर के अध्ययन उपलब्ध हैं।

अपने पीएच. डी. अध्ययन में रस्तोगी (1964) ने रुचि तथा शैक्षिक संप्राप्ति के मध्य सहसम्बन्ध ज्ञात किया। किन्तु निष्कर्ष निकाला कि यह सहसम्बन्ध इतना उच्च नहीं है कि रुचि को शैक्षिक संप्राप्ति का प्राक्सूचक माना जा सके।

शर्मा (1965) ने वैयक्तिक मूल्य तथा शैक्षिक संप्राप्ति सम्बन्धी गवेषणा में यह ज्ञात किया कि जो विद्यार्थी ऊँची आकांक्षा रखते हैं उनकी संप्राप्ति का स्तर भी ऊँचा होगा। रैना (1968) ने अपने पीएच. डी. अनुसंधान में उच्च स्तरीय सृजनशील बालकों की शैक्षिक संप्राप्ति तथा निम्न स्तरीय सृजनशील बालकों की शैक्षिक संप्राप्ति में सार्थक अन्तर देखा। माहेश्वरी (1969) ने अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व का शैक्षिक संप्राप्ति से सम्बन्ध ज्ञात करते हुए पाया कि इनका शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रभाव नहीं पड़ता। गहलौत (1969) ने आकांक्षा स्तर तथा शैक्षिक संप्राप्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया। उषासिंह (1972) ने शैक्षिक उत्प्रेरणा का शैक्षिक संप्राप्ति पर धनात्मक प्रभाव देखा।

इन शोधकर्त्ताओं ने स्वनिर्मित प्रश्नावलियों का, रैना (1968) ने मिनेसोटा सृजनात्मक-चिन्तन-मापनी, माहेश्वरी (1969) ने अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी परख तथा गहलौत (1969) ने आकांक्षा-स्तर परख का उपयोग किया। इस क्षेत्र में व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों पर एक-एक अनुसंधान हुआ है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक पक्ष पर अधिक गहराई एवं विस्तार से अध्ययन आयोजित किए जाएँ, ताकि कोई स्पष्ट स्थिति उभर कर सामने आ सके।

सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा शैक्षिक संप्राप्ति

शैक्षिक संप्राप्ति का सामाजिक-आर्थिक स्तर से सहसम्बन्ध ज्ञात करने के लिए जो अनुसंधान हुए हैं, उनमें से बलदेवसिंह (1957), भटनागर (1958), शर्मा (1961), शिवचरण (1965), तिवारी (1965), महावीरप्रसाद शर्मा (1968), माहेश्वरी (1969), पूनिया (1970), उषासिंह (1972), फाटक (1972), नीलमलता (1972) तथा पँवार (1973) के अनुसार सामाजिक-आर्थिक स्तर का शैक्षिक संप्राप्ति से घनिष्ठ सहसंबंध है। परन्तु चोरड़िया (1969), पारीक (1970), शर्मा (1971) एवं शर्मा (1972) के अनुसार सामाजिक-आर्थिक स्तर का शैक्षिक संप्राप्ति पर महत्व-पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता।

रैना (1964) ने उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों के अभिभावकों के सामाजिक-आर्थिक स्तरांक (Mean Socio-Economic Score) का मध्यमान 15.95 तथा निम्न संप्राप्ति वाले अभिभावकों के सामाजिक-आर्थिक स्तरांक का मध्यमान 12.86 ज्ञात किया। तिवारी (1965) के अनुसार अभिभावकों की शैक्षिक योग्यता का बालकों की शैक्षिक संप्राप्ति पर तद्वत् प्रभाव पड़ता है। शर्मा (1972) ने समान सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले अभिभावकों में डाक्टर, वकील तथा अभियन्ताओं के बालक-बालिकाओं का संप्राप्ति स्तर अन्य व्यवसाय वालों से उच्चतर पाया। गुरुदयाल सिंह (1972) के अनुसार निम्न शैक्षिक योग्यता वाले अभिभावकों के बच्चों को घर

पर अनेक ऐसे शारीरिक कार्य करने पड़ते हैं जिनका उनकी विज्ञान विषय की कुशलताओं पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। महावीरप्रसाद शर्मा (1968) ने सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा शैक्षिक संप्राप्ति का सहसंबंध ·6 देखा। पूनिया (1970) ने सामाजिक-आर्थिक स्तर को हिन्दी पठन-योग्यता का मुख्य घटक माना, तथा फाटक (1972) ने विज्ञान विषयों में उच्च संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों का सामाजिक-आर्थिक स्तर निम्न संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्चतर पाया।

इस क्षेत्र में शोधकर्त्ताओं ने सामाजिक-आर्थिक स्तर का मापन करने के लिए मुख्य रूप से कुप्पुस्वामी की सामाजिक-आर्थिक-स्तर-मापनी का उपयोग किया।

अधिकांश गवेषणाओं से यह तथ्य उभरता है कि सामाजिक-आर्थिक स्तर का शैक्षिक संप्राप्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ गवेषणाओं से यह भी स्पष्ट होता है कि अभिभावकों की शैक्षिक योग्यता का उनके बच्चों की शैक्षिक संप्राप्ति पर प्रभाव पड़ता है।

ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस क्षेत्र में रैना (1964) ने अपने अध्ययन में जामिया मिलिया वस्तुनिष्ठ संप्राप्ति परखों का उपयोग करते हुए पाया कि निम्न संप्राप्ति वाले विद्यार्थियों में से अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र के थे। परन्तु दरियानानी (1970) ने स्वनिर्मित परख का उपयोग करते हुए भूगोल विषय की संप्राप्ति पर ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया। इतिहास विषय में श्रीवास्तव (1971) के निष्कर्ष दरियानानी (1970) के समान ही रहे।

सहशैक्षिक प्रवृतियाँ तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस क्षेत्र में गुप्ता (1965) के अनुसार सहशैक्षिक प्रवृत्तियों में प्रतिभागीत्व और शैक्षिक संप्राप्ति के बीच धनात्मक सहसम्बन्ध है। ओबेराय (1971) ने शारीरिक प्रवृत्तियों में प्रतिभागीत्व और शैक्षिक संप्राप्ति के बीच ऋणात्मक सहसम्बन्ध पाया। जांगीड़ (1969) ने शारीरिक कुशलता तथा बौद्धिक उपलब्धि के मध्य ·02 सहसम्बन्ध ज्ञात किया, जो कि नगण्य है। इस अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकाला गया कि शैक्षिक सम्प्राप्ति तथा शारीरिक कुशलता दो स्वतंत्र घटक हैं तथा उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है।

इनके अतिरिक्त शर्मा (1959) ने विद्यार्थियों के अवकाश के समय की प्रवृत्तियों का शैक्षिक संप्राप्ति से सम्बन्ध ज्ञात करने पर मालूम किया कि विद्यार्थियों की अवकाशकालीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ पुस्तक पढ़ना, ताश खेलना, अभिभावकों को अपने व्यावसायिक कार्यों में मदद देना, पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ना तथा खेल खेलना आदि हैं, और इनमें लगाए गए समय का शैक्षिक संप्राप्ति से सहसम्बन्ध ·40 है। मिनोचा (1969) ने नर्सरी स्कूल के बालक-बालिकाओं की खेल क्रियाओं की रुचियों में अन्तर पाया। साथ ही बालिकाओं की चित्रकलात्मक और श्लाघात्मक प्रवृत्तियों का, तथा बालकों की चित्रावलोकन की प्रवृत्तियों की तुलना में बुद्धि से अधिक सहसम्बन्ध पाया गया।

इस क्षेत्र में प्रवृत्तियों का सर्वेक्षण करने के लिए प्रश्नावलियों, साक्षात्कार तथा विद्यालय रेकार्ड का उपयोग किया गया, तथा शैक्षिक संप्राप्ति के लिए विद्यालय एवं बोर्ड द्वारा आयोजित परीक्षाओं के अंकों को आधार बनाया गया था।

अध्ययन-अध्यापन संस्थितियाँ तथा शैक्षिक संप्राप्ति

इस वर्ग में हुए एम. एड. स्तर के शोध कार्यों से हुक्कू (1970) ने चार विद्यालयों के प्रकरण-अध्ययन (Case Study) के आधार पर यह ज्ञात किया कि अधिक स्टाफ तथा अधिक साधनों का संप्राप्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बलवीर कौर (1972) के अनुसार कक्षा में अध्यापिकाएँ अध्यापकों की अपेक्षा अधिक अनुकूल सामाजिक संवेगात्मक पर्यावरण बनाने में सफल होती हैं। अग्रवाल (1973) ने अध्यापक के मौखिक व्यवहार और विद्यार्थियों की शैक्षिक संप्राप्ति का सम्बन्ध ज्ञात किया। उसमें यह तथ्य उजागर हुआ कि अध्यापक की अनवरत भाषण-विधि का विद्यार्थियों की संप्राप्ति के साथ ऋणात्मक सहसम्बन्ध है। जो अध्यापक विद्यार्थियों के वांछित कार्यों को सराहते हैं तथा जो क्रमबद्ध ढंग से प्रश्न पूछते हैं, उनके विद्यार्थियों की संप्राप्ति का स्तर उच्च पाया गया।

हुक्कू (1970) ने प्रकरण अध्ययन विधि, बलवीरकौर (1972) ने सामाजिक संवेगात्मक स्थिति ज्ञात करने के लिए आर. पी. सिंह की सामाजिक संवेगात्मक पर्यावरण मापनी तथा अग्रवाल (1973) ने 28 पाठों की टेप करके राइट एवं नट हाल विधि से उनका वर्गीकरण किया था।

संभावनाएँ एवं सुझाव

जैसा कि प्रारम्भ में स्पष्ट किया गया है शैक्षिक संप्राप्ति के सहसम्बन्ध का क्षेत्र उन सब की रुचि का है जिनकी विद्यालयी शिक्षा में रुचि हैं, फिर भी सन् 1974 तक इस क्षेत्र में केवल 61 शोध कार्य हुए हैं जो इस क्षेत्र की व्यापकता तथा महत्ता को ध्यान में रखते हुए अपर्याप्त हैं। अतः भविष्य में इस क्षेत्र में अधिक नियोजित, व्यापक एवं गहराई से अनुसंधान कार्य करने की नितान्त आवश्यकता है।

अनुसंधान विधि की दृष्टि से देखा जाए तो लगभग सभी गवेषणाओं में नार्मेटिव सर्वे विधि का उपयोग किया गया हैं, जबकि क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए प्रयोगात्मक विधि अपनाने की आवश्यकता स्पष्ट परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए, इस क्षेत्र में हुए अनुसंधानों से आत्म-प्रत्यय की पुनर्रचना करके शैक्षिक संप्राप्ति का सम्बन्ध तो ज्ञात होता है, परन्तु इस बात का कोई प्रयोगात्मक साक्ष्य (Experimental Evidence) उपलब्ध नहीं है कि किस प्रकार आत्म-प्रत्यय की पुनर्रचना करके शैक्षिक संप्राप्ति के स्तर की उन्नत किया जा सकता है। अभिवृत्ति तथा शैक्षिक संप्राप्ति का सहसम्बन्ध तो ज्ञात किया गया है, परन्तु इसका कोई प्रयोगात्मक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है कि किस प्रकार विद्यार्थियों में अध्ययन के प्रति सकारात्मक अभिवृत्तियों का विकास करके सम्प्राप्ति को उन्नत किया जा सकता है। अतः प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि अपनाने की आवश्यकता हैं।

इस क्षेत्र में हुए अनुसंधानों में अध्ययन तथा शैक्षिक सम्प्राप्ति वाला उपक्षेत्र बहुत ही दुर्बल रह गया हैं। यह ठीक है कि बुद्धि और शैक्षिक सम्प्राप्ति का घनिष्ठ सहसम्बन्ध सिद्ध किया गया है तथा यह भी ठीक है कि सामाजिक-आर्थिक स्तर का शैक्षिक सम्प्राप्ति पर प्रभाव पड़ता है, परन्तु इनसे अध्यापक को अपने दैनन्दिन कार्य में विशेष सहायता नहीं मिलती। अध्यापक को सहायता तब मिल सकती है, जब अनुसंधान इन प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करें कि कौन सी अध्यापन विधियाँ शैक्षिक सम्प्राप्ति को अपेक्षाकृत अधिक उन्नत कर सकती हैं ? वे कौन सी तकनीकें हैं जिनसे कक्षा के सामाजिक-संवेगात्मक पर्यावरण में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है ? वे कौन सी प्रणालियाँ हैं जिनसे बालक-बालिकाओं की रुचियों में अनुकूल परिवर्तन लाया जा सकता हैं ? विद्यार्थियों के समायोजन को कैसे उन्नत किया जा सकता है ? पिछड़े हुए विद्यार्थियों की कैसे मदद की जा सकती हैं ? आदि-आदि।

अनुसंधान हेतु चुने गए न्यादर्शों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि अधिकांश शोधकर्त्ताओं ने नगरीय परिवेश में से ही अपने न्यादर्श का चुनाव किया है। शोध की दृष्टि से प्रतिनिधि न्यादर्श चुनने का प्रयास बहुत ही कम अनुसंधानों में परिलक्षित होता है। सम्भव है, अनुसंधानकर्त्ताओं ने न्यादर्श का चुनाव करते समय अपनी सुविधा का अधिक रखा हो, परन्तु नगरीय परिवेश के आधार पर निष्कर्ष निकाल कर पूरे राज्य के लिए उनका सामान्यीकरण करना भी तो उचित नहीं होगा। अतः आवश्यकता है अनुसंधान के लिए समुचित न्यादर्श चुनने की। इसके साथ ही जन जातियों, पिछड़ी जातियों तथा परिगणित जातियों को केन्द्र बिन्दु (Focus) बनाकर भी अनुसंधान आयोजित किए जाने चाहिए।

यदि स्तर की दृष्टि से देखा जाय तो अधिकांश शोध-कार्य माध्यमिक स्तर से सम्बन्धित हैं। पूर्व प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, नॉन फॉरमल शिक्षा तथा उच्च प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र लगभग अछूते ही रह गए हैं। अतः इन क्षेत्रों की ओर भी शोधकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित होना चाहिए।

विभिन्न विषयों की दृष्टि से देखें तो अनुसंधान-कार्य सिमट कर कुछ विषयों तक सीमित हो गया है। वाणिज्य वर्ग, उद्योग वर्ग तथा चित्रकला आदि विषय तो लगभग अछूते ही रह गए हैं। अंग्रेजी तथा गणित विषयों में, जिनमें कि माध्यमिक शिक्षा स्तर पर सम्प्राप्ति का स्तर बहुत नीचा है, अधिक व्यवस्थित अनुसंधान की अपेक्षा बनी हुई है। इससे यह शंका भी होती है कि शायद अनुसंधान कार्य प्रायः डिग्री प्राप्त करने का साधन मात्र बन गया है, इसका क्षेत्र की ज्वलन्त समस्याओं से सम्बन्ध नहीं दिखाई देता।

सहशैक्षिक प्रवृत्तियाँ तथा शैक्षिक सम्प्राप्ति का क्षेत्र भी अधिक नियोजित अनुसंधान की अपेक्षा करता है। एक ओर तो यह कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन निवास करता है, अतः शारीरिक प्रवृत्तियों को भी व्यक्ति के चौमुखी विकास में पर्याप्त स्थान दिया जाना चहिए, परन्तु दूसरी ओर अनुसंधान यह कहते हैं कि शारी-

रिक प्रवृत्तियों में प्रतिभागीत्व का शैक्षिक सम्प्राप्ति से ऋणात्मक या नगण्य सहसम्बन्ध है। [ओबेराय (1971) तथा जांगीड़ (1959)।] ऐसी स्थिति में यह भलीभाँति ज्ञात किया जाना चाहिए कि वास्तविक स्थिति क्या है।

रुचियाँ, आकांक्षा-स्तर, सृजनशीलता, समायोजन, समाजमिति स्तर आदि सभी क्षेत्रों में गिने-चुने शोध कार्य हुए हैं। अतः इन क्षेत्रों में अधिक अनुसंधान करने की आवश्यकता स्पष्ट दिखाई देती है।

फिलहाल तो यही कहा जा सकता है कि राजस्थान में अनुसंधान का यह क्षेत्र आरम्भिक अवस्था में ही है। परन्तु राज्य शिक्षा संस्थान की सक्रियता के साथ ही, राज्य शिक्षक-प्रशिक्षण मण्डल की स्थापना तथा शिक्षा निदेशालय में शोध प्रकोष्ठ स्थापित होना तथा शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का योजनाबद्ध व समन्वित सामूहिक प्रयत्न शोधकर्त्ताओं को पर्याप्त प्रोत्साहन देकर स्थिति में काफी सुधार ला सकता है।

सन्दर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, विष्णुप्रकाश	:	A Study of the Relationship between Teachers' Verbal Behaviour and Pupils' Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1973
उपमन्यु, विश्वविजय	:	Sociometric Status and Scholastic achievement, M. Ed., Udaipur Uni., 1968
उषासिंह	:	A Comparative Study of the Academic Motivation and Personality Characteristics of Male and Female Students in Relation with Academic Achievement of Class X, M. Ed., Raj. Uni., 1972
ओबेराय, अमरजीतसिंह	:	A Critical Study of the Academic Achievement of Students Participating in Co-curricular Activities, M. Ed., Raj. Uni., 1971
केलर, रामसिंह	:	A Study of the Moral Judgment of the Students at Different Age-Levels and the Relationship between Moral Judgment and Other Related Factors, M. Ed., Raj. Uni., 1963
गहलोत, जुगलसिंह	:	Level of Aspiration of the Scheduled and Non-Scheduled Caste Boys, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
गुप्ता, प्रभा	:	An Investigation into Adolescents Responses and Achievement (On the basis of Text Book in Domestic Science) and their Relationship with other Relevant Factors, M. Ed., Raj. Uni., 1970

गुप्ता, राधेश्याम : An Investigation into Relationship between Scholastic Achievement and Personality Variables,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

गुप्ता, शान्ति : चिन्ताग्रस्त किशोरजनों की शैक्षिक उपलब्धियों का एक अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1971

गुप्ता, सतपाल : Scholastic Accomplishments as Affected by Intelligence and Participation in Co-curri cular Activities,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

गुरुदयालसिंह : An Investigation into the Scientific Skills Acquired by the Students of Science,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

चोरड़िया, सौभाग्यमल : An Investigation into Factors Responsible for Low Achievement by the Students having Above Average Study Habits,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

जांगीड़, रामकुमार : शारीरिक क्षमता और बुद्धि निष्पति का सम्बन्ध,
एम.एड., राज. वि.वि., 1969

जैन, शिखरचन्द : सामाजिक अस्वीकृति के कारण और उसके कुछ सहसम्बन्धक,
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

जैन, सुदर्शनकुमारी : A Study of the Non-Scholastic Factors Responsible for High and Low Scholastic Achievement of Girls Studying in Higher Secondary Schools at Banasthali and Jaipur,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

जोशी, विद्याधर : Anxiety and its Effects on Scholastic Achieve-ments,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

तिवारी, प्रेमनारायण : An Investigation into the Factors Responsi-ble for Low Achievement (Scholastic) of Above Average Intelligent Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

दरियानानी, मनोहर : अजमेर की दसवीं कक्षा के विद्यार्थियों की भूगोल विषय में संप्राप्ति का एक अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1970

दवे, पी.एस. : An Investigation into the Relationship bet-ween Study Habits and School Achieve-ments of High School Boys of Sardarshahr,
M. Ed , Raj., Uni., 1959

देवल, ओंकारसिंह : Self-Concept, Attitude and Achievement of Secondary School Pupils in English,
M.Ed., Udaipur, Uni., 1966

नीलमलता : Effects of Social Acceptance and Socio-Economic Status on the Academic Achievement of School Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

पँवार, जयचन्दलाल : आठवीं कक्षा की उच्च व निम्न उपलब्धि वाली छात्राओं का एक तुलनात्मक अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

पारीक, कलावती : A Study of the Effect of Intelligence, Study-Habit and Socio-Economic Status on X Class Students' Scholastic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

पारीक, शीलकुमारी : किशोरावस्था के समय विभिन्न विषयों की शैक्षिक निष्पति और अनुकूलन के प्रभाव का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि.वि., 1968

प्यारेसिंह : मान्यता प्राप्त निजी एवं राजकीय विद्यालयों के ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि एवं उसे प्रभावित करने वाले मुख्य तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

पुरोहित, आनन्दराज एस. : An Investigation into the Relationship between Study Habits of Higher Secondary School Students and their Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

पूनिया, देवकरण : An Investigation into the Adolescents' Language Reading and its Relationship with other Variables,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

फाटक, अरविन्द बी. : Factors Differentiating High and Low Achievers in Science,
Ph.D. (Edu.), Udaipur Uni., 1972

बलदेवसिंह : Correlation between Intelligence and Scholastic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni,, 1957

बलबीरकौर : कक्षा के सामाजिक एवं संवेगात्मक वातावरण तथा छात्र-निष्पत्ति के मध्य सहसम्बन्ध का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

भटनागर, भगवतप्रसाद : Correlation between Socio-Economic Status anc Scholastic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1958

मलिक, जयपालसिंह : A Study of the Relationship of Intelligence and Personality Factors with Achievement in Chemistry at Tenth Class Level,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

माथुर, गोविन्दनारायण : Predictive Validity of Some Psychological Factors for Success in Science Courses,
Ph. D. (Edu.), Udaipur Uni., 1971

माहेश्वरी, बी.एल. : A Study of Students' Attitude towards Home work and its Relationship with Educational Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

माहेश्वरी, शकुन्तला : कक्षा नौ के छात्र एवं छात्राओं की बौद्धिक क्षमता, अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी शैक्षिक संप्राप्ति के साथ सहसम्बन्धों का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

मिनोचा, कमलेश : नर्सरी स्कूल के छात्र तथा छात्राओं की खेल-क्रियाओं का अध्ययन व उनका बुद्धि से सम्बन्ध,
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

मित्रा, देवेन्द्रनाथ : A Study of Pre-Adolescents' Creative Expression in Art and Hindi at Different Age-levels and their Relationship with other Relevant Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

युगलकिशोर : शरीर-भार, ऊँचाई, वक्षमाप तथा स्वास्थ्य-स्तर का सर्वेक्षण,
एम.एड., राज. वि.वि., 1969

रंगरू, एम.के. : Intelligence, Personality Traits and Previous School Marks as the Predictors of School Performance,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

रस्तोगी, कृष्णगोपाल : A Study of the Relation between Intelligence, Interest and Achievement of High School Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

रामलाल : An Investigation into the Factors Responsible for the Failure of Pre-University Students and the Study of Relationship between University Marks and the Factors that Contribute to Failure,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

रायर, बीयंतसिंह : An Investigation into the Relationship between Attitude towards and Achievement in English of High School Students of Sardarshahr,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

रैना, महाराजकृष्ण : A Comparative Study of Some Personality Characteristics and other Related Variables of High and Low Achievers with a view to Determine Some Correlates of Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

रैना, महाराजकृष्ण : A Study of Some Correlates of Creativity in Indian Students,
Ph. D. (Ed.), Raj. Uni., 1968

रोहतगी, बृजकिशोर : A Study of the Self-Concept of Students and that of Teachers as a Factor Affecting Achievement in Science,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

व्यास, आभा : Children's Spontaneous Vocabulary as Related to their Intelligence and Memory Span,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

शर्मा, घासीलाल : A Study of Some Non-Intellectual Correlates of Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

शर्मा, खेमचन्द : तीव्रबुद्धि बालिकाओं द्वारा निम्न स्तर की शैक्षिक उपलब्धि के कारणों का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

शर्मा, दिनेशप्रकाश : Some Correlates of Science Ability,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

शर्मा, बनवारीलाल : An Investigation into the Causes of Failure at the Secondary Stage in the Board's Examination,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शर्मा, बैजनाथ : Personal Values and Achievement of Higher Secondary Students,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

शर्मा, मदनलाल : A Comparative Study of Academic Achievement of Boys and Girls from Equal Socio-Economic Background,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

शर्मा, महावीरप्रसाद : अजमेर की ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक विषयगत संप्राप्ति तथा मानसिक चिन्ता के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1968

शर्मा, एम.सी. : An Investigation into Some Related Factors of Educational Backwardness in Tool Subjects of 83 VII Class Students of Sardarshahr,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

शर्मा, यज्ञदेव : An Investigation into the Relationship between the Leisure-time Activities of High School Students in Sardarshahr with their School Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

शास्त्री, शकुन्तला : Intelligence, Memory, Expression Power, Study Habit and Internal Assessment as the Predictors of School Performance in General Science, Mathematics, Hindi and Social Studies,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

शिवचरण : An Investigation into the 'Why' of the Students at Different Age-levels and the Relationship between the 'Why' and Other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

शुक्ला, ओमप्रकाश : A Study of Achievement in Chemistry in Five Urban Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

श्रीवास्तव, जगदीशनारायण : **अजमेर नगरीय व ग्रामीण क्षेत्र के दसवीं कक्षाओं के विद्यार्थियों की इतिहास विषय में संप्राप्ति का एक अध्ययन,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

संधु, चरणपालसिंह : An Analysis of the Attitude of IX Class Students of Sardarshahr towards Certain School Subjects and the Measure of Correlation between Attitude and Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

सांघी, रामशृंग : Relationship between Cognitive style and Achievement in General Science : An Exploratory Study,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

सुथार, खेताराम : Some Intellectual Correlates of Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

सूरजभानसिंह : A Study of the Relationship of Mental Abilities with Achievement in Physics at Tenth Class Level,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

हुक्कू, बी.एन. : The Case Study of Four Higher Secondary Schools to Recognize Patterns of Schooling in Relation to Academic Achievement,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

□

मापन एवं मूल्यांकन

□ प्रो० बजरंगलाल भोजक

शिक्षा की प्रखरता तभी बनी रह सकती है जबकि समय व समाज की माँगों के सन्दर्भ में सम्पूर्ण प्रक्रिया का यथावश्यक मूल्यांकन किया जाता रहे व प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उसमें परिवर्तन किए जाते रहें। अतः अनुसंधाताओं का इस पक्ष पर ध्यान जाना स्वाभाविक ही है।

राजस्थान में हुए मापन एवं मूल्यांकन संबंधी शोध-कार्यों को 9 प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है। यथा – अभिवृत्ति-मापन; बुद्धि-मापन; अभिक्षमता, अभिरुचि एवं योग्यता मापन; सम्प्राप्ति परख; परीक्षा व असफलताएँ; व्यक्तित्व का मापन; विद्यालय संगठन का मूल्यांकन तथा विविध।

अभिवृत्ति-मापन

इस क्षेत्र में हुए अनुसंधानों में अभिवृत्ति-मापनी का निर्माण व अभिवृत्ति सर्वेक्षण संबंधी कार्य किया गया। कपूर (1967) ने विद्यालय कार्य के प्रति तथा रामानन्द शर्मा (1969) ने संस्कृत विषय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति-मापनी का निर्माण किया। सूद (1970) ने इतिहास विषय के प्रति 11 से 18 वर्ष के छात्रों की अभिवृत्तियाँ जानने हेतु एक मापनी का निर्माण किया। प्रयोग से ज्ञात हुआ कि इस विषय के प्रति सभी छात्रों की प्रवृत्ति अनुकूल ही थी। छात्राओं में से नवीं कक्षा की छात्राओं का झुकाव आठवीं कक्षा की छात्राओं की अपेक्षा अधिक पाया गया। ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों की दृष्टि से विद्यार्थियों में समानता ही पाई गई। खत्री ने 1971 में प्रशिक्षण महाविद्यालयों में आयोजित शैक्षिक व सह-शैक्षिक प्रवृत्तियों के प्रति छात्राध्यापकों की अभिवृत्तियों का मापन करने पर पाया कि शैक्षिक प्रवृत्तियों के प्रति 48% छात्र रजामंद, 11% उदासीन व 41% असहमत थे। वे उद्योग व कला-शिक्षण के पक्ष में नहीं थे। सुधा भारतीय (1974) ने विज्ञान तथा गृह विज्ञान पढ़ने वाली छात्राओं की घरेलू जीवन के प्रति अभिवृत्ति जाँचकर मालूम किया कि घरेलू जीवन के प्रति विज्ञान समूह की छात्राओं की अभिवृत्तियों में अनेक-रूपता थी, जबकि गृह-विज्ञान की छात्राओं में समान व स्वस्थ अभिवृत्तियाँ थीं।

सेमुएल (1967) ने बोर्ड द्वारा लागू की गई वस्तुनिष्ठ प्रश्न-प्रणाली के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्तियों का मापन करके पाया कि 52% अध्यापक व 38%

प्रधानाध्यापक इस प्रणाली के पक्ष में थे। विषय अध्यापकों में से 45% से 85% तक इसके पक्ष में थे। पुराने अध्यापकों की अपेक्षा नये अध्यापक इसके पक्ष मे अधिक थे।

सवाईसिंह शेखावत (1973) ने राजस्थान के माध्यमिक विद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत चलने वाली क्रियाओं के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्तियों की जाँच की। उन्होंने पाया कि अधिकांश अध्यापक इस प्रणाली से सहमत थे। 96% विद्यार्थियों को अपनी रुचि की क्रियाएँ मिल जाती थीं और छात्रों का इस प्रणाली के प्रति अत्यधिक स्वस्थ रवैया था।

कन्हैयालाल शर्मा (1971) ने एक गुड़िया खेल किट का निर्माण किया व पता लगाया कि गुड़िया के खेलों द्वारा छात्रों की शैतानी, प्यार, असुरक्षा से सम्बन्धित अभिवृत्तियों का सफलतापूर्वक पता लगाया जा सकता हैं।

बुद्धि-मापन

लक्ष्मीनारायण शर्मा (1954) ने 11+के छात्रों के लिए एक मौखिक बुद्धि-परख का निर्माण किया जिसका विश्वसनीयता गुणांक ·85 था। उल्लेखनीय है कि इस उम्र के बच्चों के लिए बुद्धिमापक उपकरण कम हैं। अतः यह एक महत्वपूर्ण काम हुआ। सिरीशकुमार (1968) व रविकांत शर्मा (1972) ने क्रमशः डॉ. प्रयाग मेहता व प्रोमिला पाठक द्वारा निर्मित परखों का परीक्षण किया। सिरीशकुमार ने पाया कि डॉ. मेहता की बुद्धि-परख 13 वर्ष की अवस्था वाले बच्चों के लिए विश्वसनीय उपकरण है। उपकरण का विश्वसनीयता गुणांक ·76 व वैधता गुणांक ·51 रहा। शर्मा ने पाया कि प्रोमिला पाठक द्वारा निर्मित मानव-आकृति-निर्माण परख (Draw-a-Man Test) 6+ व 7+ के बच्चों की बुद्धि के मापन का विश्वसनीय उपकरण है। इस आयु वाले बच्चे शरीर के विभिन्न अंगों जैसे हाथ, पाँव आदि के कार्यों को जानते हैं लेकिन उनकी समानुपातिकता के बारे में उन्हें उतना ज्ञान नहीं था। इस आयु वर्ग के बच्चों को कपड़ों के बारे में पूर्ण ज्ञान नहीं था, बच्चे ज्यादातर पुरुषों के व बच्चियाँ स्त्रियों के चित्र बनाती थीं तथा उन्हें पलकों व भौंहों के रेखांकन का कम ज्ञान था। श्रीकृष्ण शाह (1957) ने 'एलैक्जैण्डर पास एलाँग टैस्ट' (Alexander's Pass Along Test) का 11+ के विद्यार्थियों पर प्रमाणीकरण किया। वैधता व विश्वसनीयता गुणांक क्रमशः ·47 व ·76 रहे। यह ज्ञात हुआ कि अभिभावकों के व्यवसाय का छात्रों की बुद्धि मे कुछ हद तक सीधा सम्बन्ध होता है। अभिभावकों में जितनी अधिक कुशलताएँ होंगी, छात्र उतने ही अधिक बुद्धि वाले होंगे। अभिभावकों की आमदनी का छात्रों के कर्तृत्व से धनात्मक सहसम्बन्ध भी देखा गया। नर्सरी स्कूल के छात्रों के अभिभावकों का सामाजिक-आर्थिक स्तर उनकी (छात्रों) विद्यालयी उपस्थिति को भी प्रभावित करता हैं और उपस्थिति उनके मानसिक विकास को प्रभावित करती है। धाकड़ (1968) ने भी इसी प्रसंग में ऐसे ही निष्कर्ष प्राप्त किए।

अभिक्षमता, अभिरुचि एवं योग्यता परख-पत्र समूह (टैस्ट बैटरी)

अमृतकौर (1970) ने अपने पीएच. डी. अनुसंधान में एक परख-पत्र समूह का निर्माण किया। उसके प्रयोग से मालूम हुआ कि बुद्धि व हिन्दी विषय में संप्राप्ति

का धनात्मक सम्बन्ध था। मानविकी समूह के छात्रों की अधिकतम रुचि साहित्यिक व कृषि क्षेत्रों में तथा न्यूनतम रुचि विज्ञान क्षेत्र में थी। अभिरुचियों की दृष्टि से वाणिज्य संकाय के विद्यार्थी विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों की अपेक्षा कला संकाय के विद्यार्थियों के ज्यादा निकट पाए गए। उनकी रुचि के क्षेत्र थे – ललित कला व घरेलू कार्य। न्यूनतम रुचि के क्षेत्र थे – विज्ञान व चिकित्सा। विज्ञान संकाय के छात्रों की सर्वोत्कृष्ट रुचि के क्षेत्र विज्ञान व चिकित्सा पाए गए। सबसे कम चाहे जाने वाले क्षेत्र थे – ललित कला तथा घर से बाहर की क्रियाएँ। गणित व विज्ञान के विद्यार्थियों ने सबसे अधिक रुचि विज्ञान क्षेत्र में प्रदर्शित की। उनकी सबसे कम रुचि कृषि व घरेलू कार्यक्षेत्रों में पाई गई।

संप्राप्ति परख

त्रिपाठी (1953), बलराज (1954), लेधा (1955), लबरू (1956), कचरू (1956), भार्गव (1956), सरदारसिंह (1957), रघुनाथप्रसाद (1957), कृपालसिंह (1961), मक्खनलाल (1961), वैश्य (1962), सिंघल (1964), उपाध्याय (1965), नारंगदेवी (1966), व रामप्रसाद शर्मा (1972) ने कक्षा 5 से कक्षा 10 तक के छात्रों के लिए अपनी-अपनी रुचि के विषयों में सम्प्राप्ति परख-पत्र तैयार किए। प्रायः सभी की विश्वसनीयता व वैधता प्रमाणित की गई। प्राप्त निष्कर्ष थे कि भूगोल विषय में संप्राप्ति की दृष्टि से आठवीं कक्षा के छात्र और छात्राओं में समानता पाई गई। जबकि नरदेव शर्मा (1962) के अनुसार छात्राओं का अवबोधन छात्रों की अपेक्षा अधिक था। प्राइवेट विद्यालयों के विद्यार्थियों की संप्राप्ति राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों से अपेक्षाकृत उत्तम पाई गई। सामाजिक ज्ञान में छात्रों ने छात्राओं की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त किए। सामान्य विज्ञान (कक्षा VIII) में अधिकांश विद्यार्थी 'ध्वनि' व 'प्रकाश' प्रकरणों से अनभिज्ञ पाए गए। रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान व वनस्पति विज्ञान में उनका ज्ञान बहुत ही निम्न स्तर का पाया गया। लगभग ये ही तथ्य 1965 में राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ने कक्षा 5 के छात्रों की सामान्य विज्ञान व सामाजिक ज्ञान विषयों में संप्राप्ति का मूल्यांकन करके निकाले। 1966 में सुदर्शनकुमारी जैन ने अपने अनुसंधान में मालूम किया कि संप्राप्ति में बुद्धि व अध्ययन-आदतें प्रभावक घटक थे।

परीक्षाएँ

बाकलीवाल (1968) ने माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा लागू आंतरिक मूल्यांकन-योजना के बारे में बताया कि आंतरिक मूल्यांकन-कार्य सम्पूर्ण अध्यापन-प्रक्रिया का अभिन्न अंग नहीं बन पाया था। एक-सी आंतरिक मूल्यांकन पद्धति सभी विद्यालयों के लिए अनुकूल नहीं रहती। शैतान सिंह (1974) ने बताया कि आंतरिक मूल्यांकन के अन्तर्गत साहित्यिक, सांस्कृतिक व वैज्ञानिक क्रियाओं को वस्तुनिष्ठ तरीके से आयोजित नहीं किया गया था। तुलनात्मक दृष्टि से बालिका उच्च माध्यमिक

विद्यालयों में अपेक्षाकृत अच्छा आयोजन किया गया। वैज्ञानिक क्रियाओं का आयोजन बालक एवं बालिका विद्यालयों में एक जैसा ही था। अन्य क्रियाएँ (उपरोक्त को छोड़कर) दोनों प्रकार के विद्यालयों में उपेक्षित रहीं। आंतरिक मूल्यांकन कार्यक्रम के प्रभारी अध्यापक अधिकांशतः अप्रशिक्षित पाए गए। उन्हें कोई प्रोत्साहन भी नहीं दिया जा रहा था।

केशवचन्द्र गुप्ता (1963) ने ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों के आंतरिक मूल्यांकन व बाह्य परीक्षा के अंकों का सम्बन्ध ज्ञात करके पाया कि आंतरिक मूल्यांकन के अंकों का मध्यमान 32·04% से 63·73% था, जबकि बाह्य परीक्षा के अंकों का मध्यमान 37·93% से 44·84%। यह अन्तर सामान्य विज्ञान में 23·31% व गणित में 50% तक पहुँच गया था। बाह्य परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों को भी आंतरिक मूल्यांकन में बहुत अच्छे अंक मिले थे। हिम्मतसिंह (1972) ने बोर्ड परीक्षाओं में अनिवार्य हिन्दी व नागरिक शास्त्र विषयों में 'अ' एवं 'ब' खण्डों में संप्राप्ति का तुलनात्मक अध्ययन करके पाया कि छात्रों को 'अ' खण्ड में 'ब' खण्ड की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त हुए। इन अंकों से पास होने या श्रेणी सुधारने में छात्रों को बड़ी मदद मिली। हिन्दी की अपेक्षा नागरिक शास्त्र में 'अ' खण्ड एवं 'ब' खण्ड के अंकों में अधिक अंतर था। 'अ' एवं 'ब' खण्डों के अंकों का सहसम्बन्ध गुणांक हिन्दी में ·57 व नागरिक शास्त्र में ·78 था।

परीक्षा में दिए जाने वाले प्रश्नों व पाठ्यपुस्तकों में दिए हुए प्रश्नों की तुलना भी परीक्षा क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण विषय है। इस सम्बन्ध में यादव (1974) ने राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की माध्यमिक कक्षाओं के लिए प्रस्तावित पुरानी व नई भौतिक विज्ञान की पुस्तकों के अभ्यास प्रश्नों तथा परीक्षा में दिए गए प्रश्नों का उद्देश्यनिष्ठ विश्लेषण किया और पाया कि पुरानी पाठ्यपुस्तकों में अभ्यास के प्रश्न अधिकांशतः पुनरास्मरण प्रकार के थे, जबकि नई पुस्तकों के खण्ड 'अ' में ज्ञान व अवबोधन के प्रश्न 92% और 'ब' खण्ड में अवबोधन और उपयोजन के प्रश्न 87.3% पाए गए। नई पुस्तको में 'ज्ञान' की अपेक्षा अवबोधन व कुशलताओं पर अधिक बल दिया गया था। प्रश्न-पत्रों की तुलना से पाया गया कि यद्यपि दोनों ही प्रकार के प्रश्न-पत्रों में पुनरास्मरण प्रकार के प्रश्नों की अधिकता थी, फिर भी नये प्रश्न-पत्र में ज्ञान की अपेक्षा अवबोधन के प्रश्न अधिक रहे।

असफलताएँ एवं अशुद्धियाँ

कई शोधकर्त्ताओं ने असफलता को ही केन्द्र मानकर उसके लिए जिम्मेदार कारणों का मूल्यांकन किया। मेहता (1955) तथा सेवाराम (1961) ने माध्यमिक स्तर पर छात्रों के अनुत्तीर्ण रहने के कारणों का अध्ययन किया। दोनों के निष्कर्ष बताते हैं कि विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में अरुचि व उदासीनता, निम्न बौद्धिक-स्तर व अस्वस्थ अध्ययन-आदतें, अभिभावकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, खेल, शैक्षिक यात्राएँ, सिनेमा आदि में अधिक समय लगाना – ये अनुत्तीर्ण होने के प्रमुख

कारण थे। कक्षा में छात्रों की संख्या का बहुत अधिक होना, कमजोर अध्यापन, पाठ्यक्रम में विषमता, विकलांगता, विद्यालय भवन का उचित जगह पर न बना होना, स्थानीय परीक्षाओं में कक्षोन्नति में उदारता, अभिभावकों के सहयोग में कमी आदि अन्य कारण पाए गए। गुप्ता (1972) ने गणित विषय में असफलता के कारणों का मूल्यांकन करके बताया कि बुद्धि का निम्न स्तर, व्यक्तित्व कुसमायोजन, दुश्चिन्ता व प्रेरणा की कमी असफलता के मुख्य कारण थे। प्रधानाध्यापकों व अध्यापकों के मतानुसार असफलता के कारण थे : घर की हीनतर आर्थिक स्थिति, घर के वातावरण का अनुकूल न होना, माँ-बाप द्वारा सहयोग की कमी, व्यक्तिगत ध्यान कम दिया जाना, गृह-कार्य की असंतुलित मात्रा, सहायक सामग्री की कमी, मनोरंजन की सुविधाओं का अभाव, नीचे की कक्षाओं में निम्न स्तर का अध्यापन, व्यवसाय मिलने की अनिश्चितता, लक्ष्य निर्धारण की कमी, कमजोर स्वास्थ्य, कक्षा में कम उपस्थित रहना, पाठ्यचर्या में जल्दी-जल्दी परिवर्तन और पढ़ने में कम रुचि होना।

परीक्षा और संप्राप्ति अध्ययन के साथ-साथ छात्रों की विभिन्न विषयों में अशुद्धियों की भी खोज की गई। राठौड़ (1966) ने कक्षा 6, 7 व 8 के छात्रों की अशुद्धियों की जाँच की व पाया कि छात्रों ने कुल 40206 शब्दों में से 5690 अर्थात् 14% शब्दों की वर्तनी गलत लिखी। अशुद्धियाँ करने में छात्र व छात्राएँ एक जैसे ही पाए गए। हर आयु समूह के विद्यार्थियों ने समान रूप से ही अशुद्धियाँ कीं। ये अशुद्धियाँ मात्रा, अनुस्वार और गलत अक्षर के प्रयोग की थीं। वर्तनी की अशुद्धियों का मुख्य कारण अशुद्ध उच्चारण बताया गया। रामनिवास शर्मा (1969) ने नवीं कक्षा के छात्रों के लिए एक निदानात्मक परख-पत्र तैयार किया तथा पाया कि छात्रों ने मात्राओं व अनुस्वार की सबसे अधिक गलतियाँ कीं। अशुद्धियों के मुख्य कारण व्याकरण का कम ज्ञान, अशुद्ध उच्चारण, खराब लिखावट और शीघ्रता से लिखने की आदतें थीं। उपदेशकुमारी (1973) ने प्रथम, द्वितीय व तृतीय कक्षा के विद्यार्थियों की हिन्दी में अशुद्धियों की जाँच हेतु एक परख-पत्र तैयार किया। इस परख-पत्र का विश्वसनीयता गुणांक ·96 व वैधता गुणांक ·51 से ·57 तक था। भादू (1965) ने भी इसी तरह का एक निदानात्मक परख-पत्र तैयार किया। जयप्रकाश शर्मा (1954) ने नवीं व दसवीं कक्षा के छात्रों द्वारा अंग्रेजी में की जाने वाली अशुद्धियों की जाँच की। आपने पाया कि सबसे अधिक अशुद्धियाँ क्रिया के उपयोग, हिन्दी वाक्यों का अंग्रेजी में अक्षरश: अनुवाद, वर्तनी, शब्दों का अशुद्ध प्रयोग और मुहावरों के प्रयोग से सम्बन्धित रहीं।

सुश्री माथुर (1972) ने कक्षा 6 के विद्यार्थियों के लिए एक निदानात्मक परख-पत्र बनाया व छात्रों द्वारा अंग्रेजी में की जाने वाली अशुद्धियों का मूल्यांकन किया। आपने पाया कि उन्हें /i/, /ee/, /ie/, /e/ और /ei/ से युक्त शब्दों की वर्तनी लिखने में कठिनाई महसूस हुई। एकाकी रूप मे सिखाई गई संज्ञाएँ सही रूप में आत्मसात् नहीं हो पाईं। विद्यार्थियों को सामान्य वर्तमान काल के वाक्य बनाने में बड़ी कठिनाई महसूस हुई। बागची (1973) ने आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की अंग्रेजी की अशुद्धियों की वर्तनी, शब्द भण्डार, बड़े अक्षरों का उपयोग और विराम चिह्न के संदर्भ

में मूल्यांकन करके पाया कि सबसे कम संप्राप्ति वाले छात्रों ने चारों प्रकार की अशुद्धियाँ औसत या उच्च संप्राप्ति प्राप्त छात्रों की तुलना में अधिकतम संख्या में कीं। आपने बुद्धिलब्धि व अशुद्धियों में भी सार्थक सहसम्बन्ध पाया। कम बुद्धिवाले विद्यार्थियों ने अधिकतम अशुद्धियाँ कीं।

यह तो हुई व्यक्तिगत अध्ययनों में अशुद्धियाँ ज्ञात करने की बात। संस्थाओं ने भी विभिन्न विषयों में छात्रों की गलतियाँ ज्ञात करने का प्रयास किया। राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, अजमेर ने सन् 1974 में उद्देश्य आधारित परीक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में सन् 1972 की उच्च माध्यमिक व माध्यमिक परीक्षा के अंग्रेजी अनिवार्य विषय के प्रश्न-पत्रों के स्तर व विद्यार्थियों द्वारा इनमें की गई गलतियों का मूल्यांकन किया। उच्च माध्यमिक परीक्षा, अंग्रेज़ी (अनिवार्य) विषय सम्बन्धी शोध कार्य से निष्कर्ष यह निकला कि छात्रों ने शब्द प्रयोग, वाक्य रचना और अवबोधन से सम्बन्धित भाषा-प्रश्न तो ठीक किए, पर जब निबन्ध/पत्र-लेखन का अवसर आया तो वे उसे समग्र रूप से समझने में, सही वाक्य रचना व शब्द-प्रयोग करने में असफल रहे। उन्होंने वर्तनी, विराम चिह्न, काल प्रयोग, सम्बन्धबोधक, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, सही काल क्रम व सारांश लेखन सम्बन्धी काफी अशुद्धियाँ कीं। माध्यमिक स्तर पर भी अंग्रेज़ी अनिवार्य (1972) के उत्तरों में भी छात्रों का भाषा ज्ञान अत्यन्त निम्न स्तर का पाया गया। निबन्ध/पत्र-लेखन वाले भाग में उनका कर्तृत्व निराशाजनक था। छात्रों ने अधिकांशतः आर्टिकल, क्रिया, काल, वाक्य-रचना सम्बन्धी गलतियाँ कीं। प्रश्न-पत्रों के सम्बन्ध में बताया गया कि एक ही प्रश्न-पत्र से उद्देश्यों की अच्छी तरह जाँच नहीं की जा सकती। प्रश्न-पत्र में शब्दों के प्रयोग तथा वाक्य-निर्माण पर पर्याप्त संख्या में प्रश्न नहीं दिए गए। दिए गए प्रश्न पूरी पाठ्यचर्या का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। द्रुत पठन के गद्य वास्तव में इस लायक ही नहीं थे कि उनसे नई स्थितियों में छात्रों के भाषा-प्रयोग का मूल्यांकन किया जा सके। बहु-विकल्पी प्रकार के प्रश्नों में अधिकांश विकल्प तर्कसंगत नहीं थे। अधिकांश प्रश्न पुनरास्मरण की परीक्षा करने वाले थे; भाषा-क्षमता की परीक्षा करने वाले नहीं।

इसी तरह का शोध कार्य माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (1974) ने सामान्य विज्ञान में भी किया। तदनुसार प्रश्न-पत्र के 'अ' एवं 'ब' खण्डों में विभिन्न उद्देश्यों की जाँच के लिए दिए गए अंकों के प्रतिशतों में बहुत अन्तर था। पाठ्यचर्या की विभिन्न इकाइयों में अंकों का अधिभार ठीक था, मगर अंकन प्रणाली में विनियोजन की कमी पाई गई, जिसके कारण अंक देने में व्यक्तिनिष्ठता का प्रभाव रहा। छात्रों ने 'अ' खण्ड में 'ब' खण्ड की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त किए। जहाँ स्मृति व अनुमान से काम लेना था, अंकों की प्राप्ति अधिक थी। अधिकांश वस्तुनिष्ठ प्रश्न उचित प्रकार के नहीं थे। सामान्य विज्ञान में छात्रों ने महत्वपूर्ण प्रत्ययों, शब्दों व सिद्धान्तों को समझने में या तो गलती की या समझा ही नहीं। पारिभाषिक शब्दों को लिखने में मात्राओं की बहुत अधिक अशुद्धियाँ पाई गईं। बार-बार एक ही तथ्य की दुहराने की आदत भी देखी गई।

व्यक्तित्व का मापन

कौशिक (1963) ने घर, विद्यालय, समाज, स्वास्थ्य व संवेग के क्षेत्रों में समायोजन का मूल्यांकन करने हेतु एक व्यक्तित्व समायोजन-परख तैयार की। इसका विश्वसनीयता गुणांक ·70 से ·82 व वैधता गुणांक ·47 से ·62 था। कक्षा में सहपाठी एक दूसरे को कितना चाहते हैं, इस स्वीकृति का अन्य चरों से क्या सम्बन्ध होता है, आदि को लेकर दाधीच (1968) व गुप्ता (1973) ने शोध कार्य किए। दाधीच ने पाया कि अधिक सामाजिक स्वीकृति के कारण थे : शैक्षिक, सामाजिक और खेल में उच्च योग्यताएँ। माँ-बाप की सामाजिक-आर्थिक स्थिति व बुद्धि का सामाजिक स्वीकृति के साथ कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया गया, मगर शैक्षिक संप्राप्ति का इसके साथ सार्थक सम्बन्ध प्रमाणित हुआ। जिन छात्रों को सामाजिक स्वीकृति अत्यल्प प्राप्त हुई उनमें समस्या-प्रवृत्तियाँ अपेक्षाकृत बहुत अधिक पाई गईं, उनकी शैक्षिक संप्राप्ति बहुत निम्न श्रेणी की थी। शशिप्रभा गुप्ता के निष्कर्षों के अनुसार बुद्धि व सामाजिक-आर्थिक स्तर ने सामाजिक-स्वीकृति को प्रभावित किया। साहित्यिक व वैज्ञानिक रुचियों वाले, खेल में दक्ष, आत्मनिर्भर, आत्मनिष्ठ और संवेगात्मक रूप से स्थिर विद्यार्थियों को अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हुई। छात्राओं में सौन्दर्यात्मक व साहित्यिक अभिरुचियाँ विशेष स्वीकृति का कारण बनीं। जिन विद्यार्थियों में उपरोक्त योग्यताओं व अभिरुचियों की कमी थी, उन्हें सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं हुई।

उर्मिला शर्मा (1971) ने किशोर छात्र-छात्राओं की कुण्ठा प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया और बताया कि 13 से 16 वर्ष के किशोर छात्रों और छात्राओं में 'अहं-प्रतिरक्षा' सम्बन्धी कुण्ठा का तत्त्व सबसे अधिक सक्रिय था। 'आवश्यकता प्रदर्शन' व 'अवरोधन' का तत्त्व 13 वर्षीय छात्राओं में क्रमशः दूसरे व तीसरे स्थान पर था, जबकि 14, 15 व 16 वर्ष की छात्राओं में 'अवरोधन' तत्त्व दूसरे स्थान पर व 'आवश्यकता प्रदर्शन' तीसरे स्थान पर था। यही तथ्य 13-14 वर्ष के छात्रों में पाया गया। 15-16 वर्ष के छात्र और 13 वर्ष की छात्राओं में इस दृष्टि से समानता थी। 13 से 16 वर्ष की किशोरियों व 14 से 16 वर्ष के किशोरों में सबसे अधिक 'अतिक्रमण' इसके बाद 'अनाक्रमण' व सबसे कम 'अन्तःअतिक्रमण' पाया गया। 13 वर्ष के किशोरों में यह क्रम 'बाह्य अतिक्रमण', 'अन्तःअतिक्रमण' व 'अनाक्रमण' था। 1973 में छत्रमोहन शर्मा ने अपने पीएच. डी. अनुसंधान कार्य में 'विद्यालय परिस्थितियों में किशोर छात्र-छात्राओं की कुण्ठा प्रतिक्रियाएँ' नामक परीक्षण तैयार किया। विभिन्न आयु स्तरों के सन्दर्भ में इसका विश्वसनीयता गुणांक ·57 से ·76 रहा। अध्यापकीय मतों के आधार पर तो इसकी वैधता कम रही, पर 30 अपराधी किशोरों पर यह उपकरण वैध प्रमाणित हुआ। इस परीक्षण के अनुसार किशोर छात्राओं में 'बाह्य अतिक्रमण' तत्त्व 14 वर्ष की उम्र तक बढ़ता जाता है। दूसरी ओर 'अन्तःअतिक्रमण' 12 से 15 वर्ष की उम्र में घटता जाता है। किशोर छात्रों में भी आयु वृद्धि के साथ-साथ अहं-प्रतिरक्षा तत्त्व घटता जाता है।

व्यक्तित्व मापन के अन्तर्गत छात्रों में रचनात्मक चिंतन, छात्रों का आकांक्षा-स्तर, विद्यार्थियों के मूल्य, विद्यार्थियों में स्नायु-दौर्बल्य आदि पर भी खोज हुई। पारीक (1966) ने रचनात्मक चिन्तन के सम्बन्ध में पाया कि आयु वृद्धि के साथ-साथ रचनात्मक चिन्तन में वृद्धि होती है। बुद्धि व सामाजिक-आर्थिक स्थिति का रचनात्मक चिन्तन के साथ सार्थक सहसम्बन्ध होता है। अन्य चरों के अन्तर्गत रचनात्मक चिन्तन के साथ शैक्षिक संप्राप्ति का सामान्य सम्बन्ध है परन्तु व्यक्तित्व समायोजन, मुक्त चित्रांकन एवं कक्षापूर्ति का सार्थक सहसंबंध सिद्ध हुआ। साहबदयाल (1971) ने नवीं कक्षा के विज्ञान के विद्यार्थियों का आकांक्षा-स्तर, कला के विद्यार्थियों के आकांक्षा-स्तर से उच्चतर पाया। यह भी पाया गया कि विद्यार्थियों का आकांक्षा-स्तर उनकी संप्राप्ति से उच्चतर था। आकांक्षा तथा संप्राप्ति, आकांक्षा तथा कर्त्तृत्व और आकांक्षा तथा बुद्धि के बीच धनात्मक सहसम्बन्ध पाया गया। सोराकारी (1971) ने पाया कि विदेशों की तुलना में अपने देश में किशोर छात्र स्नायु विकार से अधिक ग्रस्त हैं॥ चण्डोक (1972) ने 'आत्म-प्रत्यय' का मूल्यांकन किया व पाया कि उच्च आत्म-प्रत्यय वाले विद्यार्थियों में आत्म विश्वास भी अपेक्षाकृत अधिक था। यही स्थिति समायोजन के सम्बन्ध में पाई गई। अधिक समायोजित छात्रों में आत्म-प्रत्यय की उच्चता तथा असमायोजित छात्रों में सांवेगिक अस्थिरता की प्रधानता रही। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों में वास्तविकता से पलायन की प्रवृत्ति कम पाई गई।

जैन (1974) ने उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों के जीवनगत मूल्यों की जाँच की व पाया कि बुनियादी शाला के विद्यार्थी श्रम मूल्यों की दृष्टि से राजकीय विद्यालय के छात्रों से अग्रणी रहे। उन्होंने आत्मनिर्भरता व स्वतन्त्रता में अपेक्षाकृत अधिक झुकाव दिखाया, जबकि राजकीय विद्यालयों के छात्रों ने ज्ञान प्राप्ति, नैतिकता, नेतृत्व आदि की तरफ अधिक झुकाव प्रदर्शित किया। अहिंसा, जनतंत्र, व्यक्तिगत सुख और आध्यात्मिक मूल्यों के बारे में दोनों ही विद्यालयों के विद्यार्थियों में समानता पाई गई। रामसचितसिंह (1962) ने बेल्स द्वारा निर्मित व्यक्तित्व समायोजन तालिका का भारतीयकरण किया। इसका विश्वसनीयता गुणांक ·77 से ·80 और वैधता गुणांक ·94 रहा।

विद्यालय व्यवस्थाओं का मूल्यांकन

राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ने विशेष प्रकार की विद्यालय व्यवस्थाओं को लेकर सन् 1967 व 1972 में दो शोध कार्य किए। मुख्य विषय रहा – प्रहर पाठशाला प्रयोग जो राजसमंद, शाहपुरा, रेलमगरा और भीलवाड़ा पंचायत समितियों में चलाया गया था। इन विद्यालयों की पाठ्यचर्या अन्य विद्यालयों के समान ही थी। सन् 1967 में मूल्यांकन के निष्कर्ष थे कि प्रहर पाठशाला के छात्रों की संप्राप्ति और पूर्णकालिक विद्यालयों के छात्रों की संप्राप्ति में कोई अंतर नहीं था। छात्रों ने अपने अभिभावकों के व्यवसाय में मदद की और उनका व्यवसाय-ज्ञान तथा नामांकन की स्थिति पूर्णकालिक विद्यालयों की तुलना में अधिक अच्छी रही। अपव्यय व अवरोधन की प्रखरता नहीं रही। दैनिक उपस्थिति अपेक्षाकृत अधिक रही। मगर 1972 में पता लगा कि शिथिलता और

अन्वधान से सुकार्य भी असफल हो जाता है। पाया गया कि जिस लग्न व उत्साह से ये विद्यालय शुरू किए गए थे उसमें पाँच वर्षों में ही कमी आ गई। उनमें ऐसे अध्यापक आ गए, जो योजना से परिचित नहीं थे। उन प्रयोगाधीन विद्यालयों पर शिक्षा विभागीय नियम समानतः लागू कर दिए गए, उससे बाधा पहुँची। आवश्यक शिक्षण-सामग्री का काफी अभाव रहा।

विविध अध्ययन

बृजकिशोर शर्मा (1973) ने फ्लैंडर की दस वर्गीय प्रणाली (Flander's Ten Categories) के अनुकरण पर, विज्ञान अध्वापकों के लिए एक व्यवहार-तालिका का विकास करके मालूम किया कि रसायन विज्ञान विषय में अध्यापक-कथन छात्र-कथन से साढ़े छह गुना अधिक था। अध्यापक द्वारा किए जाने वाले परोक्ष कथन 12% थे। छात्रों में विचार के विकास के या उनके विचारों की प्रशंसा के अवसर नहीं के बराबर रहे। अध्यापकों के अधिकार प्रदर्शन की स्थिति की किसी ने आलोचना नहीं की। यह भी पाया गया कि कक्षा में विचार-प्रवर्तन के अवसर छात्रों को नहीं दिए जाते। अध्यापकों के कक्षागत व्यवहारों का सापेक्षिक प्रतिशत इस प्रकार सें था – अध्यापन स्थिति का निर्माण 51.7%, अधिगम स्थिति का निर्माण 15.5%, सामग्री निर्माण की स्थितियाँ 7%, कक्षा नियंत्रण के व्यवहार 8.2%, मौन क्रिया के अवसर 7% और अनिश्चित व्यवहार 10.5%।

सुखानी (1968) ने महाविद्यालयी छात्रों के लिए एक अध्ययन-आदत जाँच प्रश्नावली तैयार की, जिसका विश्वसनीयता गुणांक ·78 ब वैधता गुणांक ·43 रहा। सार था कि अच्छी शैक्षिक संप्राप्ति केवल अध्ययन-आदतों पर ही निर्भर नहीं करती, इसके लिए बुद्धिलब्धि व अभिक्षमता जैसे तत्त्व भी उत्तरदायी होते हैं।

कर्णावट (1971) ने कक्षा के बाहर चलने वाली (सहशैक्षिक) क्रियाओं का मूल्यांकन करके पाया कि 70% से 75% अध्यापकों व छात्रों के मतानुसार इन क्रियाओं के संगठन व संचालन हेतु कोई अच्छी योजना नहीं बनाई जाती थी। इनकी योजना बनाने हेतु या क्रियान्विति हेतु छात्र समिति के सुझावों पर अमल नहीं किया जाता था। इन क्रियाओं का मूल्यांकन प्रायः सत्र के अन्त में किया जाता था। इस मूल्यांकन में छात्र समिति का कोई योगदान नहीं रहता। छात्रों के मतानुसार ये क्रियाएँ जनतांत्रिक नागरिकता और भावनात्मक एकता का विकास करती हैं। ये छात्रों में जिम्मेदारी, सहयोग व देश भक्ति के गुण पैदा करती हैं।

संभावनाएँ एवं सुझाव

मापन एवं मूल्यांकन के उपकरणों में संप्राप्ति परख पर विशेष ध्यान रहा। वस्तुतः इस क्षेत्र में अध्यापक को स्व-निर्मित परीक्षणों का उपयोग अधिक करना चाहिए, क्योंकि प्रमाणीकृत परखें पाठ्यक्रम परिवर्तन के साथ ही बेकार हो जाती हैं। परीक्षाओं, असफलता व उसके कारणों, छात्रों की अशुद्धियों, उनकी आवश्यकताओं, अभिवृत्तियों, व्यक्तित्व समायोजन, आपसी सामाजिक सम्बन्ध आदि विषयों में और

अधिक मूल्यांकन-शोध कार्य किये जाने अपेक्षित हैं। खेल, शारीरिक विकास आदि क्षेत्रों में मूल्यांकन का क्षेत्र तो शोधकर्त्ताओं के लिए अछूता-सा है।

न्यादर्श की दृष्टि से अधिकांश शोध कार्य किशोर छात्र-छात्राओं पर किए गए हैं। मगर, पूर्व प्राथमिक व प्राथमिक स्तर के बच्चों पर मूल्यांकन शोध कार्य भी उतने ही आवश्यक हैं। यह ठीक है कि छोटे बच्चों के लिए तैयार परख-पत्र/जाँच पत्र नहीं मिलते या कम मिलते हैं, मगर आवश्यकतानुसार उनका निर्माण किया जाना चाहिए।

उपकरणों की दृष्टि से यह मानना चाहिए कि भारतीय स्थितियों में निर्मित उपकरण ही सही निष्कर्ष दे पाने में सहायक होते हैं। विदेशी वातावरण में विकसित परीक्षणों का प्रयोग भ्रांत निष्कर्ष दे सकता है। यदि कुछ न हो सके तो उनका भारतीयकरण तो किया ही जाना चाहिए। इस तरह प्रयास करने से शिक्षा क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्तियों को सही उपकरण प्राप्त हो सकेंगे।

इन अनुसंधानों में प्रयोग विधि को कम स्थाघ मिला है, जबकि निष्कर्ष प्राप्त करने की दृष्टि से सबसे अधिक वैधता व विश्वसनीयता प्रयोग में ही होती है।

छात्रों/अध्यापकों की अभिवृत्तियों का मापन शैक्षिक विकास में मददगार होता है, पर एक-दो विषयों में ही वैसा करने से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। इसी तरह एक-आध जगह के छात्रों की अभिवृत्ति जान लेने से राज्य-स्तर पर किसी सुधार की दिशा नहीं बन सकती। यदि इतिहास विषय में लड़कों की अभिवृत्ति लड़कियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक पाई गई, लड़कियों की आपसी तुलना में नवीं कक्षा की लड़कियों में अधिक सकारात्मकता प्रदर्शित हुई, तो इससे सम्बन्धित परिपूरक अनुसंधान होने चाहिए थे, मगर वैसा कहीं हुआ नहीं।

उसी तरह यदि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की संप्राप्ति प्राइवेट विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में कम रही तो शिक्षा विभाग में अध्यापकों के चुनाव, उनके व्यावसायिक विकास, उनके अभिवृत्यात्मक परिवर्तन, उनके स्थानान्तरण आदि पर भी अनुपूरक या परिपूरक अध्ययनों की आवश्यकता थी। यदि वे हों तो उन्हें इनसे सम्बद्ध करके कहीं देखने की आवश्यकता भी है और उनके आधार पर प्रणाली में सुधार करने की उद्यतता की भी जरूरत है।

तथापि एक सराहनीय प्रवृति यह उभरती है कि इस अनुसंधानों में कुछ तो भारतीय वातावरण में निर्मित परीक्षणों का आंचलिक प्रमाणीकरण करने का प्रयास हुआ है, कुछ विदेशी परीक्षणों का। परख-पत्र समूहों का भारतीयकरण करके भारतीय परिवेश में उनके प्रमापीकरण करने का प्रयास हुआ है और कुछ स्वतंत्र परीक्षण/परख-पत्र समूह/संप्राप्ति परख बनाकर उनके प्रमाणीकरण का प्रयास किया गया है। इस प्रसंग में निम्नलिखित नवनिर्मित उपकरणों का उल्लेख करना सर्वथा संगत होगा : अभिवृत्ति मापनी (1967, 69, 70, 71), बुद्धि परीक्षा (1954, 57, 68, 72), संप्राप्ति परख (1953, 54, 56, 57, 61, 62, 64, 65, 66, 72), अभिरुचि, अभिवृत्ति एवं योग्यता परख-पत्र समूह (1970) निदानात्मक परख (वाचन)

(1954, 72, 74), भाषागत अशुद्धियाँ निदानात्मक परख (1954, 66, 69, 72, 73, 74), व्यक्तित्व समायोजन तालिका (1963, 68, 73), कुण्ठा-प्रतिक्रिया परख (1971, 74), मूल्य निर्धारण सम्बन्धी परख (1971, 72, 74), अध्यापक-व्यवहार तालिका (1973), अध्ययन-आदत तालिका (1968), गुड़िया खेल किट (1971) व बेल्स की समायोजन तालिका का भारतीयकरण (1962)। इनके उपयोग एवं परीक्षण का दायित्व उन सभी का होना चाहिए जो शिक्षा कार्य से सम्बन्धित हैं और उसके समुन्नयन की भावना रखते हैं।

सन्दर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, आर. एन. : Reading Tests and Diagnosis of Reading Difficulties of Children of Class VI of Nearly 11+,
M.Ed., Raj. Uni., 1957

अमृतकौर : To Develop Battery of Tests and Procedure for the Educational Guidance of the Pupils in Different Streams of the Higher Secondary Schools,
Ph.D. (Edu.), Raj. Uni., 1970

उपदेशकुमारी : **कक्षा प्रथम, द्वितीय व तृतीय की हिन्दी में होने वाली वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों को ज्ञात करने के लिए निदानात्मक परीक्षण का निर्माण,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

उपाध्याय, राधेश्याम : **पाँचवीं कक्षा में सामान्य विज्ञान की पढ़ाई का मूल्यांकन : एक अध्ययन,**
राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1965

कचरू, बालकृष्ण : Construction of an Achievement Test in Social Studies for Class IX,
M.Ed., Raj. Uni., 1956

कपूर, रामनाथ : Students' Attitude towards School and School Work : Development of a Scale,
M.Ed., Raj. Uni., 1967

कर्णावट, चाँदमल : A Critical Evaluation of Out-of-class Activities in Secondary and Higher Secondary Schools of Udaipur City,
M.Ed., Udaipur Uni., 1971

कृपालसिंह : Construction of an Achievement Test in Mathematics for Class VIII,
M.Ed., Raj. Uni., 1961

कौशिक, ओंकारप्रकाश : Construction of Personality Adjustment Inventory (Students Form),
M.Ed., Raj. Uni., 1963

खत्री, दुर्गाप्रसाद : Construction of an Attitude Scale on Likert Technique,
M.Ed., Raj. Uni., 1971

गुप्ता, केशवचन्द्र : A Study into the Relationship of External Examination Marks and Internal Assessment of XI Class Students of Jaipur and Ajmer Districts of Rajasthan,
M.Ed., Raj. Uni., 1963

गुप्ता, शशिप्रभा : A Study into the Personality Traits, Intelligence, Socio-Economic Status and Interests of the Socially Accepted and Rejected Children of VIII Class,
M.Ed., Raj. Uni., 1973

गुप्ता, सूर्यदेव : Causes of Failures in Mathematics,
M.Ed., Raj. Uni., 1972

चण्डोक, उषा : Study of Self Concept of Tenth Class Students in relation with their Intelligence, Socio-Economic Status and Adjustment,
M.Ed., Raj. Uni., 1972

जवण्डा, जगदेवसिंह : Problem of Assessment in Basic Education,
M.Ed., Raj. Uni., 1955

जैन, गणेशलाल : **विद्याभवन बुनियादी शाला एवं एक सरकारी उच्च प्राथमिकशाला के मूल्य,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974

जैन, सुदर्शनकुमारी : A Study of the Non-Scholastic Factors Responsible for High and Low Scholastic Achievement of Girls Studying in Higher Secondary Schools at Banasthali and Jaipur,
M.Ed., Raj. Uni., 1966

जोशी, जी. के. : **पाँचवीं कक्षा में सामाजिक ज्ञान की पढ़ाई का मूल्यांकन : एक अध्ययन,**
राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1965

दाधीच, सीताराम : A Comparative Study of the Over Chosen and Under Chosen X Class Students,
M.Ed., Raj. Uni., 1968

धाकड़, भँवरलाल : Relationship between the Socio-Economic Status of Parents and the Intelligence of their Wards,
M.Ed., Udaipur Uni., 1968

नारंगदेवी : Construction of an Achievement Test in Chemistry for Class IX,
M.Ed., Raj. Uni., 1966

पारीक, सीतासहाय : An Investigation into the Creative Thinking of Students at Different Age-levels and the Relationship between Creative Thinking and Other Related Factors,
M.Ed., Raj. Uni., 1966

बलराज : Construction of an Achievement Test in Hindi for class VIII,
M.Ed., Raj. Uni., 1954

बाकलीवाल, केशरीमल : An Appraisal of the Comprehensive Internal Assessment Scheme Recently Introduced in the Secondary Schools of Rajasthan,
M.Ed., Raj. Uni., 1968

बागची, नमिता : Diagnosis of Language Errors in English for VIII and Exploration of Probable Causes,
M.Ed., Raj. Uni., 1973

भादू, हजारीलाल : Evaluation of Pupils' Attainment in Hindi (Class VIII) through Dr. Bloom's Technique,
M.Ed., Raj. Uni., 1965

भार्गव, रामशरण : Construction of an Achievement Test in General Science for Class VIII,
M.Ed., Raj. Uni., 1956

भारतीय, सुधा : A Comparative Study of the Attitudes of Class XI Domestic Science and Non-Domestic Science Girl Students towards Domestic Life,
M.Ed., Raj. Uni., 1974

भारद्वाज, पुरुषोत्तम : Prognostic Values of VIII Class Marks,
M.Ed., Raj. Uni., 1965

मक्खनलाल : Construction of an Achievement Test in Mathematics for Class VIII,
M.Ed., Raj. Uni., 1961

माथुर, सुशीलारानी : Diagnosis of Language Errors in English in Class VI,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

मेहता, ऋषिवल्लभ : A Study of the Students' Failures at the High School Stage,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

मोटवानी, सुशीला नानकराम : **सिन्धी विद्यार्थियों द्वारा हिन्दी सीखने में की गई त्रुटियों का अनुसंधान,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1968

यादव, दिलीपसिंह : An Experimental Study of the Effect of Fatigue on Bilateral Transfer,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

यादव, राधेश्याम : **राजस्थान माध्यमिक शिक्षा परिषद् की भौतिक विज्ञान सम्बन्धी माध्यमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों के अभ्यास प्रश्नों तथा परीक्षा-प्रश्नों की उद्देश्यनिष्ठता-मूलक विश्लेषण एवं अनुसंधान,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1974

रघुनाथप्रसाद : Construction of an Achievement Test in Geography for Classs VIII,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

राठौड़, मोतीसिंह : Disabilities in Hindi Spelling,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

राजबहादुरसिंह	:	An Investigation into Factors Responsible for High Percentage of Failures in High School Examination of U.P. Board, M. Ed., Raj. Uni., 1974
रामचन्द्रा, रुक्मिणी	:	A Study of the Development of Vocabulary of Children of Age Group 6 to 8, Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1967
रामसचितसिंह	:	Indian Adaptation of Bell's Adjustment-Inventory (Student-Form) for High School Students, M. Ed., Raj. Uni., 1962
लबरू, ओंकारनाथ	:	Construction of an Achievement Test in History, M. Ed., Raj. Uni., 1956
लेधा, दुलीचन्द	:	Construction of an Achievement Test in Algebra and Geometry for Class VIII, M. Ed., Raj. Uni., 1955
राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	:	A Study of Students' Common Errors with special reference to the Efficacy of the Objective-based Examination System in Compulsory English, Higher Secondary Examination 1972, 1974
राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	:	A Study of Students' Common Errors with special reference to the Efficacy of the Objective-based Examination System in General Science, Secondary Examination 1972, 1974
राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	:	A Study of Students' Common Errors with special reference to the Efficacy of the Objective-based Examination System in Elementary Mathematics, Secondary Examination 1972, 1974
राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड	:	A Study of Students' Common Errors with special reference to the Efficacy of the Objective-based Examination System in Compulsory English, Secondary Examination 1972, 1974
राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान	:	Evaluation of Three Hours School:An Experiment, 1967
राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान	:	**प्रहर पाठशालाओं के संगठनात्मक पक्ष का मूल्यांकन,** 1972
वार्ष्णेय, नरेश	:	Construction of a Scale of Altruistic Attitude, M. Ed., Raj. Uni., 1973
वैश्य, रमेशचन्द्र	:	Construction of an Achievement Test in Social Studies for Class VIII Students, M. Ed., Raj. Uni., 1962
शर्मा, उर्मिला	:	**किशोर बालक-बालिकाओं में कुण्ठा के फलस्वरूप प्रतिक्रियाओं के विकासात्मक क्रम में रोजेन्जविग तकनीक के आधार पर एक अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1971

शर्मा, कन्हैयालाल	:	Doll play as a Technique of Evaluating Attitude of Children towards Home, M. Ed., Udaipur Uni., 1971
शर्मा, छत्रमोहन	:	Reactions to Frustration among Adolescents in the School Situations, Ph. D. (Edu.), Raj. Uni., 1973
शर्मा, जयप्रकाश	:	Common Errors in English at the High School Stage, M. Ed., Raj. Uni., 1954
शर्मा, नरदेव	:	Measurement of Understanding in Geography, M. Ed., Raj. Uni., 1962
शर्मा, बृजकिशोर	:	Developing a Science Teacher Behaviour Inventory, M. Ed., Raj. Uni., 1973
शर्मा, रविकान्त	:	Draw-a-Man Test as Predictor of Intelligence of Children, M. Ed., Raj. Uni., 1972
शर्मा, रामनिवास	:	Diagnosis of Errors in Hindi Class IX, M. Ed., Raj. Uni., 1969
शर्मा, रामप्रसाद	:	Construction of an Achievement Test in Social Studies for Class V, M. Ed., Raj. Uni., 1972
शर्मा, रामानन्द	:	छात्रों की संस्कृत विषय के प्रति अभिवृत्ति (लिकर्ट पद्धति से मापनी रचना), एम. एड., राज. वि. वि., 1969
शर्मा, लक्ष्मीनारायण	:	Construction of a Verbal Intelligence Test for Eleven plus, M. Ed., Raj. Uni., 1954
शाह, श्रीकृष्ण	:	Standardization of Alexander's Pass Along Test for Eleven plus, M. Ed., Raj. Uni., 1957
शेखावत, सवाईसिंह	:	माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान द्वारा प्रवर्तित तथा तदनुरूप राजस्थान के माध्यमिक विद्यालयों में क्रियान्वित व्यापक आंतरिक मूल्यांकन योजना के प्रति विभिन्न विद्यालयीय घटकों की अभिवृत्ति का अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1973
शैतानसिंह	:	उदयपुर नगर के राज० उ० मा० विद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन, एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974
सरदारसिंह	:	Construction of an Achievement Test in Agriculture for Class VIII, M. Ed., Raj. Uni., 1957
सारस्वत, कल्याणमल	:	भीलवाड़ा जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के कद व वजन सम्बन्धी मानकीकरण हेतु अध्ययन, एम. एड., राज. वि. वि., 1971

साहबदयाल : **दो शैक्षिक संकायों में विद्यार्थियों के आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1971

सिंघल, हरभगवानदास : Construction of an Achievement Test in General Science for Students of Class VIII,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

सिरीशकुमार : A Critical Study of a Group Intelligence Test in Hindi by Dr. Prayag Mehta,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

सुखानी, सतीश : Development of Study Habits Inventory for College Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

सूद, रमेशपाल : **विद्यार्थियों की इतिहास विषयक अभिवृत्ति एक सर्वेक्षण,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1970

सेमुएल, एन. डब्ल्यू. : An Investigation into the Attitudes of Teachers towards the Objective-based Questions Introduced by the Board of Secondary Education, Rajasthan, Ajmer,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

सेवाराम : Causes of High School Failures,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

सोराकारी, कमलेश : **किशोर जनों में व्याप्त स्नायु दौर्बल्य का एक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1971

हिम्मतसिंह : Relationship between the Marks of Sections 'A' and 'B' Obtained at the Board's Examination,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

त्रिपाठी, विष्णुदत्त : Construction of an Achievement Test in Arithmetic for Class VIII,
M. Ed., Raj. Uni., 1953

□

शैक्षिक निर्देशन

□ डॉ. अरविन्द बी. फाटक
□ वासुदेव जी. दवे

वैसे तो मानव को आदिकाल से निर्देशन की आवश्यकता रही है और वह अपने वयस्कों से अथवा मित्रों से अनौपचारिक रूप से निर्देशन प्राप्त करता रहा है, किन्तु शिक्षा में निर्देशन सेवाओं का सुव्यवस्थित प्रारंभ बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका में हुआ था। इसकी आवश्यकता औद्योगिक क्रान्ति के बाद विशेष अनुभव की जाने लगी है। भारत में तो इस विचारधारा का जन्म और भी बाद में हुआ। बम्बई नगर में पारसी पंचायत नामक संस्था द्वारा निर्देशन के क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य प्रारंभ किया गया था। यह एक विचित्र-सी बात है कि शिक्षा के इस महत्वपूर्ण पक्ष के जन्म-दाता शिक्षाजगत् से बाहर के व्यक्ति थे। यह एक संयोग का विषय है कि भारत व अमेरिका दोनों ही देशों में निर्देशन सेवाओं का प्रारंभ व्यावसायिक निर्देशन से हुआ था, और इस विचारधारा के जन्म के बाद कुछ वर्षों तक निर्देशन का अर्थ व्यावसायिक निर्देशन से ही लिया जाता रहा था। धीरे-धीरे निर्देशन के संप्रत्यय में परिवर्तन आया व इसको अधिक व्यापक रूप में लिया जाने लगा। इसके अन्तर्गत आज मानव जीवन से संबंधित सभी आयामों की समस्याओं का समावेश किया जाता है।

आज निर्देशन के विभिन्न रूप हमारे सामने हैं, यथा–व्यावसायिक निर्देशन, शैक्षिक निर्देशन, वैयक्तिक निर्देशन आदि। आज यह माना जाने लगा है कि निर्देशन शिक्षा का अविभाज्य अंग है और यही कारण है कि विभिन्न राज्यों में निर्देशन ब्यूरो स्थापित किए गए हैं। राजस्थान में निर्देशन ब्यूरो की स्थापना सन् 1958 ई० में हुई। इसी के साथ निर्देशन की विचारधारा का प्रचार व प्रसार होने लगा व इस क्षेत्र में गतिविधियाँ बढ़ने लगीं।

इस क्षेत्र में अनुसंधान की प्रचुरता की कल्पना इसी से की जा सकती है कि इस क्षेत्र के अनुसंधान कार्यों को प्रवृत्ति निरूपण हेतु दो भागों में बाँटना पड़ा– (1) शैक्षिक निर्देशन तथा (2) व्यावसायिक निर्देशन। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा कि शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत यहाँ छात्रों की व्यक्तिगत समंजन समस्याओं का भी समावेश किया गया है।

शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत उपलब्ध अनुसंधानों का यदि वर्गीकरण किया जाए तो वह इस प्रकार से होगा : – छात्रों की समंजन समस्याएँ, छात्रों की अभिरुचियाँ, छात्रों की अध्ययन-आदतें, शैक्षिक पिछड़ापन, प्रतिभावान एवं सृजनशील छात्र, छात्रों की निर्देशन संबंधी आवश्यकताएँ, निर्देशन-सेवाओं की प्रभावोत्पादकता का अध्ययन, चयन की कसौटियाँ तथा विविध ।

सर्वप्रथम यह तथ्य उभरता है कि अनुसंधानकर्त्ताओं का ध्यान छात्रों की समंजन समस्याओं की ओर सर्वाधिक गया है; निर्देशन-सेवाओं की प्रभावोत्पादकता को आँकने का तथा विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रवेश की कसौटियाँ निर्धारित करने का प्रयास सबसे कम हुआ है । विधि की दृष्टि से देखा जाए तो अधिकतर अनुसंधान सर्वेक्षण विधि पर आधारित हैं, केवल तीन-चार अध्ययन ही प्रयोगात्मक विधि पर आधारित हैं । प्रकरण अध्ययन विधियों का प्रयोग तो और भी कम हुआ है ।

छात्रों की समंजन समस्याएँ

छात्रों की समंजन समस्याओं पर तीन प्रकार के शोध देखने को मिलते हैं । एक तो वे, जिनमें विभिन्न प्रकार के छात्रों की समंजन समस्याओं का सर्वेक्षण करने का प्रयास किया गया है; दूसरे वे, जिनमें समंजन के सहसम्बन्धकों का अध्ययन किया गया है तथा तीसरे प्रकार के अनुसंधान वे हैं जिनमें कुसमंजन अथवा समंजन समस्याओं के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया गया है ।

कॉलेज के छात्रों के अध्ययन पर स्वामी (1973) ने यह मालूम किया कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक समंजन समस्याओं का सामना करना पड़ता है । शाला स्तर पर भी इसी तथ्य की पुष्टि रामकृष्ण शर्मा (1968) ने की है । जबकि भागिया (1970) ने यह पाया कि लिंग-भेद का समंजन स्तर पर कोई प्रभाव नहीं होता । इसी क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के छात्रों की तथा विस्थापित परिवार से आए छात्रों की समंजन समस्याओं के अध्ययन से कृष्णमुरारी शर्मा (1971) ने यह ज्ञात किया कि अनुसूचित जन-जाति के छात्रों व अन्य जाति के छात्रों में व्यक्तित्व समंजन की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर नहीं था, जबकि मीढ़ा (1974) द्वारा किए गए प्रकरण अध्ययन के अनुसार विस्थापित परिवारों से आए बच्चों के समंजन पर विस्थापन का तदनुकूल प्रभाव पड़ता है । एक अध्ययन में पंजाब व राजस्थान की किशोर बालिकाओं की दुश्चिन्ता का तुलनात्मक अध्ययन करके साहनी (1973) ने यह मालूम किया कि पंजाब की लड़कियाँ राजस्थान की लड़कियों की अपेक्षा अधिक चिन्ताग्रस्त रहती हैं । दाऊलाल शर्मा (1970) के अध्ययन के अनुसार ग्रामीण छात्र शहरी वातावरण में सहशैक्षिक प्रवृत्तियों में समंजन कर पाने में कठिनाई अनुभव करते हैं । विभिन्न प्रकार के छात्रों का समंजन स्तर कैसा होता हैं यह पता लगाने के साथ-साथ कुछ अनुसंधान ऐसे भी है जिनमें छात्रों की समंजन समस्याएँ किस प्रकार की हैं, यह पता लगाने का प्रयत्न किया गया है । आशादेवी (1967) ने अपने अनुसंधान में यह ज्ञात किया कि छात्राएँ अपने स्वास्थ्य, आर्थिक स्थिति, अध्ययन-सामग्री, दूसरों के साथ मिलने-जुलने, भूलने की आदत तथा संवेगात्मक अस्थिरता से चिंतित रहती हैं । जब कि

वी. एस. शर्मा (1966) ने टी. डी. सी. प्रथम वर्ष के छात्रों की समस्याओं के बारे में मालूम किया कि वे स्वकेन्द्रित होते हैं, आर्थिक समस्याओं से पीड़ित होते हैं, भविष्य के बारे में अनिश्चितता उनकी एक प्रमुख समस्या है तथा दूसरे साथियों से सुखद संबंधों का अभाव उनकी चिंता का विषय बना रहता है।

अनेक अनुसंधानकर्त्ताओं के अनुसंधानों से यह तथ्य सामने आया है कि बुद्धिलब्धि व समायोजन में धनात्मक सहसंबंध है। उच्च बुद्धिलब्धि वाले छात्रों के समायोजन स्तर के अधिक अच्छे होने की संभावना है। इसी प्रकार शाला-विषयों में उपलब्धि-स्तर व समायोजन का भी धनात्मक संबंध होता हैं, यह निष्कर्ष जैन (1969), भागिया (1970) तथा आर्य (1970) के अनुसंधानों से निकलता है। इसके अतिरिक्त कुछ अनुसंधानों में आर्थिक-सामाजिक स्तर, अध्ययन-आदतें, शाला में उपस्थिति, शारीरिक स्वास्थ्य, मौजिक चिंतन आदि कारकों के साथ भी समंजन का धनात्मक सहसंबंध देखा गया है। इन अनुसंधानों की संख्या यद्यपि बहुत अधिक नहीं है फिर भी एक निर्देशन कार्यकर्त्ता के लिए बच्चों के समंजन में सहायता हेतु उपर्युक्त निष्कर्ष अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। समंजत में समस्याओं के कारणों का पता लग जाए तो वह छात्रों को कुसमायोजित होने से बचा सकता है। पारीक (1970) का निष्कर्ष है कि अहम् तथा परम अहम् की सुरक्षा, आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आक्रामकता का प्रभाव अनुकूलन पर पड़ता है। सिसोदिया (1967) ने सामाजिक दृष्टि से परित्यक्त बच्चों के सम्बन्ध में यह पाया कि वे अपने माता-पिता के व्यवहार से असंतुष्ट थे। उनमें संवेगात्मक नियंत्रण की कमी थी, साथ ही उनमें आत्मविश्वास की कमी व जिम्मेदारी वहन करने से जी चुराने की प्रवृत्ति पाई गई।

शाला की एक प्रमुख समस्या पलायन की है। शालाओं से अक्सर भाग जाने वाले बालक अपने शिक्षकों, माता-पिता तथा शाला-प्रशासकों के लिए एक सिरदर्द बन जाते हैं। निर्देशन कार्यकर्त्ता का एक प्रमुख कार्य इन बालकों को शाला में समायोजित होने में सहायता करने का है। इसके लिए यह जानना जरूरी हैं कि पलायन की समस्या के कारण क्या हैं। चेतनस्वरूप (1970) ने यह मालूम किया कि पलायनवादिता का बुद्धिलब्धि से कोई संबंध नहीं है किन्तु कुछ सीमा तक आर्थिक एवं सामाजिक स्तर से यह समस्या जुड़ी हुई है। किन्तु सक्सेना (1966) ने शैक्षिक पिछड़ेपन का पलायन-वादिता से धनात्मक सह-संबंध बताया है। उनके निष्कर्षों के अनुसार पलायन वृत्ति वाले छात्रों में से बहुत ही कम प्रतिशत ऐसे छात्रों का था जो कि उच्च बुद्धिलब्धि के थे, 86.5 प्रतिशत तो निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले ही थे। बलबीरसिंह (1959) के अनुसंधान से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि पलायन करने वाले बालकों में से 80 प्रतिशत के माता-पिता अशिक्षित थे। पलायनवादिता के कारणों के विश्लेषण के संदर्भ में रघुवीरसिंह (1958) ने पाया कि व्यावसायिक निर्देशन की कमी, माता-पिता की निर-क्षरता, पिता का कुसमंजन, अवांछित मित्र, अत्यधिक कार्य, पिता द्वारा व्यक्तिगत ध्यान का अभाव, खेलों में अत्यधिक (अतिरिक्त रुचि) भाग लेना आदि पलायन के कारण थे। सक्सेना (1966) के अनुसार इस समस्या के प्रमुख कारण हैं : शाला द्वारा ऐसे छात्रों

की खोज न करना, प्रत्येक कालांश में उपस्थिति न लेना, शाला में पढ़ाए जाने वाले विषयों में अतिरिक्त एवं अत्यधिक गृहकार्य। कक्षा के अरुचिकारक वातावरण को भी इस समस्या के लिए उत्तरदायी पाया गया।

छात्रों की अभिरुचियां

छात्रों की समंजन समस्याओं के साथ-साथ छात्रों की अभिरुचियों पर भी अनुसंधान किए गए। इन अनुसंधानों को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है – वाचन अभिरुचियों का अध्ययन, पाठ्येतर क्रियाओं से संबंधित अभिरुचियों का अध्ययन एवं छात्रों की सामान्य अभिरुचियों का अध्ययन। अधिकतर अनुसंधानों से यह तथ्य उभरता है कि किशोर बालक व बालिकाएँ वाचन में काफी रुचि लेती हैं। केवल श्रीवास्तव (1959) ने यह पाया कि छात्रों की रुचि वाचन में कम होती है। काबू (1963) के अनुसंधान से यह रोचक एवं आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि उनके न्यादर्श में से लगभग एक तिहाई अध्यापकों में वाचन के प्रति रुचि का अभाव था। 30 प्रतिशत अध्यापकों ने एक वर्ष में कोई भी व्यावसायिक पत्रिका नहीं पढ़ी थीं तथा 20 प्रतिशत अध्यापकों ने अपने विषय से संबंधित कोई भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी।

वाचन से सम्बन्धित दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने आता है कि छात्र तथा छात्राओं की वाचन अभिरुचियाँ भिन्न होती है। छात्र वैज्ञानिक साहित्य, सामाजिक उपन्यास, ऐतिहासिक कहानियाँ तथा वीर रस की कविताएँ अधिक पसन्द करते हैं जबकि छात्राएँ लघु कहानियाँ, नाटक तथा जासूसी उपन्यास अधिक पसन्द करती हैं। अधिक बुद्धिलब्धि वाले तथा ऊँचे सामाजिक शैक्षिक स्तर वाले परिवारों से आने वाले बालक वाचन में अधिक रुचि लेते हैं। किन्तु यह भी पाया गया कि शालाओं में तथा घर पर बालकों को वाचन सम्बन्धी मार्गदर्शन नहीं मिलता। कुछ अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ कि शालाओं में वाचनालय का अभाव और समय-सारिणी में वाचनालय-कालांश का अभाव वाचन अभिरुचियों के प्रोत्साहन में बाधक सिद्ध होता है। गृहकार्य का बाहुल्य भी वाचन अभिरुचि में बाधक पाया गया।

पाठ्येतर प्रवृत्तियों में अभिरुचि के क्षेत्र में बीरिंगा (1959) के अनुसंधान से यह तथ्य निकला कि छात्र सहशैक्षिक क्रियाओं में रुचि नहीं लेते, उन्हें सिनेमा तथा सस्ता संगीत अधिक प्रिय होता है। जांगीड़ (1968) के अनुसार छात्रों की अभिरुचियों में शारीरिक क्रिया-कलापों को द्वितीय स्थान प्राप्त है। लड़कियों की अपेक्षा लड़के खेल को अधिक पसन्द करते हैं। यह एक दिलचस्प बात है कि अधिकतर छात्रों ने खेलकूद को अध्ययन में बाधक नहीं माना।

लक्ष्मेन्द्रकुमार शर्मा (1970) ने छात्र व छात्राओं की सामान्य रुचियों का अध्ययन करके यह मालूम किया कि छात्रों की रुचियों की वरीयता का क्रम पढ़ना, रेडियो सुनना व धार्मिक स्थानों पर जाना है; जबकि छात्राओं की रुचियों का वरीयता क्रम रेडियो सुनना, पढ़ना, सिलाई व कसीदा करना, खाना बनाना, घर का कार्य करना, खेलना व धार्मिक स्थानों पर जाना है। दोनों ही समूहों ने गप्पें लगाने में, दूकानों पर

बैठने में व घुमक्कड़पने में कोई रुचि नहीं बताई। किशोरों की रुचियों पर औदिच्य (1969) ने और प्रकाश डाला है। तदनुसार, भारतीय तथा अमेरिकी किशोर सुन्दर दिखने में, अच्छी पोशाक पहिनने में, पढ़ने में और अच्छे स्वास्थ्य में रुचि रखते हैं।

छात्रों की अध्ययन-आदतें

छात्रों की अध्ययन-आदतों से संबंधित अनुसंधानों में मुख्यतः दो प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक प्रकार के अनुसंधान तो वे हैं जिनमें अध्ययन-आदतों का अन्य चरों से सह-संबंध देखने का प्रयास किया गया है, तथा दूसरे प्रकार के अध्ययनों में दो समूहों की अध्ययन-आदतों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया हैं।

अध्ययन-आदतों एवं शैक्षिक संप्राप्ति में धनात्मक सह-सम्बन्ध होता है। डोगरा (1960) तथा माखीजा (1970) के अध्ययनों से अध्ययन-आदतों का बुद्धिलब्धि के साथ धनात्मक संबंध पाया गया। दासगुप्ता (1966) ने भी अध्ययन-आदतों का शैक्षिक उपलब्धि के साथ धनात्मक किन्तु सार्थक सहसम्बन्ध बताया है। राव (1966) व निहालसिंह शर्मा (1967) ने छात्रों के आर्थिक-सामाजिक स्तर एवं अध्ययन-आदतों में नगण्य सम्बन्ध की स्थिति ज्ञात की। बोरगाँवकर (1960) ने नर्सरी स्कूल के बच्चों के बुद्धिस्तर का सर्वेक्षण करके यह पाया कि 3 वर्ष की आयु के बालक शाब्दिक परीक्षणों की अपेक्षा निष्पादन परीक्षणों (Performance Tests) में अच्छे अंक प्राप्त करते हैं। इस आयु से पूर्व दोनों ही परीक्षणों के आधार पर अंकों में कोई अंतर नहीं पाया गया। छात्राओं की अपेक्षा छात्रों का स्तर प्रत्येक परीक्षण में थोड़ा-सा ऊँचा पाया गया। आर्थिक-सामाजिक स्तर बुद्धिलब्धि को प्रभावित नहीं करता। निहालसिंह शर्मा (1967) के अध्ययन से यह पता चलता है कि छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन-आदतों में बहुत अन्तर होता है। अध्ययन में छात्राओं को छात्रों से अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बोथरा (1970) ने यह पाया कि निजी संस्थाओं में पढ़ने वाले छात्र तथा छात्राओं की अध्ययन-आदतें राजकीय विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र तथा छात्राओं से अच्छी होती थीं। शर्मा (1969) के अनुसार विज्ञान के विद्यार्थियों की अध्ययन-आदतें वाणिज्य एवं कला के छात्रों से अच्छी होती है, तथा वाणिज्य के छात्र इस क्षेत्र में कला के छात्रों से अच्छे होते हैं। राव (1966) के शोध से निम्न एवं उच्च शैक्षिक संप्राप्ति वाले बालकों की अध्ययन-आदतों में बहुत अन्तर पाया गया। उच्च संप्राप्ति के छात्र-छात्राओं में परस्पर सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

शैक्षिक पिछड़ापन

छात्रों के पिछड़ेपन पर किए गए अनुसंधान निर्देशन कार्यकर्त्ताओं के लिए मार्गदर्शक हो सकते हैं। इस क्षेत्र में जो अनुसंधान हुए है उनमें से अधिकांश में पिछड़ेपन के कारणों का पता लगाने का प्रयास किया गया हैं। इस लक्ष्य हेतु अधिकतर अनुसंधानर्त्ताओं ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है। माथुर (1971) ने पिछड़ेपन के निम्नलिखित कारण मालूम किए : अत्यधिक अवकाश, कक्षाओं में अधिक छात्र संख्या, बोझिल पाठ्यक्रम, प्रयोगशालाओं का व सहायक

सामग्री का अभाव, हड़तालें, व्यक्तिगत ध्यान का अभाव, छात्रों द्वारा सस्ती कुंजियों का प्रयोग, पाठ्यक्रम का जीवन से संबंधित न होना, अंग्रेज़ी माध्यम, छात्रों की अरुचि, हिन्दी पुस्तकों का अभाव, निम्न आर्थिक-सामाजिक स्तर, घर पर शिक्षा के प्रति उदासीनता का दृष्टिकोण, घर के सदस्यों के साथ तनावपूर्ण संबंध, अनियमित अध्ययन-आदतें, आत्मविश्वास की कमी व महत्त्वाकांक्षा का निम्न स्तर।

सांधू (1970) ने नागरिक शास्त्र में पिछड़ेपन का अध्ययन करते हुए यह बताया कि अध्ययन-आदतों का व आर्थिक-सामाजिक स्तर का पिछड़ेपन से नगण्य संबंध है। जबकि गणित विषय के लिए वशिष्ठ (1958) ने इसके विपरीत तथ्य मालूम किए। उनके अनुसंधान के अनुसार निम्न आर्थिक-सामाजिक स्थिति व खराब अध्ययन-आदतें दोनों पिछड़ेपन के लिए उत्तरदायी होती हैं।

प्रतिभावान तथा सृजनशील छात्र

प्रतिभावान, उच्च संप्राप्ति वाले तथा सृजनशील बालकों की विशेषताएँ खोजने और उनकी विभिन्न समस्याओं का पता लगाने की दिशा में भी अनुसंधान हुए है। गुप्ता (1960), भाटी (1971) तथा सुरेन्द्रकुमार शर्मा (1973) के अध्ययनों से प्रतिभावान छात्रों की विशेषताएँ इस प्रकार से हैं: इन बालकों का समंजन अन्य बालकों से अच्छा होता है; इनकी अभिरुचियों के क्षेत्र अधिक विस्तृत होते हैं; ये शिक्षित परिवारों से आते है; इनमें अपनी समस्याएँ स्वतंत्र रूप से स्वत: हल करने की क्षमता होती है; ये पढ़ाई में नियमित पाए गए। सुवानिया (1969) ने सृजनशील बालकों का अध्ययन करके यह मालूम किया कि कला एवं विज्ञान वर्ग के छात्रों की सृजनशीलता में कोई सार्थक भिन्नता नहीं थी। सृजनशीलता के विभिन्न घटकों का शैक्षिक संप्राप्ति के साथ कोई सार्थक सहसंबंध नहीं पाया गया। बल्कि कला-वर्ग में तो सृजनशीलता का शैक्षिक संप्राप्ति के साथ नकारात्मक संबंध पाया गया। काबरा (1970) के अनुसंधान में प्रतिभावान छात्रों की पाठ्यचर्या से संबंधित समस्याओं का उल्लेख किया गया है। इस अनुसंधान में यह पाया गया कि इन छात्रों को पाठ्यपुस्तकें सरल लगती हैं। गृहकार्य तथा परीक्षा के प्रश्न-पत्र इनको चुनौतीपूर्ण नहीं लगते।

छात्रों की निर्देशन सम्बन्धी आवश्यकताएँ

खेमाराम शर्मा (1968) ने नवीं कक्षा के छात्रों की निर्देशन आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करके यह पता लगाया कि छात्रों की निर्देशन की आवश्यकता सबसे अधिक शैक्षिक क्षेत्र में होती है, इसके पश्चात् क्रमश: व्यावसायिक एवं संवेगात्मक निर्देशन की आवश्यकता पाई गई। छात्रों की निर्देशन आवश्यकताएँ छात्राओं से अधिक पाई गईं। टंडन (1969) के अध्ययन के निष्कर्ष थे कि विज्ञान एवं वाणिज्य वर्ग के छात्रों की निर्देशन आवश्यकताएँ कला वर्ग के छात्रों से भिन्न होती हैं और विज्ञान वर्ग के छात्रों को निर्देशन की आवश्यकता सर्वाधिक रहती है। इसी प्रकार ग्रामीण छात्रों की अपेक्षा शहरी छात्रों की निर्देशन आवश्यकताएँ अधिक पाई गईं। हरकुट (1974) तथा खेमाराम शर्मा (1968) के अनुसंधानों से निर्देशन आवश्यकताओं का अन्य घटकों

के साथ क्या संबंध है यह ज्ञात होता है। हरकुट के निष्कर्षों के अनुसार निर्देशन आवश्यकताओं का बुद्धिलब्धि से कोई संबंध नहीं होता। शर्मा के अनुसंधान में भी यह संबंध नगण्य पाया गया। आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों एवं निर्देशन आवश्यकताओं का कोई सार्थक सहसंबंध शर्मा के अनुसेंधान से नहीं मिलता, जबकि हरकुट के निष्कर्षों से यह पता चलता है कि आर्थिक-सामाजिक स्तर निर्देशन आवश्यकताओं को प्रभावित अवश्य करता है।

निर्देशन सेवाओं की प्रभावशीलता

शर्मा (1965) तथा पुरोहित (1973) ने प्रयोगात्मक विधि से निर्देशन कार्य की प्रभावशीलता देखने का प्रयास किया। शर्मा के अनुसार प्रयोगात्मक समूह में शिक्षा-क्रमों एवं व्यवसायों संबंधी जानकारी में वृद्धि हुई तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं में कमी हुई। प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित दोनों ही समूहों के सदस्यों की अध्ययन-आदतों में सुधार हुआ। पुरोहित के परिणाम भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि उपबोध से प्रयोगात्मक समूह को लाभ हुआ।

चयन की कसौटियाँ

इन अनुसंधानों में विज्ञान तथा कृषि विषय के लिए छात्रों का चयन करने की कसौटियाँ निर्धारित करने के प्रयास भी हुए हैं। कौल (1967) के अनुसार उच्च बुद्धिलब्धि तथा वैज्ञानिक रुझान वाले बालकों को विज्ञान विषय में लिया जाना चाहिए। भल्ला (1963) के अनुसार कृषि विषय में सफलता के लिए केवल बुद्धि ही महत्वपूर्ण घटक नहीं है। इस विषय में सफलता के लिए छात्रों की अभिरुचि का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। छात्रों के व्यक्तिगत समंजन का प्रभाव भी इस विषय में सफलता पर पड़ता है।

विविध

उपर्युक्त अध्ययनों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी अध्ययन शैक्षिक निर्देशन के क्षेत्र में हुए है जो अलग-अलग प्रकार के हैं। चारण (1968) ने छात्रों की शैक्षिक योजनाओं का अध्ययन करके यह जाना कि केवल 25 प्रतिशत छात्र व्यावसायिक क्षेत्रों में जाना चाहते थे। विज्ञान के अधिकांश छात्र अभियांत्रिकी में जाना चाहते थे। बाफना (1969) ने यह देखा कि माताओं के सेवारत होने का प्रभाव उनके बच्चों की आकांक्षाओं तथा शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है। शिक्षित सेवारत माताओं के बच्चों की आकांक्षाएँ तथा शैक्षिक उपलब्धि शिक्षित किन्तु नौकरी न करने वाली माताओं के बच्चों से ऊँची पाई गई। मुन्शी (1955) ने उदयपुर के छात्रों के स्वास्थ्य का अध्ययन करके यह पाया कि उन छात्रों में कुपोषण की समस्या सामान्य रूप से थी। घर का वातावरण, आर्थिक-सामाजिक स्तर एवं शाला का वातावरण बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। सुदर्शनकुमार (1958) ने निर्देशन हेतु वैयक्तिक सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए कुछ उपकरणों का निर्माण किया जिनमें वैयक्तिक सूचना-पत्र, अभिरुचि-पत्र एवं अभिभावक मत-पत्र प्रमुख हैं।

संभावनाएँ एवं सुझाव

शैक्षिक निर्देशन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमारे पास भारतीय परिस्थितियों में निर्मित उपकरण उपलब्ध हों जिनके द्वारा हम छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों से संबंधित सूचनाएँ एकत्रित कर सकें। अनुसंधानों की समस्त सूची में केवल एक अनुसंधान ऐसा मिलता है जिसमें निर्देशन उपकरणों के निर्माण का प्रयास किया गया है।

प्रतिभाशाली एवं सृजनशील छात्रों के लक्ष्यों पर तो कुछ अध्ययन मिलते हैं, किन्तु इन छात्रों के लिए विशेष शिक्षाक्रम कैसा हो, इस पर एक भी अध्ययन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। आज आवश्यकता इस बात की है कि इन बालकों के विकास हेतु उचित शैक्षिक वातावरण का सृजन किया जाए। यह तभी हो सकता है जब अनुसंधानकर्त्ता प्रायोगिक रूप से इन बच्चों के विकास के लिए कुछ कार्यक्रम चला कर देखें। राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरो द्वारा भी इस प्रयोजन से प्रायोगिक कार्य किया जाना चाहिए। पिछड़ेपन के कारणों का पता लगाने के अनेक प्रयास हुए हैं, किन्तु किसी भी अनुसंधान में पिछड़ापन दूर करने की किसी विधि का प्रायोगिक परीक्षण नहीं किया गया। यदि पिछड़ापन दूर करने के कुछ तरीके सुझाए जाएँ तो निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अधिक मार्गदर्शन मिल सकता है।

निर्देशन भारत के लिए नूतन शैक्षिक प्रयोग है। अतः निर्देशन के कौन से तरीके भारतीय परिस्थितियों में अधिक सफल हो सकते हैं, इस विषय पर भी पर्याप्त अनुसंधान कार्य की आवश्यकता दृष्टिगोचर होती है। यह मानकर नहीं चला जा सकता कि जो विधियाँ पश्चिम में सफल हों, वे भारत में भी उपयुक्त सिद्ध होंगी।

छात्रों की अभिरुचियाँ क्या हैं, यह देखना तब तक कोई अर्थ नहीं रखता जब तक कि अभिरुचियों के विकास का कोई सुनियोजित प्रयास न हो। इस क्षेत्र में जो अनुसंधान हुए हैं उनमें केवल अभिरुचियों के विकास का पता लगाने का प्रयास किया गया है। अभिरुचियों के विकास के कितने अवसर शालाएँ प्रदान करती हैं या उनके विकास के कौन से तरीके हो सकते हैं, इस पर भी अनुसंधान किया जाए तो निर्देशन कार्यकर्त्ताओं को अधिक लाभ हो सकता है।

शैक्षिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को विभिन्न शिक्षाक्रम चुनने में सहायता प्रदान करना है। यह तभी किया जा सकता है जब विभिन्न विषयों में सफलता के लिए कौन से वैयक्तिक गुण होना आवश्यक है यह ज्ञात हो। इस दिशा में शोध कार्य नहीं के बराबर हुए हैं। अतः शोधकर्त्ताओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र हो सकता है।

इस अध्याय में जिन अनुसंधान प्रवृत्तियों की चर्चा की गई है उससे क्षेत्र में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के लिए भी अनेक सुझाव सामने आते हैं :

छात्र मुख्य रूप से आर्थिक कठिनाइयों से, भविष्य की चिन्ता से व स्वास्थ्य से चिंतित रहते हैं। इसी प्रकार निम्न शैक्षिक संप्राप्ति भी कुसमायोजन के लिए उत्तरदायी रहती है। सीखो-कमाओ योजना व स्वास्थ्य शिक्षा का सुनियोजित कार्यक्रम तथा पिछड़े

बालकों के लिए विशेष प्रयासों द्वारा छात्रों के समंजन को अच्छा बनाने में सहायता की जा सकती है। अभिरुचियाँ क्या है यह जानना तभी सार्थक हो सकता है जबकि शिक्षा के माध्यम से अभिरुचियों को विकसित करने का प्रयास किया जाए। शिक्षकों को चाहिए कि अध्यापन-विधाओं में तथा पाठ्येतर क्रियाओं के माध्यम से छात्रों में विभिन्न रुचियों का विकास करें। शोध निष्कर्षों में यह उल्लेख मिलता है कि शाला पुस्तकालयों की स्थिति संतोषजनक नहीं है। अतः इस ओर शाला-प्रशासकों का ध्यान विशेष रूप से जाना चाहिए। कुछ अनुसंधानों से ये निष्कर्ष सामने आए हैं कि शाला में व घर पर छात्रों की अध्ययन-आदतों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अध्ययन-आदतें शैक्षिक संप्राप्ति को प्रभावित करती हैं। अतः शिक्षक और अभिभावक इस ओर ध्यान दें तो छात्रों को अधिक लाभ हो सकेगा। गृहकार्य के भार एवं अरोचकता को घटाने का प्रयास भी जरूरी है। सृजनशील बालकों ने यह मत व्यक्त किया है कि गृहकार्य एवं परीक्षाएँ उन्हें चुनौतीपूर्ण नहीं लगतीं। अतः इन बालकों की विशेष आवश्यकताओं की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए।

संदर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, आर. के. : An Investigation into the Reading Interests in Hindi among Adolescent Boys and Girls of Various Schools of Sardarshahr, M. Ed., Raj. Uni., 1961

अग्रवाल, चन्द्रप्रकाश : A Study of the Superstitions of the Students of the Various Age Levels (11 plus to 15 plus) and the Measure of the Relationship between Superstitions, Intelligence and Personality Adjustment of 200 Students of Bikaner Division, M. Ed., Raj. Uni., 1962

अग्रवाल, प्रेमचन्द्र : The Impact of Cinema on Adolescents, M. Ed., Raj. Uni., 1960

अवस्थी, रमेन्द्रप्रसाद : **सुसमायोजित व कुसमायोजित किशोर छात्रों में कुण्ठा की प्रतिक्रियाओं का रोजेन्जवीग तकनीक के आधार पर अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1973

आशादेवी : An Investigation into Personal Problems of the Adolescent Girls in Relation to their Intelligence and Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1967

आर्य, एस. के. : A Study of Some Causes of Maladjustment of IX Class Students of Jodhpur, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

उपदेशकुमारी : A Comparative Study of Adjustment Problems and Independent Yielding Nature of High and Low Adolescent Original Thinkers, M. Ed., Raj. Uni., 1970

ओगरा, रूपकिशन	:	An Investigation into the Relationship of Personality Adjustment Problems with Intelligence and Age of the Delinquents of Barstal Jail Hissar, M. Ed., Raj. Uni., 1960
औदिच्य, निरंजननाथ	:	Current Trends of Adolescent Interests : A Comparison with the Trends of Adolescent Interests in U.S.A., M. Ed., Udaipur Uni., 1969
काबू, चुन्नीलाल	:	Study Habits and Skills in Mathematics, M. Ed., Udaipur Uni., 1964
काबू, मक्खनलाल	:	A Study of the Reading Interests of Secondary School Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1963
काबरा, रामचन्द्र	:	**प्रतिभाशाली छात्रों की पाठ्यक्रम संबंधी समस्याएँ,** एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1970
कौर, इकबाल	:	Parental Attitude as a Causative Factor of Maladjustment in Children, M. Ed., Raj. Uni., 1959
कौर, रवीन्दर	:	A Comparative Study of Behavioural Adjustment of Boys and Girls Secondary Schools, M. Ed., Raj. Uni., 1972
कौल, श्यामाकुमारी	:	Selection Criteria for Admission of Students to the IX Class Science Course, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
कौल, सूरज	:	A Study of the Needs of Adolescents, M. Ed., Raj. Uni., 1969
खुराणा, कमलेशकुमारी	:	Social Beliefs of a Group of Teachers and Pupils in a Higher Secondary School, M. Ed., Raj. Uni., 1960
गुप्ता, अशोककुमार	:	Backwardness in Reading Ability in English, M. Ed., Raj. Uni., 1959
गुप्ता, बृजमोहन	:	A Study of Gifted Children in Udaipur, M. Ed., Udaipur Uni., 1960
गुप्ता, वेदप्रकाश	:	**किशोर किशोरियों में व्याप्त समस्याओं के प्रति संतोष-असंतोष का एक अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1972
गुप्ता, त्रिलोकीनाथ	:	Reading Interests of Adolescent Boys and Girls of Class IX of Ajmer City, M. Ed., Raj. Uni., 1966
गुमास्ता, ब्रजभूषण	:	Investigation into Personal Problems of Adolescent Boys Studying in the High Schools of Sardarshahr, M. Ed., Raj. Uni., 1959
चंडोक, उषा	:	A Study of Self Concept in Relation to Intelligence, Adjustment, and Socio-Economic Status of the Students of Class X, M. Ed., Raj. Uni., 1972

चारण, हरिदान : **छात्रों की शैक्षणिक एवं व्यावसायिक योजनाएँ : कक्षा 9 का एक सर्वेक्षण,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1968

चेतनस्वरूप : A Study of the Causes of Truancy in IX Class in Higher Secondary Schools of Jodhpur,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

चौधरी, चन्द्रकला : **प्रथम वर्ष स्नातक विद्यार्थियों के अनुत्तीर्ण होने के कारणों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

जांगीड, रामलाल : **जयपुर स्थित विद्यालयों की नवम् कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की खेल संबंधी अभिरुचियों का सर्वेक्षण,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1968

जुगलबिहारीलाल : Investigation into the Activities of Brilliant Children,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

जैन, शिखरचन्द : Causes of Social Non-Acceptance and Some of its Correlates,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

जोशी, विष्णुदत्त : **निम्न सम्प्राप्ति वाले किशोर एवं किशोरियों की रुचियों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1969

टण्डन, रामलाल : A Comparative Study of Guidance Needs of IX Class Arts, Commerce and Science Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

टुट्टू, दुर्गानाथ : Maladjustment among Adolescents,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

डोगरा, द्वारकानाथ : Study Habits and Skills of Science Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

दवे, चन्द्रकान्ता : A Study of Reading Interests of XI Class Boys with special reference to its Relation with Intelligence and Socio-Economic Status,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968.

दासगुप्ता, मीरा : Backwardness and Study Habits in Girls,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

द्विवेदी, मंजु : A Study of the Adjustment of Adolescent Students (Male & Female) of Uni-sex and Co-educational Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

दौलतराम : A Study of Social Acceptance of Delta Class Students of Churu District (Rajasthan) in Relation to their Intelligence, Achievement, Friendship, Personality Adjustment, Socio-Economic Status and Participation in Group Activities,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

परिहार, पृथ्वीसिंह : Adjustment Difficulties of College Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

पांडे, लक्ष्मी : **विभिन्न कक्षाओं के स्तर पर लड़के एवं लड़कियों की आवश्यकताओं का एक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1968

पालीवाल, अरुणा : **पूर्व तरुणावस्था, तरुणावस्था तथा उत्तर तरुणावस्था आयु-समूह की छात्राओं की आवश्यकताओं तथा पढ़ने की रुचियों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1973

पारीक, शान्ति : **छात्र एवं छात्राओं के अनुकुलन पर भग्नाशाओं के प्रति प्रतिक्रियाओं का प्रभाव,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

पुरोहित, चन्द्रभान : An Experimental Evaluation of Counselling,
M. Ed., Udaipur Uni., 1973

पुरोहित, लक्ष्मीनारायण : Sociometric Status, Adjustment Problems of Altruistic Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

बल, गुरमिन्दर : **परिवार के सबसे बड़े एवं सबसे छोटे बालक के समायोजन की समस्याएँ,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1973

बलबीरसिंह : An Investigation into the Problems of Truancy among High School Boys of Sardarshahr,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

बापना, चन्द्रप्रकाश : Mothers' Employment and their Children's Aspirations and Achievement,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

बीरिंगा, लाभसिंह : Investigation into the Hobbies and Co-curricular Activities of Class IX and X Boys in Churu District in relation to their Educational-Vocational Choice and Guidance,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

बोथरा, मन्नालाल : **सरकारी एवं सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त विद्यालयों की अष्टम श्रेणी के विद्यार्थियों की अध्ययन-आदतों का एक तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

बोरगाँवकर, शकुन्तला : A Survey of Intelligence of Nursery School Children in Udaipur,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

भटनागर, बी. एन. : Reading Difficulties of Class VI Students in Hindi,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

भल्ला, बलजीतसिंह : An Investigation to Evolve Selection Criteria for Admission to the Degree Course in Agriculture,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

भवानीसिंह : Personality of Least and Most Anxious Adjustment of Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

भागिया, सुषमा : A Study of School-Adjustment of Pupils in Relation to Achievement, Intelligence and Sex,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

भाटी, ओमप्रकाश : A Study of the Family, Educational, Social and Economic Background of Academically Brilliant Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

भार्गव, विमला : A Study of Vocational Aspirations of Adolescent Girls of Class X,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

भोजक, बी. एल. : An Investigation into the Problem Tendencies of 576 Children (11+ to 14+) of Bikaner Division and the Measure of Correlation between Problem Tendencies, Intelligence, Achievement and other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

महरोत्रा, पुष्पलता : **छात्र एवं छात्राओं की सामान्य एवं तर्क बुद्धि का उनकी आवश्यकताओं से सम्बन्ध,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

महेशचन्द्र : Sociometric Status and Personal Problems of Adolescents : An Exploratory Study,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

माखीजा, मनोहरलाल : **भूगोल में अध्ययन आदतें एवं कुशलताएँ : दशम श्रेणी पर आधारित एक अध्ययन,**
एम. एड,. उदयपुर वि.वि., 1970

माथुर, चन्द्रप्रकाश : Effectiveness of Group Guidance in Developing Study Habits in Tenth Grade Students in English,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

माथुर, मिथिलेशकुमारी : Adjustment Problems of M. Ed. Students,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

माथुर, योगेश्वरदयाल : Underachievement : Some Case-Studies,
M. Ed., Raj. Uni., 1971

मीढ़ा, सुशीला : Adjustment of Children from Migrated Families : Some Case Studies,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

मुंशी, मक्खनलाल : Students' Health in Udaipur,
M. Ed., Raj. Uni., 1955

मुंशी, शान्ता : Reading Interests of Boys and Girls of VIII Class in Udaipur Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1958

मोहनसिंह : Adjustment Problems of College Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

यादव, महावीरसिंह	:	A Study of Intelligence, Vocational Preference and Personal Adjustment of School Children Showing High Scholastic Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1962
रघुवीरसिंह उर्फ सथमसिंह	:	Causes of Truancy in High Schools, M. Ed., Raj. Uni., 1958
रस्तौगी, अम्बादेवी	:	**किशोरियों के पारिवारिक जीवन में वर्तमान तनाव तथा समायोजन के सम्बन्ध का अध्ययन,** एम. एड., राज. वि.वि., 1969
रस्तौगी, कृष्णगोपाल	:	Study of Expressed Manifest and Tested Interests of the Delta Class Students, M. Ed., Raj. Uni., 1959
राजपूत, कुसुम	:	A Study of Harmony and Dis-harmony between Parents and their School-going Adolescent Daughters, M. Ed., Udaipur Uni., 1965
राठौर, सुमेरसिंह	:	An Investigation into the Reading Interests of Boys and Girls of Class IX in Jodhpur City Schools, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970
रामचन्द्र	:	Investigation into the Reading Interests of High School Students in Udaipur City Schools, M. Ed., Raj. Uni., 1957
राव, सूरजनारायण	:	A Comparative Study of Study Habits of the High Achievers and Low Achievers in Class VIII, M. Ed., Raj. Uni., 1966
वर्मा, बंगालीलाल	:	A Study of the Personality Problems, Adjustment Traits and Vocational Interests of Super Normal School Children, M. Ed., Raj. Uni., 1964
वर्मा, स्नेहप्रभा	:	**व्यावसायिक महाविद्यालयों के छात्रों के कुसमायोजन का अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1968
वशिष्ठ, के. एम.	:	Backwardness in Arithmetic : Diagnostic Study of Children of Class VI, M. Ed., Raj. Uni., 1958
शर्मा, आनन्दीलाल	:	Problems of Home Adjustment of School-going Adolescents with Different Socio-Economic Background, M. Ed., Raj. Uni., 1962
शर्मा, उर्मिला	:	A Study of Home Adjustment of Home Science College Girls, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

शर्मा, कृष्णमुरारी : **माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले सवर्ण एवं अनुसूचित व पिछड़ी जनजातियों के विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों तथा समायोजन समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1971

शर्मा, कैलाशनाथ : An Experimental Investigation to Evaluate the Efficiency of Guidance Services in Secondary Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

शर्मा, खेमाराम : An Investigation into the Guidance Needs of IX Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शर्मा, दाऊलाल : **ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों के शहरी विद्यालयों में समायोजन की समस्याएँ,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1970

शर्मा, निहालसिंह : A Comparative Study of the Study Habits of X Class Boys and Girls,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

शर्मा, परमानन्द : Personal Adjustment of Degree Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

शर्मा, बृजनारायण : A Study of Justice Principle of Students at Different Age Levels and the Relationship between the Justice Principle and other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

शर्मा, महावीरप्रसाद : A Comparative Study of the Study Habits of Tenth Class Science, Commerce and Arts Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

शर्मा, महेन्द्रकुमार : **अध्यापक प्रेरणा तथा उसका दक्षता से सम्बन्ध,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1974

शर्मा, मोतीलाल : Front-Benchers and Back-Benchers : An Exploratory Study in Psychometry,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

शर्मा, रतनलाल : Social Maladjustment : Its Causes and Remedies,
M. Ed., Udaipur Uni., 1964

शर्मा, रमेशचन्द्र : The Leisure-time Activities of the High School Students in Udaipur City,
M. Ed., Raj. Uni., 1954

शर्मा, रामकृष्ण : Problem Tendencies of Adolescent,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शर्मा, रामदेव : **तीव्र बुद्धि और निम्न बुद्धि के छात्रों की समायोजन समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि. 1971

शर्मा, लक्ष्मेन्द्र कुमार : **किशोर बालक व बालिकाओं की पठन व श्रवण से संबंधित रुचियों का एक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

शर्मा, वी. एस. : Personal Problems of the Ist Year T. D. C. Science Students,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

शर्मा, सुरेन्द्रकुमार : Case-Studies of Merit Scholarship Holders,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

स्वामी, नथमल : **महाविद्यालय विद्यार्थियों की समायोजन की समस्याएँ,**
एम. एड., राज. वि वि., 1973

सक्सेना, रमेशचन्द्र : An Investigation into the Causes of Truancy in Secondary/Higher Secondary Schools of Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

सांधू, जयकरण : A Study of Some Factors Related to Backwardness in Civics,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

साहनी, वेद : **किशोर छात्राओं का दुश्चिन्ता विषयक अध्ययन–पंजाबी और राजस्थानी छात्राओं का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1973

सिसोदिया, रामवीरसिंह : Socially Accepted and Rejected Children and their Adjustment Problems,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

श्रीवास्तव, वाई. के. : An Investigation into the Reading Interests of High School Students of Sardarshahr and Suggestions for Improving them,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

सुदर्शनकुमार : An Investigation to Explore and Evolve Tools for Educational Guidance,
M. Ed., Raj. Uni., 1958

सुवानिया, मुरलीधर : Creativity Among Science and Arts Students : A Study Based on Xth Class Science and Arts Students,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

सूद, आर. सी. : An Investigation into the Personal Problems Confronted in the School by the High School Students of Bikaner Division,
M. Ed., Raj. Uni., 1961

हड़पावत, कन्हैयालाल : Adjustment Problems of Bhil Students Studying in Secondary and Higher secondary Schools of Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

हरकुट, वसन्ती : **कक्षा १० के विद्यार्थियों की निर्देशन की आवश्यकताओं का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1974

□

व्यावसायिक निर्देशन

□ सत्यप्रकाश शर्मा

प्रारम्भ में निर्देशन का जन्म व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए ही हुआ । नवयुवकों को व्यावसायिक सूचना प्रदान करने तथा उपयुक्त व्यवसाय के चयन में सहायता देने के लिए व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रों की स्थापना हुई । धीरे-धीरे वे शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन केन्द्रों के रूप में बदले । राजस्थान में इस क्षेत्र में प्रथम शिक्षानुसंधान कार्य 1956 में ही हो चुका था ।

शोधकर्ताओं ने 1963 से 1969 तक व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी अध्ययनों पर अधिक ध्यान दिया है । 1963 से पूर्व तथा 1970 से 1974 तक इक्के-दुक्के अध्ययन ही हुए हैं । जिन विषयों पर अध्ययन स्नातकोत्तर स्तर पर हुए हैं उनमें सर्वाधिक संख्या व्यावसायिक अभिरुचि, व्यवसाय-चयन तथा पसन्द की है । व्यवसाय-मान के अध्ययनों की संख्या उसके बाद है । बुद्धि तथा व्यावसायिक अभिरुचि व चयन के साथ सामाजिक-आर्थिक स्तर, व्यक्तित्व, समायोजन व उपलब्धि के सहसम्बन्ध विषयक अध्ययनों की संख्या उसके पश्चात् आती है । अन्य विषयों पर भी एक-एक दो-दो अध्ययन हुए हैं ।

व्यावसायिक अभिरुचि

व्यावसायिक अभिरुचि पर दलजीतसिंह (1956) ने उदयपुर के कक्षा नौ व दस के 300 विद्यार्थियों को लेकर अध्ययन किया । उनका निष्कर्ष था कि सर्वाधिक छात्रों की पसन्द अभियांत्रिकी के लिए थी । उससे कम क्रमशः चिकित्सा, व्यापार तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को पसन्द किया गया । हरिश्चन्द्र (1957) ने दो महाविद्यालयों के 350 स्नातक कक्षा के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि का अध्ययन किया, जिसके अनुसार विद्यार्थियों ने अभियान्त्रिकी को सर्वाधिक पसन्द किया । 72 प्रतिशत विद्यार्थियों ने सूचना तथा निर्देशन सेवा की आवश्यकता को अनुभव किया । नागपाल (1969) ने चुरू जिले के किशोर विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन किया और पाया कि विज्ञान सम्बन्धी व्यावसायिक अवसरों का चयन करने वाले विद्यार्थियों की तत्सम्बन्धी जानकारी सर्वोत्तम थी । यह भी देखा गया कि ये विद्यार्थी उनकी अभिरुचि के अनुसार निर्देशित नहीं थे, और न ही उनको उपयोगी व्यावसायिक निर्देशन दिया गया था । जैन (1963) ने कक्षा नौ के विद्यार्थियों की व्यावसायिक पसन्द के

अध्ययन में पाया कि विद्यार्थी अपने अभिभावकों की तुलना में अधिक ऊँची आकांक्षाएँ रखते हैं। छात्रों के सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा व्यावसायिक पसन्दों में धनात्मक सह-सम्बन्ध (Positive correlation) देखा गया तथा उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों ने, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक अच्छा व्यावसायिक चयन किया। शर्मा (1965) ने पब्लिक स्कूल के 106 विद्यार्थियों तथा आदिवासी विद्यालय के 108 विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि दोनों समूहों के विद्यार्थियों की (एक क्षेत्र में ही) एक-दूसरे से भिन्न अभिरुचियाँ थीं। इस अध्ययन में बुद्धि-लब्धि का व्यावसायिक अभिरुचि पर कोई वास्तविक प्रभाव नहीं देखा गया। महात्मा (1967) ने विभिन्न विद्यालयों के कक्षा 10 के 144 छात्रों व 96 छात्राओं की व्यावसायिक अभिरुचियों का अध्ययन करके देखा कि छात्रों ने सर्वाधिक वरीयता विज्ञान सम्बन्धी क्षेत्र को, तथा सबसे कम समाज-सेवा सम्बन्धी क्षेत्र को दी। लिपिक-व्यवसाय तथा सांख्यिकी-व्यवसाय उपेक्षित रहे। छात्रों व छात्राओं की व्यावसायिक रुचियों में भिन्नता पाई गई, अलग-अलग संकायों के छात्रों की रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न पाई गईं। अग्रवाल (1967) ने कक्षा आठ के 100 विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि की उनके अभिभावकों की आकांक्षाओं से तुलना करके देखा कि कक्षा (VIII) के विद्यार्थियों में व्यावसायिक अभिरुचि प्रकट करने की परिपक्वता नहीं थी। वैसे सर्वाधिक विद्यार्थियों ने अभियांत्रिकी को प्रथम तथा चिकित्सा व्यवसाय को द्वितीय वरीयता दी। न्यूनतम पसन्द के कार्य रहे : दर्जी का काम, मछली पकड़ना व कृषि कार्य। अभिभावकों की उनके बच्चों के बारे में व्यवसाय सम्बन्धी आकांक्षाएँ अभियान्त्रिकी, चिकित्सा, प्रशासन व विक्रय सम्बन्धी व्यवसायों के लिए पाई गईं। कुछ नौकरी-पेशा अभिभावकों ने कृषि तथा शिक्षण कार्य हेतु अपने बच्चों के लिए भावी व्यवसाय की आकांक्षा दर्शाई। माथुर (1968) ने जयपुर के विद्यालयों की कक्षा X की छात्राओं की व्यावसायिक अभिरुचि तथा उनकी भावी आकांक्षाओं के अध्ययन में बताया कि मानविकी वर्ग (Humanities) वालों का संगीत व कला सम्बन्धी व्यवसायों से धनात्मक सहसम्बन्ध था। आक्रामक प्रवृत्ति (aggressiveness) का कला तथा लिपिक कार्य के अतिरिक्त अन्य अभिरुचियों से अनुकूल सहसम्बन्ध देखा गया। विनम्रता (Modesty) का कला, साहित्य, समाज-सेवा व संगीत सम्बन्धी अभिरुचियों से सहसम्बन्ध देखा नया। मेहता (1970) के अनुसार अधिकांश विद्यार्थियों की अभिरुचि, उपलब्धि तथा योग्यता का उनकी पसन्दों से मेल नहीं बैठा। अनेक ऐसे व्यवसाय जो विद्यार्थियों की जानकारी में थे, उनकी ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। दर्जी के कार्य को अच्छे व्यवसाय की श्रेणी में उन्होंने नहीं लिया, यद्यपि कम शिक्षितों के लिए यह कार्य अच्छी आय का व्यवसाय हो सकता हैं। व्यावसायिक निर्देशन का कार्य विद्यालयों में नगण्य पाया गया। कमलेश कुमारी (1973) ने किशोर छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रुचियों के अध्ययन में पाया कि कला वर्ग के छात्र व छात्राओं की रुचियाँ भिन्न थीं। विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा विज्ञान वर्ग के छात्रों की वैज्ञानिक विषयों में अधिक रुचि थी। कला व विज्ञान वर्ग की छात्राओं की अपेक्षा उसी वर्ग के छात्रों की तकनीकी, प्रशासन तथा राष्ट्रीय सुरक्षा

सम्बन्धी व्यवसायों में अधिक रुचि देखी गई। कला वर्ग की छात्राओं की अधिक रुचि ललित कलाओं में पाई गई।

व्यावसायिक अभिरुचि एवं बुद्धि-स्तर

बुद्धि-स्तर तथा व्यावसायिक अभिरुचि में सहसम्बन्ध के अध्ययन भी किए गए हैं। उनमें जिन्दल (1960) ने अजमेर के छात्रों की व्यावसायिक रुचि तथा बुद्धि-स्तर के अध्ययन में पाया कि मानविकी वर्ग, वाणिज्य वर्ग, कृषि वर्ग तथा ललित कला वर्गों के लिए न्यूनतम बुद्धिलब्धि क्रमश: 108, 104, 101 व 97 चाहिए। पसन्द के अनुसार वरीयता का क्रम यह था – पहला विज्ञान, फिर तकनीकी, फिर कृषि, फिर वाणिज्य, उसके बाद ललित कला तथा सबसे अन्त में मानविकी वर्ग। कक्षा VIII के 5 प्रतिशत छात्र अपनी व्यावसायिक अभिरुचि नहीं बता सके। 20 प्रतिशत छात्रों की बुद्धिलब्धि 90 से कम थी। कुछ विद्यार्थियों ने ऐसे वर्ग का चयन किया जिसके लिए उनमें आवश्यक मानसिक प्रखरता नहीं थी। गुप्ता (1966) ने चिकित्सा पाठ्यक्रम के 52 विद्यार्थियों (40 छात्र व 12 छात्राएँ) के इण्टरमीडिएट के प्राप्तांकों और चिकित्सा पाठ्यक्रम में सफलता का सहसम्बन्ध जानने का प्रयत्न किया तथा निष्कर्ष निकाला कि दोनों में अनुकूल सम्बन्ध है। इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि मात्र इण्टरमीडिएट परीक्षा के प्राप्तांक चिकित्सा पाठ्यक्रम की सफलता की भविष्यवाणी करने हेतु ठोस आधार नहीं बनते। उस पर अन्य पक्षों का भी प्रभाव पड़ता है।

व्यावसायिक अभिरुचि एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर

व्यावसायिक निर्देशन में शैक्षिक उपलब्धि एवं बुद्धि का वास्तविक महत्व है, तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर भी प्रभावी हो सकता है। इस संबंध में चौहान (1967) ने जयपुर व बनस्थली की छात्राओं के आर्थिक-सामाजिक स्तर, बुद्धि व शैक्षिक उपलब्धि का सहसम्बन्ध जानने की चेष्टा की। उनके अध्ययन के अनुसार सामाजिक-आर्थिक स्तर का व बुद्धि का व्यावसायिक चयन से वास्तविक (Significant) सहसम्बन्ध नहीं पाया गया और न ही बुद्धि व शैक्षिक उपलब्धि का ही कोई ठोस सम्बन्ध व्यावसायिक पसन्दों के साथ देखा गया। उपाध्याय (1969) के अनुसार छात्राओं का आर्थिक-सामाजिक स्तर उनकी व्यावसायिक अभिरुचि पर प्रभाव नहीं डालता तथा उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर के और निम्न आर्थिक-सामाजिक स्तर के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि मे वास्तविक अन्तर नहीं पाया गया। भटनागर (1971) ने मालूम किया कि सामान्य से उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर वाली लड़कियों की पसन्द चिकित्सा व्यवसाय के लिए थी। यह भी देखा गया कि अभिभावकों के सामाजिक-आर्थिक स्तर तथा विद्यार्थियों की व्यावसायिक पसन्द में अनुकूल सहसम्बन्ध है, तथा अभिभावकों के व्यवसाय का विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि पर प्रभाव पड़ता है।

व्यवसाय-मान

व्यावसायिक अभिरुचि तथा व्यवसाय-मान के विषय में भी कुछ अध्ययन किए गए हैं। ब्रार (1964) ने विद्यालय के तथा महाविद्यालय के विद्यार्थियों के व्यावसायिक

चयन तथा उनके मूल्यों के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि विद्यालय तथा महाविद्यालय के विद्यार्थियों के व्यवसाय-मानों में घनिष्ठ सहसम्बन्ध है। सामाजिक सेवा से सम्बन्धित मान के बारे में दोनों समूहों में सहमति पाई गई। उच्च माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों ने स्वतंत्र व्यावसायिक कार्य को अधिक मान दिया। कालेज विद्यार्थियों का मत इसके विपरीत पाया गया। दोनों समूह व्यावसायिक चयन के मामले में एकमत पाए गए और दोनों समूहों में चिकित्सा व्यावसाय के प्रति लगाव ज्यादा पाया गया। बायती (1966) ने माध्यमिक विद्यालय त्यागने वाले विद्यार्थियों के बारे में पता लगाया कि इनकी व्यावसायिक पसन्द का क्रम इस प्रकार था – चिकित्सा, तकनीकी, वैज्ञानिक क्षेत्र, साहित्य तथा गृह सम्बन्धी कार्य। इस समूह ने मछली पकड़ना, मिल मजदूर, मोची, दन्त चिकित्सक, पुस्तकालयाध्यक्ष, शारीरिक शिक्षाध्यापक व पटवारी के कार्यों को उपयुक्त नहीं माना। छात्रों व छात्राओं की पसन्द भिन्न थी। सक्सेना (1969) ने भी अजमेर जिले के विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि व व्यवसाय-मान के सम्बन्धों के अध्ययन के द्वारा मालूम किया कि ग्रामीण तथा शहरी विद्यार्थियों के व्यावसायिक चयन समाज सेवा से सम्बन्धित थे। दोनों क्षेत्रों की बालिकाओं ने संगीत से सम्बन्धित प्रवृत्तियों में अपनी व्यावसायिक रुचि प्रकट की। विज्ञान वर्ग के छात्रों ने विज्ञान सम्बन्धी प्रवृत्तियों तथा कला वर्ग के छात्रों ने साहित्यिक व संगीत सम्बन्धी व्यवसायों में अपनी रुचि दिखाई। व्यावसायिक मूल्यों के अनुसार शहरी विद्यार्थियों ने सामाजिक कार्यों के प्रति अपना झुकाव दर्शाया जबकि ग्रामीण विद्यार्थियों ने स्वतंत्र व्यवसाय तथा नेतागिरी के प्रति अपनी भावना दिखाई। व्यास (1971) के अनुसार अधिकांश विद्यार्थियों ने जिलाधीश, दण्डनायक, चिकित्सक, प्रोफेसर तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता के कार्यों के प्रति अपनी पसन्द बताई। अध्यापक, कलाकार, साहित्यिक व्यक्ति, रेडियो मेकेनिक तथा टाइपिस्ट के कार्य उन्हें कम पसन्द आए तथा फिटर, बुनकर, बागवान, व खिलौने बेचने वाले के कार्य बिल्कुल पसन्द नहीं किए गए।

व्यावसायिक चयन एवं व्यक्तित्व

अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी विद्यार्थियों के व्यावसायिक चयन एवं वरीयताओं का अध्ययन जैन (1968) ने जोधपुर के विद्यार्थियों पर किया। उनका निष्कर्ष था कि न्यादर्शित छात्रों में से न तो कोई पूर्णतः अन्तर्मुखी था और न ही पूर्णतः बहिर्मुखी। दोनों समूहों के व्यावसायिक चयन या पसन्दों में कोई वास्तविक अन्तर नहीं पाया गया। दुर्गाप्रसाद शर्मा (1969) ने विद्यार्थियों की व्यावसायिक अभिरुचि तथा उनके व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों का अध्ययन करके बताया कि कुण्ठाग्रस्त स्थिति में विद्यार्थी स्वत्व की रक्षा का भाव सर्वाधिक रखते हैं। उन्होंने आक्रामक मानसिक स्थिति मे बाह्य अतिक्रमण का भाव भी दर्शाया। अधिकांश विद्यार्थियों में वैज्ञानिक व साहित्यिक धन्धों के लिए रुचि देखी गई। साहित्यिक रुचि वाले विद्यार्थी कुण्ठाग्रस्त अवस्था में स्वयं का दोष स्वीकार न करके, वाह्य वातावरण को या अन्य व्यक्तियों को उस स्थिति का दोषी बताते हैं, यह भी देखा गया।

विविध

व्यावसायिक अभिरुचि तथा पाठ्येतर प्रवृत्तियों, बुद्धिलब्धि व उपलब्धि के संबंधों को जानने हेतु जो अध्ययन किए गए हैं उनमें, झब्बर सिंह (1963) ने इस क्रम में अजमेर जिले के छात्रों पर अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि विद्यार्थियों की रुचि के व्यावसायिक क्षेत्र समाज सेवा, संगणक कार्य, संगीत, लिपिक कार्य, वैज्ञानिक कार्य, कला, साहित्य तथा यांत्रिकी थे। छात्र तथा छात्राओं के प्रमुख रुचि वाले व्यवसायों में ·52 का सहसम्बन्ध देखा गया परन्तु 40 प्रतिशत से अधिक विद्यार्थियों के वैकल्पिक विषयों का चयन सही आधार पर नहीं किया गया था, यह भी अध्ययन से पता चला। उदयपुर के विद्यार्थियों पर किए गए ऐसे ही एक अध्ययन मे दवे (1968) ने देखा कि 58 प्रतिशत विद्यार्थी अपनी रुचि के व्यावसायिक क्षेत्र को स्पष्टतः व्यक्त करने में समर्थ नहीं थे, फिर भी बहुत से विद्यार्थी गणित तथा विज्ञान के क्षेत्रों में रुचि रखते थे।

खोसला (1966) ने नर्सों के प्रशिक्षण हेतु प्रवेशार्थ चयन-नियमों का अध्ययन करके देखा कि मैट्रिक परीक्षा के प्राप्तांकों तथा व्यावहारिक परीक्षा के प्राप्तांकों में सीधा सहसम्बन्ध न्यून है। इस अध्ययन में डी. ए. टी. परीक्षा तथा व्यावहारिक परीक्षा के प्राप्तांकों में भी न्यून सहसम्बन्ध पाया गया। सामाजिकता तथा सैद्धान्तिक परीक्षा के प्राप्तांकों में भी न्यून सहसम्बन्ध पाया गया।

अध्यापन-व्यवसाय के लिए चयन हेतु प्रेरक तत्त्वों के अध्ययन में मनमोहन कौर (1968) ने देखा कि आकर्षक धन्धों के चयन के लिए प्रेरक तत्त्वों में उच्च आर्थिक-सामाजिक स्तर अधिक प्रभावी नहीं है। परन्तु ज्यों-ज्यों प्रबुद्धता का स्तरोन्नयन होता है अध्यापन-व्यवसाय के प्रति आकर्षण कम होता पाया गया है।

जोशी (1960) ने बीकानेर सम्भाग के शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम से सम्बन्धित कुछ पक्षों का अध्ययन किया जिसके अनुसार विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सुझावों का छात्रों की व्यावसायिक अभिरुचि पर प्रभाव पड़ता है। अध्यापकों के प्रति छात्रों की पसन्द-नापसन्द के अनुसार छात्रों की विद्यालय के प्रति भी अनुकूल या प्रतिकूल अभिवृत्ति बनती है।

आहूजा (1963) ने लिपिक वर्ग की अभिवृत्ति से सम्बन्धित पक्षों का लिपिकों पर अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला कि उनकी बुद्धिलब्धि का औसत 95.86 है। लिपिक का कार्य अपनाने हेतु जो मुख्य कारण उत्तरदायी पाए गए थे वे विपरीत परिस्थिति तथा 'अन्य कार्य न मिलने पर जो मिले उसे स्वीकार करना' थे।

टाक (1965) ने व्यावसायिक सूचना कार्यक्रम का कक्षा VIII के विद्यार्थियों की अभिरुचि तथा चयन पर प्रभाव का प्रायोगिक अध्ययन किया जिसके अनुसार प्रायोगिक समूह के छात्रों ने नियंत्रित समूह के छात्रों की अपेक्षा आरंभ से अन्त तक अपने व्यावसायिक चयन के निर्णय में अधिक परिवर्तन किए। यह भी देखा गया कि प्रायोगिक समूह ने अंतिम चरण में अनेक नये चयन किए तथा पुराने चयन को

छोड़ दिया जबकि नियंत्रित समूह ने पुराने चयनों को नहीं छोड़ा व शायद ही नया चयन किया ।

गाँधी (1969) ने शिक्षक प्रशिक्षण के छात्रों तथा पूर्व आयुर्वेदिक छात्रों की अपने व्यवसाय के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया जिसके अनुसार दोनों समूहों की शैक्षिक उपलब्धि में अन्तर पाया गया । दोनों समूहों की बुद्धिलब्धि में भी उनके आर्थिक-सामाजिक स्तर व व्यक्तित्व की तुलना में कम अन्तर पाया गया ।

रचनात्मक चिन्तन तथा व्यावसायिक अभिरुचि का अध्ययन राजदान (1967) ने मिडिल स्कूलों के 11 से 16 आयुवर्ग के छात्रों पर किया । उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले उनमें बुद्धि का रचनात्मक चिन्तन पर अवास्तविक प्रभाव देखा गया । विद्यालय के प्राप्तांकों तथा रचनात्मक चिंतन में सीधा सहसम्बन्ध भी देखा गया, परन्तु वह मामूली था । अपनी व्यावसायिक रुचि दर्शाते समय इन छात्रों ने शायद ही रचनात्मक चिन्तन किया था । इन छात्रों की व्यावसायिक रुचि तथा रचनात्मक चिन्तन की संप्राप्ति में सीधा सहसम्बन्ध नहीं देखा गया ।

मेठी (1970) ने माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की कार्य-सन्तुष्टि तथा उनकी कार्यकुशलता का अध्ययन किया । उनके अध्ययन का निष्कर्ष था कि अधिकांश अध्यापक संतोष की सीमा से नीचे थे । उनका असंतोष मुख्यत: आर्थिक कारणों से था, यद्यपि सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संतोष पाया गया । कार्यकुशलता अधिकांश अध्यापकों में सामान्य से निम्न स्तर की पाई गई एवं सहायता प्राप्त संस्थाओं के अध्यापकों को राजकीय संस्थाओं के अध्यापकों की अपेक्षा अधिक कार्यकुशल पाया गया, परन्तु राजकीय एवं सहायता प्राप्त संस्थाओं की महिला अध्यापिकाओं की कार्य-कुशलता में कोई अन्तर नहीं पाया गया ।

सर्वजीतकौर (1974) ने दिल्ली में नियोजन के अवसरों का अध्ययन किया तथा अध्ययन से मुख्य निष्कर्ष निकाले कि 1961 से 1971 तक प्रत्याशियों की सर्वाधिक पंजीकरण की प्रवृत्ति शिक्षित व्यवसायहीनता की देखी गई । उसके बाद अकुशल श्रमिकों के पंजीकरण की प्रवृत्ति पाई गई । सबसे कम पंजीकरण अभ्रक तथा खान श्रमिकों का देखा गया । 1961 से 1967 तक पंजीकरण बढ़ोनरी की ओर था तथा 1967 के पश्चात् 1972 तक पंजीकरण का रुख घटने की ओर था ।

संभावनाएँ एवं सुझाव

व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में जो अध्ययन या शोध-कार्य राजस्थान में हुए हैं उनमें विद्यार्थियों की वर्तमान की तथा भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी शोध-कार्य करने के लिए अभी भी अनेक क्षेत्र अछूते पड़े हैं तथा अनेकों ऐसे हैं जिन पर इक्के-दुक्के ही कार्य हुए हैं । भविष्य में शोध-कार्य हेतु विषय का चयन करने से पूर्व यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि ऐसे विषयों का चयन हो जो विद्यार्थियों की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हों

तथा उनकी कठिनाइयों व समस्याओं के समाधान में भी सहायक सिद्ध हों। इसका भी ध्यान रखना आवश्यक है कि जो आवश्यकताएँ समाप्त हो चुकी हों उन पर अध्ययन लाभकारी नहीं होगा। अतः विषय का चयन उनकी आवश्यकता व उपयोगिता को ध्यान में रखकर सावधानी से होना चाहिए।

व्यावसायिक निर्देशन व व्यावसायिक चयन सम्बन्धी अध्ययन तो अनेक हुए हैं, परन्तु किसी भी अध्ययन से यह स्पष्ट नहीं हुआ कि अमुक विद्यालय में व्यावसायिक चयन या अभिरुचि को दिशा देने की भी कोई व्यवस्था है या नहीं। सही चयन तो तब हो सकता है जबकि विद्यालयों में विस्तृत व्यावसायिक सूचनाएँ देने की समुचित योजना व व्यवस्था हो। व्यावसायिक निर्देशन की व्यवस्था की स्थिति जानने के लिए मात्र एक अध्ययन हुआ है जो अपर्याप्त है। इस दिशा में अधिक विस्तृत जानकारी व प्रयत्नों की बड़ी आवश्यकता है। अध्ययनों के जो निष्कर्ष निकाले गए हैं उनमें से कुछ साधारणतया स्पष्ट नहीं हैं; कुछ सांख्यिकी भाषा में बताए गए हैं जिन्हें विशिष्ट व्यक्ति हीं समझ सकते हैं, साधारण व्यक्ति नहीं। अध्ययन के परिणाम ऐसी भाषा में भी व्यक्त किए जाने चाहिए जो साधारण व्यक्ति की समझ से परे न हों। मानव-शक्ति-आयोजन के कार्य को विभिन्न स्तरों पर वरीयता के साथ प्रभावी ढंग से चलाने की आवश्यकता है जिससे कि व्यावसायिक निर्देशन व चयन सही तथा उपयोगी बन सकें।

व्यावसायिक निर्देशन सम्बन्धी जो क्षेत्र या विषय अध्ययनों से अछूते रह गए हैं या जिन पर कार्य न्यून हुआ हैं तथा जिन पर और अधिक अध्ययनों, शोध-कार्यों, सर्वेक्षणों की आवश्यकता है तथा जिनके परिणाम निस्सन्देह उपयोगी होंगे, वे इस प्रकार से होंगे :–

- महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचि और चयन;
- विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रमों की स्थिति तथा प्रभावशीलता;
- व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रमों में अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों, प्राचार्यों की रुचि व क्रियाशीलता;
- व्यावसायिक सूचना केन्द्रों, निर्देशन केन्द्रों, नियोजन कार्यालयों के सर्वेक्षण;
- उच्च स्तरीय, निम्न स्तरीय (प्रभावहीन) व्यावसायिक निर्देशन-सेवाओं का तुलनात्मक अध्ययन;
- शिक्षाधिकारियों में निर्देशन कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता;
- शिक्षा विभाग, राजस्थान द्वारा निर्देशन कार्यक्रमों को प्रभावी बनाने हेतु किए गए प्रयत्नों के अध्ययन/सर्वेक्षण;
- निर्देशन कार्यक्रम की आवश्यकताओं व न्यूनताओं का अध्ययन;

- विभिन्न व्यवसायों व धन्धों के विश्लेषण;
- व्यावसायिक निर्देशन व नियोजन के अवसर;
- व्यावसायिक रुचि, व्यावसायिक चयन व वास्तविक नियोजन की तुलना;
- बाहुल्य वाले तथा न्यूनता वाले रोजगारों के तुलनात्मक अध्ययन ।

संदर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, श्यामस्वरूप : Vocational Interests of the VIII Class Students as Compared with Vocational Aspirations of their Parents,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

आहूजा, ज्ञानचन्द : A Study into the Relationship of some Correlates to Clerical Aptitude of Clerks of Delhi with a view to Improve the Methods of Selection and Guidance of Prospective Entrants,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

उपाध्याय, लक्ष्मी : **कक्षा दस के छात्र एवं छात्राओं के सामाजिक-आर्थिक स्तर का उनकी व्यावसायिक रुचियों से सहसंबंध ज्ञात करना,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

कमलेशकुमारी : **किशोर छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रुचियों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

खोसला, करुणा : A Study of the Selection Criteria for Admission to the Training of Nurses,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

गर्ग, श्रीकृष्ण : A Study of N.C.C. Cadets and their Vocational Preferences,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

गांधी, जौहरीलाल : A Comparative Study of Attitudes of S.T.C. and Pre-Ayurved Students towards the Profession,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

गुप्ता, ज्ञानप्रकाश : Intermediate Marks as the Predictors of Medical Success,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

चारण, हरिदान : **छात्रों की शैक्षणिक एवं व्यावसायिक योजनाएँ: कक्षा नौ का एक सर्वेक्षण,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1968

चौहान, पुष्पलता : An Investigation into the Relationship of Socio-Economic Status, Intelligence and Academic Achievement of Class X Girls with their Vocational Preference,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

जिन्दल, जोगेन्दरपाल : An Investigation into Correlation between Intelligence and Vocational Interest of Delta Class Students of Multipurpose Higher Secondary Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

जैन, कृष्णचन्द्रसिंह : Vocational Choices of Ninth Grade Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

जैन, सज्जनराज : **अन्तर्मुखी व बहिर्मुखी छात्रों के व्यावसायिक चयन एवं प्राथमिकताएँ,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1968

जोशी, रूपलाल : An Investigations into some Related Factors of Vocational And Educational Guidance of Multipurpose Schools of Bikaner Division,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

झब्बरसिंह : A Study of Vocational Interests of XI Class Students of M.P. Hr. Sec. Schools of Ajmer District in Relation to their Vocational and Curricular Choices, I.Q., Achievement, Co-Curricular, Leisure-time Activities and other Related Factors,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

टाक, नुलेमान : Influence of Career Instructional Programme on the Vocational Choices and Attitude of Delta Class Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

दलजीतसिंह : Vocational Interests of High School Boys,
M. Ed., Raj. Uni., 1956

दवे, वासुदेव जी. : Vocational Interests and A-vocational Activities,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

नागपाल, भगतराम : An Investigation into the Vocational Interests of High School Boys of Churu District, Rajasthan and Need for Reorientation of Educational Programme,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

ब्रार, प्रीतमसिंह : Vocational Choices And Values of Adolescents,
M. Ed., Udaipur Uni., 1964

बायती, जमनालाल : An Exploratory Study of Vocational Preference, Job Values and Occupational Choices of Secondary School Leavers,
M. Ed., Raj. Uni., 1966

भटनागर, कमलेश	:	**आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की व्यावसायिक रुचि एवं उनके अभिभावकों के आर्थिक-सामाजिक स्तर के सम्बन्ध का अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1971
मनमोहनकौर	:	A Study of the Motivating Factors for the Selection of Teaching Profession by the Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1968
महात्मा, चन्दनमल	:	An Investigation into the Vocational Interests of Class X Students, M. Ed., Raj. Uni., 1967
माथुर, प्रभाकुमारी	:	An Investigation into the Relationship between the Aspiration and Vocational Interests of the Girls Students of Class X, M. Ed., Raj. Uni., 1968
मेठी, सत्यनारायण	:	**माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की कार्य संतुष्टि एवं दक्षता,** एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1970
मेहता, सुशीला	:	A Study of Vocational Interests of IX Class Boys in the City of Jodhpur, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970
यादव, महावीरसिंह	:	A Study of Intelligence, Vocational Preference and Personal Adjustment of School Children showing High Scholastic Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1962
राकेशकुमार	:	An Investigation into the Superior Achievers in Science of Class IX of Rajasthan and their Vocational Preferences, M. Ed., Raj. Uni., 1965
राजदान, मनोहरनाथ	:	An Investigation into the Creative Thinking and the Vocational Interests of the Delta-Class in Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1967
वर्मा, बंगालीलाल	:	A Study of the Personality Problems, Adjustment Traits and Vocational Interests of Super-Normal School Children, M. Ed., Raj. Uni., 1964
वाजपेयी, कैलाशविहारी	:	A Follow-up Study of Educational and Vocational Placement of Middle School Leavers, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
व्यास, कृष्णगोपाल	:	A Survey of Vocational Selection, Vocational Liking and Work-Values of the Students of Higher Secondary Schools of Bikaner, M. Ed., Raj. Uni., 1971
शर्मा, कृष्णदत्त	:	A Study of the Placement of Higher Secondary Passed Agriculture Students, M. Ed., Raj. Uni., 1969

शर्मा, गणपतिराम : A Comparative Study of Vocational Interests of the Public School Students and Residential School Students,
M. Ed., Raj. Uni., 1965

शर्मा, दुर्गाप्रसाद : **किशोरों में व्यावसायिक रुचियों और उनके व्यक्तित्व तत्वों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

सक्सेना, सरोज : **अजमेर जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों द्वारा संभावित व्यावसायिक मूल्य एवं रुचियों के मध्य संबंध का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1969

सर्वजीतकौर : A Study of the Employment Opportunities in Delhi,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

हरिश्चन्द्र : Vocational Interests of Under-graduates,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

□

शिक्षक-प्रशिक्षण

□ डॉ. मुल्कराज चिलाना
□ प्रकाशचन्द्र द्विवेदी

किसी भी शिक्षा कार्यक्रम के क्रियान्वयन और सम्पादन में शिक्षक की केन्द्रीय भूमिका होने के कारण शिक्षक-प्रशिक्षण का महत्व भी विशेष होता है। इस क्षेत्र में अनुसंधान कार्य के प्रथम दर्शन 1957 में होते हैं। तब से इक्के-दुक्के अध्ययन सन् 1964 तक होते रहे, मगर अकस्मात् ही सन् 1965 में इन अध्ययनों में 6 गुनी वृद्धि हो गई और तब से न्यूनाधिक रूप से निरंतर वृद्धि होते हुए, सन् 1974 में वह सन् 1957 की तुलना में 12 गुनी हो गई। इन अध्ययनों में शिक्षक-प्रशिक्षण के जो आयाम उभरे हैं वे हैं : शिक्षक-प्रशिक्षण का विकास, प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के प्रकार, प्रशिक्षण में प्रवेश-प्रक्रिया, शिक्षण-अभ्यास, प्रबंध और प्रशासन, तुलनात्मक अध्ययन तथा सेवारत प्रशिक्षण।

शिक्षक-प्रशिक्षण का विकास

अम्बिकाप्रसाद शर्मा (1972) ने पीएच. डी. स्तर पर विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का समान्तर अध्ययन करके ज्ञात किया कि शिक्षक-प्रशिक्षण में नामांकन निरन्तर बढ़ रहा था। निजी संस्थाओं की संख्या में क्रमिक वृद्धि होती रही, मगर उनमें साधन सुविधाओं की स्थिति सुदृढ़ नहीं रही थी। संख्यात्मक विकास के साथ यह भी पाया गया कि उस पर विदेशी प्रभाव बहुत ज्यादा था और पाठ्यचर्या में परिवर्तन भी बार-बार होते रहे थे। अपव्यय और अवरोधन प्रायः नहीं था, किन्तु प्रशिक्षणार्थियों की संख्या व्यवसाय की मांग से परे बढ़ने लगी थी। इसी प्रसंग में बोहरा (1971) ने मालूम किया कि प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में दो विद्यालय ही स्वतंत्रता पूर्व काल के थे और शेष नौ बाद में विकसित हुए थे। विकासात्मक धरातल पर अपने पीएच. डी. अध्ययन में जोशी (1973) ने प्रशिक्षण संस्थाओं में अन्य तीन देशों की तुलना में नवाचार का अध्ययन करके मालूम किया कि खुले सत्र (ओपन एयर सेंशन) का प्रयोग केवल एक ही संस्था में हो रहा था, जबकि सामूहिक अभ्यास पाठ (ब्लॉक प्रेक्टिस टीचिंग) का प्रयोग 50% संस्थाओं में था। बसंतकुमार जैन (1971) ने विद्याभवन में खुले सत्र की प्रणाली का मूल्यांकन करके ज्ञात किया कि उसमें कैम्प फायर, मौन काल और स्वशासन की प्रवृत्तियाँ अधिक पसन्द की जाती थीं।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के प्रकार

शिक्षक-प्रशिक्षण के नियमित और अवकाशकालीन पाठ्यक्रम के रूपों पर जो अध्ययन हुए हैं, उनमें मीरा माथुर (1970) के अनुसार शिक्षक अवकाशकालीन

प्रशिक्षण में असुविधा अनुभव करते थे, उन्हें छात्रावासों में अंतेवासी बनाकर रखे जाने में आपत्ति थी, अलग-अलग सत्रों में अलग-अलग प्रशिक्षक पढ़ाएँ, इस पर आपत्ति थी और वे सैद्धान्तिक चर्चा को शिक्षण-व्यवसाय के लिए अनुपयोगी मानते थे। उनमें अध्ययत-आदतों का नया विकास नहीं हो पाया, तथापि वह अवश्य देखा गया कि वे प्रशिक्षार्थी छात्रों और प्रशिक्षकों के साथ अच्छे स्तर के स्नेह सम्बन्ध उपजा लेते थे। सह-शैक्षिक प्रवृत्तियों में उनकी अच्छी रुचि विकसित होती थी और आंतरिक मूल्यांकन को वे पसन्द करते थे। उन्होंने यह स्वीकार किया कि प्रशिक्षण के व्यय का उन्हें समुचित लाभ मिल जाता था। कुमुद शर्मा (1974) ने नियमित और अवकाशकालीन प्रशिक्षार्थियों के तुलनात्मक अध्ययन से यह मालूम किया कि नियमित प्रशिक्षार्थियों में से 85% तक विना किसी पूर्वानुभव के होते थे और उनके परिणाम भी अवकाश-कालीनों की तुलना में निम्नतर होते थे। अवकाशकालीन प्रशिक्षार्थी अधिकतर 8–15 वर्ष के सेवा अनुभव वाले होते थे। यद्यपि उन्हें प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सकारात्मक रुचि और उत्साह नहीं होता था मगर उनके परिणाम अपेक्षाकृत अच्छे रहते थे। वे प्रशिक्षण-काल में आर्थिक और पारिवारिक चिंताओं से ग्रस्त भी रहते थे। लगभग यही तथ्य पारीक (1972) ने प्राथमिक प्रशिक्षणाधीन पत्राचारी प्रशिक्षार्थियों के प्रसंग में ज्ञात किए। अतिरिक्त तथ्य यह विदित हुआ कि संदर्भ सामग्री की उपेक्षा दोनों ही वर्गों में समान थी, मगर सेवारत प्रशिक्षार्थी अपना निर्दिष्ट गृहकार्य अपेक्षाकृत जल्दी और समय पर कर लेते थे। प्राथमिक प्रशिक्षण के सन्दर्भ में शिवकुमार शर्मा (1966) ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि एक वर्षीय पाठ्यचर्या पर्याप्त नहीं थी।

प्रवेश-प्रक्रिया

शिक्षण-व्यवसाय की प्राथमिक आवश्यकताओं की अपेक्षा से प्रवेशार्थी के व्यक्तित्व, भावनात्मक स्थिरता, अकादमिक योग्यता और अनुकूलन की अभिवृत्ति का खास महत्व है। दीक्षित (1965) ने शिक्षक के कर्त्तृत्व का अध्ययन करके बताया है कि उसके कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं : शैक्षिक उद्देश्यों की जानकारी रखना, श्यामपट्ट का कुशल उपयोग, शिक्षण को रुचिकारक बनाना, गृहकार्य निर्दिष्ट करना, अध्ययन-आदतों का विकास करना, उपचारात्मक कार्यक्रम चलाना, सहशैक्षिक प्रवृत्तियाँ आयोजित करना और सौंदर्यवृत्ति जगाना। अग्रवाल (1974) ने मालूम किया कि शिक्षणगत कुशलता पर बुद्धिलब्धि, अनुकूल अभिवृत्ति और सामाजिक मान्यताओं का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक मूल्य/मान्यताओं का शिक्षणगत कुशलताओं पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। प्रवेश-प्रक्रिया में इन मुद्दों पर विचार हो सकता है। उधर चौहान (1971) बताते है कि आयु-स्तर की वृद्धि के साथ शिक्षण-कौशल में धनात्मक वृद्धि देखी गई है। अरोड़ा (1970) ने शिक्षण कौशल के निर्धारकों की खोज करके यह मालूम किया कि बुद्धिलब्धि का शिक्षण कौशल पर कोई सार्थक असर नहीं है यद्यपि ·01 स्तर पर कौशल का यह एक निर्धारक तत्त्व जरूर है। इसकी अपेक्षा अभिव्यक्ति क्षमता अधिक सार्थक घटक है। हल्गे (1973) विज्ञान शिक्षकों के लिए अकादमिक योग्यता, निदर्शन क्षमता, व्यक्तित्व सौष्ठव और प्रश्नगत चतुराई को आवश्यक निर्धारक बताती

हैं। वे यह भी बताती हैं कि लिंग-भेद से शिक्षण कुशलता में अन्तर पाया जाता है, मगर डिग्री-भेद से कोई अन्तर नहीं होता। नवीनतम साहित्य के पढ़ने से और विशद जानकारी रखने से ज्यादा स्तरोन्नयन होता है। दशोत्तर (1972) ने प्रशिक्षार्थियों के आत्म-प्रत्यय और उनकी संप्राप्ति-आकांक्षाओं का सहसम्बन्ध खोज कर पता लगाया कि दोनों में धनात्मक सम्बन्ध था। व्यास (1967) के अनुसार 58% प्रशिक्षार्थी केवल आर्थिक लाभ का लक्ष्य लेकर शिक्षक-प्रशिक्षण में आते हैं और यदि उन्हें बेहतर मौका मिले तो वे इस व्यवसाय का परित्याग भी करने को उद्यत हैं। मेहता (1970) ने विभिन्न संस्थाओं की स्थिति का विश्लेषण करके पता लगाया कि क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय में अपेक्षाकृत उच्चतर अकादमिक संप्राप्ति के प्रशिक्षार्थी आकृष्ट होते हैं, उनमें 53.39% सेवानुभावयुक्त भी थे। राठौड़ (1974) बताती हैं कि नगर क्षेत्र की महिला प्रशिक्षार्थियों में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अधिक सकारात्मक रुझान रहता है। मनमोहनकौर (1968) ने शिक्षण व्यवसाय के उत्प्रेरकों का अध्ययन करके यह मालूम किया कि बौद्धिक उन्नयन के साथ-साथ शिक्षण व्यवस्था के प्रति आकर्षण निरन्तर घटता जाता है। उधर तिवारी (1964) बताते हैं कि प्रशिक्षण में प्रवेश के लिए अकादमिक योग्यता, जीवन चरित के तथ्य, बुद्धि परख और साक्षात्कार को आधार बनाया जाए, तो इधर पंड्या (1973) के अनुसार अकादमिक संप्राप्ति, प्रशिक्षण के अंक और सेवानुभव में परस्पर कोई धनात्मक सहसम्बन्ध नहीं है। इस प्रसंग में वर्मा (1962) ने खुलासा मालूम किया कि शिक्षण योग्यता का सहसम्बन्ध बुद्धिलब्धि, शिक्षण अभिवृत्ति, व्यक्तित्व समायोजन और अकादमिक उपलब्धि के साथ क्रमशः ·64, ·78, ·55 और ·55 है। प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण में नामांकन पर आर्थिक घटकों की असुविधा का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह तथ्य श्रीमाली (1969) ने अपने अध्ययन से निकाला है। जब एस. टी. सी. में नई फीसें लागू की गईं और 25/– मासिक की प्रशिक्षण वृत्ति हटा दी गई तो प्रवेश-संख्या घट गईं थी। इस सम्बन्ध में मेहता (1965) ने मालूम किया था कि प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाओं में जिले के ही प्रशिक्षार्थी 70% तक होते थे। उनमें से 60% ग्रामीण क्षेत्र के होते थे, 90% माध्यमिक/उच्च माध्यमिक कक्षा उत्तीर्ण होते थे और 3% इंटरमीडियेट। सरकारी और निजी संस्थाओं में फीस सम्बन्धी अन्तर व्यापक थे, यह तथ्य शर्मा (1971) ने खोज निकाला। उन्होंने यह भी मालूम किया कि कुछ ही प्रशिक्षार्थियों को मासिक वृत्ति प्राप्त थी।

शिक्षण-अभ्यास

शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रभावकारिता की कसौटी है – शिक्षण-अभ्यास की योजना और उसका क्रियान्वयन। इसी के अन्तर्गत प्रशिक्षार्थी की योग्यताएँ, कुशलताएँ और संभावनाएँ मुखर होती हैं। मौजीराम शर्मा (1974) ने पता लगाया कि शिक्षण-अभ्यास-क्रम के उद्देश्य अत्यन्त महत्वाकांक्षी, परस्पर अतिक्रान्त और जटिल होते थे। न प्राख्याता उन्हें समझ पाते थे, न प्रशिक्षार्थी। प्रशिक्षार्थी शिक्षण-अभ्यास की व्यावहारिक उपयोगिता के बारे में आश्वस्त नहीं थे। धर्मचन्द शर्मा (1967) बताते हैं कि पाठ-निदर्शक और प्राख्याता शिक्षण-अभ्यास में विशेषतः प्रशिक्षित नहीं होते, न ही

शिक्षण अभ्यास-क्रम परिवर्तनशील शिक्षा संबंधों का अनुकरण करता था। वली (1966) का निष्कर्ष था कि शिक्षण-अभ्यास में शिक्षक-प्रशिक्षक के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, उसे मानवीय संबंधों का ज्ञान होना अपेक्षित है। शिक्षण-अभ्यास में प्रधानाध्यापक सहयोग नहीं करते, गृहकार्य अपेक्षित रह जाता था और प्रशिक्षार्थी शैक्षिक प्रयासों की अपेक्षा प्राख्याता के अनुरंजन पर अधिक ध्यान रखते थे – यह तथ्य सरिया (1972) ने उजागर किया। तम्बोली (1966) भी शिक्षण-अभ्यास में सहयोग-समन्वय और नई विधियों के प्रयोग की आवश्यकता अनुभव करते थे। मगर वर्मा (1972) बताती हैं कि शिक्षण-अभ्यास के लिए निर्दिष्ट स्कूलों की समस्याएँ भी प्रखर होती हैं। प्रशिक्षार्थी पाठ्यक्रम को पूरा करने की चिन्ता नहीं करते, उन्हें विषय का पूरा ज्ञान नहीं होता, उनका शिक्षण व्यवस्थित और क्रमबद्ध नहीं होता, वे गृहकार्य निर्दिष्ट नहीं करते, उनकी कक्षाओं में अनुशासन की समस्या थी और वे शिक्षण की अन्तर्वस्तु की अपेक्षा विधियों की नाटकीयता पर ज्यादा समय व्यय करते थे। समाधान यह कि शिक्षण-अभ्यास की योजना स्कूल के सहयोग से बनाई जाए और प्रशिक्षार्थी अतिथि-अध्यापक न रहकर स्कूल में काम करें और पूरे समय तक स्कूल के सभी कार्यक्रमों में भागीदारी करें। दत्त (1967) ने भी लगभग यही समस्याएँ खोज निकालीं। मोदी (1968) के अनुसार भी प्रधानाध्यापक शिक्षण-अभ्यास कार्यक्रम की समय और शक्ति का अपव्यय मानते थे। प्राथमिक प्रशिक्षण में बोलिया (1974) के अनुसार एक-एक अनुदेशक के पास 25 से 30 तक प्रशिक्षार्थी होते थे, यद्यपि वहाँ शिक्षण-अभ्यासों में स्कूलों का सहयोग अच्छा होता था। जनकदुलारीसिंह (1972) बताते हैं कि प्रशिक्षार्थी में आयु की प्रौढ़ता आने पर वह शिक्षण-अभ्यास का लाभ नहीं उठा पाता।

प्रशिक्षार्थियों की त्रुटियों पर भी अध्ययन हुए हैं। पाहुजा (1968) ने मालूम किया कि प्राथमिक प्रशिक्षार्थियों (महिलावर्ग) की लिखावट नितान्त खराब थी। विराम चिह्न, वर्तनी और उच्चारण की गलतियाँ बहुत होती थीं, और हिन्दी पाठ योजनाओं तक में अनुदेशक कोई सुझाव भी नहीं देते थे। गलहोत्रा (1974) बताती हैं कि विज्ञान विषय में शिक्षकों का वाचिक व्यवहार कम होता था, जबकि उधर सामाजिक ज्ञान में शिक्षक छात्रों को बोलने-बतियाने का मौका ही नहीं देते थे। भाषा विषय में छात्र पर्याप्त बोलते थे। भंडारी (1973) ने मालूम किया कि प्रशिक्षार्थी अधिकतर ज्ञानात्मक उद्देश्यों का ही उल्लेख करते थे और भावनात्मक क्षेत्र को एकदम से उपेक्षित छोड़ दिया जाता था। सुंबाली (1972) के अनुसार अनुदेशक/प्राख्याता अपनी टिप्पणियों में सहायक सामग्री के पक्ष को अछूता छोड़ देते थे यद्यपि टिप्पणियों में निर्दिष्ट सुझावों की संख्या पर्याप्त रहती थी। प्रशिक्षार्थी कक्षा में अपना पाठ भुगता देने की चेष्टा में अधिक रहते थे और छात्रों की कमियाँ दूर करने का ध्यान नहीं रखते थे। उधर प्रशिक्षार्थी भी इस बात से दुखी पाए गए कि प्रशिक्षण में उनकी कठिनाइयों पर भी कोई ध्यान नहीं देता। प्रमोदकुमार (1974) ने यह मालूम किया कि विज्ञान विषय के अध्यापकों में अन्यों की अपेक्षा अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक रुझान रहता है।

बग्गा (1970) ने पाया कि प्राथमिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ाने वाले प्रशिक्षार्थियों के सापेक्षिक कार्यभार में कोई संतुलन नहीं होता। छात्र प्रशिक्षार्थियों से क्या अपेक्षाएँ रखते हैं, इस सम्बन्ध में अध्ययन करके दीक्षित (1969) ने मालूम किया कि यद्यपि छात्रों की बुद्धिलब्धि और उनकी अपेक्षाओं में धनात्मक सहसम्बन्ध नहीं था मगर उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर और अपेक्षाओं में – भावनात्मक, व्यक्तित्व सम्बन्धी और सामान्य व्यवहार सम्बन्धी दायरों में क्रमशः ·01, ·01 और ·05 तक सहसम्बन्ध पाया गया। गुप्ता (1968) के अनुसार महिला प्रशिक्षार्थियों के विषय ज्ञान और कक्षा में सामाजिक वातावरण बनाने की उनकी क्षमता के बारे में छात्राओं का मत नकारात्मक पाया गया; मगर उनकी वेशभूषा और व्यक्तित्व की झलकी के बारे में उनका मत सकारात्मक था। उधर विज्ञान प्रशिक्षार्थियों के बारे में नानकचन्द (1974) बताते हैं कि छात्रों की अपेक्षा शिक्षकों में विज्ञान विषय की प्रवृत्ति का संबोध अल्पतर था। उधर एक ओर विज्ञान के छात्रों और अन्य छात्रों में कोई अन्तर नहीं पाया गया, वहाँ दूसरी ओर विज्ञान और विज्ञानेतर शिक्षकों में भी कोई अन्तर नहीं पाया गया। वाजपेयी (1967) ने यह मालूम किया कि प्राथमिक प्रशिक्षार्थी आरंभिक कक्षाएँ पढ़ाने के लिए उत्प्रेरित नहीं किए जाते, वे रचना-शिक्षण और संवाद में रुचि नहीं लेते और एक ही प्रसंग कई-कई प्रशिक्षार्थी क्रमिक रूप से पढ़ाते थे। जबकि राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा ही किए गये एक अन्य अध्ययन (1968) से पता लगा कि अन्य विषयों की अपेक्षा प्राथमिक स्तर के प्रशिक्षण में हिन्दी विषय के पाठों का अधिप्रतिनिधित्व संतोषप्रद था। प्राथमिक प्रशिक्षण में मनोबल की स्थिति दयनीय है, यह तथ्य व्यास (1974) ने यह पता लगाकर उजागर किया कि प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालयों के प्रधानाचार्यों की प्रतिष्ठा अन्य समकक्षों की अपेक्षा कम थी।

प्रबन्ध और प्रशासन

शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की साधन-सम्पन्नता, व्यवस्था और प्रबन्धगत कुशलता का जितना प्रभाव प्रशिक्षार्थियों पर पड़ता है, उतना संभवतः औपचारिक कार्यक्रमों का भी नहीं पड़ता। प्रशिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में रैना (1970) ने मालूम किया कि पुरुष और महिला प्रशिक्षार्थियों के आवश्यकता-माध्य में अन्तर रहता है, वैसे ही विवाहित-अविवाहित के बीच भी और नवयुवा तथा प्रौढ़ों के बीच भी। सक्सेना (1957) ने पता लगाया कि समन्वय-सहयोग के स्तर पर अधिकांश प्रशिक्षार्थी सहयोगी पाए गए, मगर शर्मा (1958) के अनुसार समन्वय-सहयोग की समस्याओं से पुरुष व महिला दोनों वर्ग ग्रस्त और चिंतित रहते थे, यद्यपि स्वास्थ्य की समस्याएँ पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक प्रखर रहती थीं। जब माथुर (1974) ने समन्वय सम्बन्धी अभिनवन कार्यक्रम के प्रभावों का मापन किया तो पाया कि ऐसे कार्यक्रमों का प्रभाव प्रशिक्षण व्यवहार पर ही नहीं पड़ता बल्कि उसका स्थानान्तर पारिवारिक समायोजन में भी होता है। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि बुद्धिलब्धि या सामाजिक-आर्थिक स्थिति का समन्वय में धनात्मक सम्बन्ध नहीं होता। मगर सुधा

जैन (1971) कहती हैं कि सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ प्रशिक्षार्थियों में समस्याएँ पैदा करती हैं और उन समस्याओं का मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तित्व और स्व-सुधार पर असर पड़ता है तथा ये पिछली बातें शिक्षण कुशलता से सकारात्मक भाव से सम्बन्धित हैं।

अग्रवाल (1971) ने व्यक्तित्व-संरचना और सहगामी कार्यों के प्रति रुचियों में सार्थक सहसम्बन्ध नहीं पाया। जबकि पारीक (1971) ने सहज अनुशासन और नेतृत्व में तथा सामाजिक अनुशासन और नेतृत्व में उच्च स्तर का सहसम्बन्ध पाया, मगर नेतृत्व और व्यक्तिगत अनुशासन में कोई सहसम्बंध नहीं पाया। प्रशिक्षार्थियों की चिंताओं के दायरे में व्यास (1969) ने मालूम किया कि निजी संस्थाओं में वे आर्थिक व्यय-भार की अधिकता से जनित होती थीं; तो बूब (1968) ने पता लगाया कि चिंताग्रस्तता तो पुरुष-महिला दोनों वर्गों में व्याप्त थी। मगर, विवाहित महिलाओं में उसकी प्रखरता ज्यादा रहती थी। पूर्वानुभव-विहीन नवयुवाओं में प्रशिक्षण सम्बन्धी चिंताएँ और आशंकाएँ अधिक रहती थीं। निष्कर्ष यह कि प्रशिक्षणकाल में भी निर्देशन की व्यवस्था होनी चाहिए। कन्हैयालाल शर्मा (1967), ने प्राथमिक प्रशिक्षार्थियों को आर्थिक समस्याओं से बुरी तरह ग्रस्त पाया। साथ ही उन्हें आवास और भोजन की व्यवस्था से बहुत असन्तुष्ट भी पाया। चिकित्सा और खेल सुविधाएँ भी उन्हें प्राप्त नहीं थीं।

उधर सोनार (1967) ने अनुदेशकों/प्राख्याताओं के कार्यभार की स्थिति देखकर निष्कर्ष निकाला कि विभिन्न कार्यकर्त्ताओं में असंतुलन की स्थिति थी और कुछ पर कार्य-भार बहुत अधिक था। पारस्परिक संबंध-भावों की खोज करके अम्बिकाप्रसाद शर्मा (1966) ने बताया कि आतंककारी, पक्षपाती और निरंकुश प्रशिक्षकों की बनिस्पत सहानुभूतिशील और उदार प्रशिक्षकों को प्रशिक्षार्थी ज्यादा पसन्द करते थे। अनुभव की प्रौढ़ता और बौद्धिक सम्पन्नता में कंसल (1969) ने घनिष्ट सहसम्बन्ध पाया जिसका आशय यह है कि प्रशिक्षण संस्थाओं में ज्ञानवृद्ध और अनुभवी प्राख्याताओं को रखा जाना चाहिए। लीलाबिहारी (1966) बताते हैं कि प्रशिक्षार्थी प्राख्याताओं में शैक्षिक दक्षता देखना चाहते हैं और प्राख्याता प्रशिक्षार्थियों में अभ्यास-शिक्षण की पुष्ट तैयारी और परीक्षोपयोगी सावधानी देखना चाहते हैं।

मदनलाल शर्मा (1967) ने पता लगाया कि प्रशिक्षार्थियों की व्यावसायिक आकांक्षाएँ तो बहुत ऊँची थीं, मगर उनकी उपलब्धियाँ उतनी ही निचले स्तर की थीं। मित्तल (1966) ने ज्ञात किया कि प्रशिक्षार्थी प्रशिक्षण संस्थाओं से व्यावहारिक प्रशिक्षण कार्यक्रम की अपेक्षा करते थे। उधर, मेहता (1965) ने प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्मिक ढाँचे का विश्लेषण करके बताया कि उनमें से 50% प्रशिक्षित स्नातक थे; प्रवचन आम प्रणाली थी; सहायक सामग्री और शिक्षा उपकरणों की स्थिति दयनीय थी; पाठ्यक्रम की महत्त्वाकांक्षाएँ अकल्पनीय थीं। मगर, अभ्यास-शालाओं पर उन संस्थाओं का कोई नियंत्रण नहीं था। इन संस्थाओं में से 75% के पास अपने भवन थे, मगर पुस्तकालयों की स्थिति नहीं के बराबर थी। अधिकतर कोई अनुदेशक या लिपिक ही पुस्तकालय का भी काम करता था। प्रशिक्षण मौखिक, वाचिक और सैद्धान्तिक व्यापार बनकर उभरता था।

वीरेन्द्र सिंह (1965) ने तुलनात्मक अध्ययन द्वारा मालूम किया कि पंजाब में प्राख्याता लोक सेवा आयोग द्वारा चुने जाते थे, जबकि राजस्थान में समवैतनिक प्रधानाध्यापक ही प्राख्याता बना दिए जाते थे। निजी संस्थाओं में प्रबंध समितियाँ ही चुनाव कर लेती थीं। वेतन स्तर की दृष्टि से राजस्थान पंजाब से आगे था। दोनों राज्यों में शिक्षण-अभ्यास, सिद्धान्त तथा मूल्यांकन प्रणाली में भी अन्तर था।

प्रशिक्षण का प्रभावाकलन

दीक्षित (1965) ने शिक्षक के कार्य को शिक्षण कार्य, सहगामी कार्य, सम्पर्क कार्य, निर्देशन, कक्षा-व्यवस्था, अभिलेख कार्य, और सामुदायिक कार्यों में वर्गीकृत किया। उन्होंने ज्ञात किया कि प्रशिक्षण के उपरान्त भी अध्यापक केवल नित्य नैमित्तिक कार्य ही करते थे। उनमें प्रगतिगामिता नहीं देखी गई। इससे पता चलता है कि प्रशिक्षण-चर्या की अपेक्षाएँ व्यावहारिक धरातल पर स्थित नहीं थीं। जब साध (1965) ने प्रधानाध्यापकों का अपेक्षा-स्तर जानना चाहा तो पता लगा कि वे अपेक्षाएँ मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन और विद्यालय-व्यवस्था से ही सम्बन्धित थीं, शिक्षण-प्रक्रिया को उन्होंने कोई महत्त्व नहीं दिया, जबकि प्रशिक्षण संस्थाओं में सारा बल शिक्षण की विधियों पर था। उधर कपूर (1966) ने पाया कि प्रशिक्षित अध्यापकों में पाठ-योजना, इकाई-योजना और सहायक सामग्री के उपयोग के प्रति सकारात्मक रुझान था, और अप्रशिक्षितों की तुलना में वे अधिक प्रजातांत्रिक भी थे एवं संशोधन कार्य भी करते थे। यही बात अनन्त (1969) ने मालूम की। भीमसिंह (1972) ने पता लगाया कि प्रशिक्षण संस्था के कार्यकर्त्ताओं द्वारा किए गए और स्कूल में प्रधानाध्यापक द्वारा किए गए मूल्यांकन में कोई सहसम्बन्ध नहीं रहता। अमरकौर (1965) ने इसी तथ्य की पुष्टि इस प्रकार के तथ्यों से की है कि प्रशिक्षण संस्थाओं में विधि-प्रविधि आदि में क्रमिकता और दिखावट ही अधिक होती थी। उधर सामर (1974) ने विज्ञान शिक्षकों में कृषि शिक्षकों की अपेक्षा सृजनशीलता का स्तर उच्चतर पाया और गुप्ता (1973) ने मालूम किया कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति का असर शिक्षक के व्यक्तित्व और उसकी शिक्षणगत प्रौढ़ता पर पड़ता है।

सेवारत प्रशिक्षण

शिक्षक-प्रशिक्षण में यह इस दृष्टि से उपयोगी कार्यक्रम है कि इससे सेवारत शिक्षक को गतिशील बने रहने और नवनवोन्मुखी होने में मदद मिलती है। विश्वविजय सिंह (1969) ने इस क्षेत्र में कार्यरत अभिकरणों/संस्थाओं का पता लगाकर बताया कि शिक्षा सेवा-प्रस्तार विभाग के कार्यक्रम सामूहिक गोष्ठियाँ, विज्ञान-मेले, विज्ञान-क्लब, निदर्शन पाठ, प्रस्तार व्याख्यान माला आदि उपायों से यह लक्ष्य साधा जा रहा था। इस क्षेत्र में साधन, सुविधाओं और विशेषज्ञ व्यक्तियों की नितान्त कमी थी, अनुवर्तन की प्रणाली नहीं थी और वास्तविक सुरुचि का अभाव था। माथुर (1966) ने प्रस्तार विभागों से शिक्षकों द्वारा की गई अपेक्षाओं का पता लगाया तो यह तथ्य उभरा कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ स्वसुधार के लिए अधिक उत्सुक थीं। मगर पुरुष शिक्षक

ऐसे कार्यक्रमों के प्रति उदासीन ही नहीं, विरुद्ध भाव भी रखते थे। विजयवर्गीय (1966) ने प्राथमिक प्रस्तार विभागों में वित्तीय कमी देखी तो भटनागर (1967) ने अनुवर्तन में प्रधानाध्यापकों की भूमिका का अध्ययन करके मालूम किया कि 90 प्रतिशत स्थिति में वे परिवीक्षण और अनुवर्तन में अक्षम रहे। वाबले (1974) ने ग्रीष्मकालीन हिन्दी शिविरों के अध्ययन में पाया कि वहाँ सर्वथा अनुभवविहीन और विषयेतर शिक्षक भेजे गए थे। डोगरा (1960) ने पता लगाया कि सेवारत प्रशिक्षण के प्रति शिक्षकों का सामान्य झुकाव तो नहीं था, किन्तु जिनमें अपने व्यवसाय के प्रति सकारात्मक रुझान था वे इन कार्यक्रमों में अपूर्व उत्साह रखते थे। दुर्गाप्रसाद माथुर (1970) ने शिक्षकों में सेवारत प्रशिक्षण के प्रति आक्रोश पाया, मगर विचार-विमर्श के बाद वे इसकी उपयोगिता स्वीकार भी कर लेते थे, ऐसा विदित हुआ। उनकी कठिनाइयों में आर्थिक निवेश, अवकाश की क्षति और प्रशिक्षणकाल में मुक्त विचरण की क्षति के कष्ट प्रमुखतया उभरे। बेदी (1960) ने मालूम किया कि 80% अध्यापक केवल प्रशासनिक दबाव तथा अनिवार्यता के दबाव से इन कार्यक्रमों में भाग लेते थे। काबरा (1969) ने सेवारत प्रशिक्षण का तात्कालिक लाभ पुरुष व महिला दोनों पर समान रूप से पाया, मगर वर्ष भर के समय में भूलने की गति भी उतनी ही तीव्र पाई। जबकि नटवर (1970) बताते हैं कि सेवारत अभिनवन पाठ्यक्रमों से शिक्षकों के विषय-ज्ञान और उनकी व्यवसाय दक्षता में अभिवृद्धि हो रही थी।

संभावनाएँ और सुझाव

इन अध्ययनों के प्रवृत्ति-निरूपण से यह बात उभरकर सामने आती है कि इस क्षेत्र में कम से कम इतनी तो उत्साहप्रद बात निकली है कि प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति आस्था का अभाव नहीं है। इतना अवश्य है कि प्रशिक्षण का जितना सकारात्मक प्रभाव शिक्षण पद्धतियों और कक्षा-व्यवस्था पर है उतना विषय-ज्ञान और गतिशीलता पर नहीं। उधर या तो स्कूलों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति निष्ठा नहीं बनी या फिर दोनों स्तरों पर तालमेल की कमी रही है। अत्यन्त आवश्यकता तो यह है कि स्कूल और प्रशिक्षण संस्था को परस्पर निकट लाने के उपायों पर अनुसंधान हों। सेवारत प्रशिक्षण की राजस्थान में जो प्रवर्तनकारी भूमिका रही है, वह आश्वस्तिकारक तो है, मगर उससे पूर्व-प्रशिक्षण को स्कूली व्यवहार में ढालने-गालने में मदद नहीं मिलती। पूर्व-प्रशिक्षण में जो कमियाँ सामने आई हैं, यथा – सिद्धान्त विषयों का व्यावहारिक पृष्ठभूमि से अलगाव, सहगामी प्रवृत्तियों की उपेक्षा, स्वयं प्रशिक्षण संस्थान में विधिगत पारम्परिकता – इन सबके निराकरण की आवश्यकता को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यह विस्मयकारक ही है कि प्रशिक्षण संस्थाओं में ये सब सर्वेक्षणात्मक अनुसंधान तो हुए है, मगर कहीं भी कोई प्रायोगिक प्रायोजना को लेकर किसी नवाचार को प्रतिपादित करने की चेष्टा नहीं हुई। इस तथ्य से प्रशिक्षण और अनुसंधानों की प्रथापालन-प्रवृत्ति का आभास होता है। अधिकतर अनुसंधानों में प्रश्नावली, मतावली द्वारा ही तथ्य संकलन का सहारा लिया गया है। शिक्षण-अभ्यास, प्रशिक्षण संस्थाओं की कार्यावली, व्यवहार साँचों और कार्मिक ढाँचों का कार्यकारण भावी या परिणाम भावी अध्ययन

दिखाई नहीं देता। प्रशिक्षण-चर्या के मानक स्वरूप को खोज निकालने की चेष्टा भी कहीं नहीं हैं और प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम की वास्तविक अन्तर्वस्तु की खोज का प्रयत्न भी नहीं है। शिक्षण-अभ्यास के सोफियानेपन की बातें तो उभरी हैं, मगर स्कूलों और प्रशिक्षण संस्थाओं के बीच सहयोग-समन्वय की रूपरेखा उभारने की चेष्टा किसी ने नहीं की। शिक्षकों की अभिवृत्ति, कठिनाइयाँ, उनकी अवस्था के तथ्य तो खोजे गए जो उनमें सहजता, निष्ठा और आस्था पैदा करें।

वस्तुतः शिक्षक-प्रशिक्षण बहुत व्यापक क्षेत्र हैं और इसमें प्रतिकारक घटकों की संख्या और सम्बन्ध भाव भी अनेक होते हैं। अनुसंधानों का स्वरूप यदि प्रयोजना-लक्ष्यी हो और वह व्यावहारिक धरातल पर हो तो (जैसा कि एक अध्ययन में सामाजिक समन्वय के क्षेत्र में व्यक्त हुआ है) उससे प्रशिक्षण चर्या को समुन्नति की दिशा अवश्य मिल सकेगी।

संदर्भांकित अनुसंधान

अग्रवाल, आभा : **शिक्षक कुशलता से सम्बन्धित कुछ कारकों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1974

अग्रवाल, सुधा : **छात्राध्यापकों के व्यक्तित्व के कुछ पक्षों से संबंध रखते हुए उनकी पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं में रुचियों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1971

अनन्त, गिरिराज शर्मा : An Investigation into the Impact of B.S.T.C. Training Programme on the Trained Teachers,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

अमरकौर : The Basic S.T.C. Programme and the Needs of our Primary Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

अरोड़ा, लक्ष्मी : An Investigation into the Determinants of Teaching Skill,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

कंसल, गायत्री : An Investigation into the Factors Affecting the Attitudes of Pupil-teachers towards Students and the School Work,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

कपूर, अनूपसिंह : An Investigation into the Impact of Teacher Education Programme on the Teaching Practices of Trained Teachers,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

काबरा, गंगाप्रसाद : A Study into the Effectiveness of Refresher Training Centres with respect to Teachers Attainments and their Attitudes towards the Programme (Refresher Training Centres of Goner and Kishangarh),
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

गलहोत्रा, उषा : **बी. एड. की छात्राध्यापिकाओं के कक्षा-शिक्षण में शाब्दिक व्यवहार का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1974

गुप्ता, पुष्पादेवी : A Study of Effects of Secondary School Teachers' Personality Maturity on their Adjustment,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

गुप्ता, वीना रानी : The Study of the Attitudes of the High School Girl Students towards the Female Trainees of the B. Ed. College,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

गौड़, रवीन्द्रनाथ : **बी. एड. सैद्धान्तिक शिक्षण के उद्देश्य एवं उनकी प्राप्ति का अन्वेषण,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1974

चारणसेवकसिंह : Relevance and Prognostic Value of B. Ed. Examination as an Indicator of Performance in Actual Practice in Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

चौहान, लक्ष्मणसिंह : **माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनकी व्यावसायिक कुशलता,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1971

जनकदुलारीसिंह : An Investigation into the Supervision of Selected School Subjects in Practice Teaching,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

जैन, बसंतकुमार : Evaluation of Open-Air Session in Vidya Bhawan,
M. Ed., Udaipur Uni., 1971

जैन, सुधा : **अध्यापक एवं अध्यापिकाओं के क्वालिटी प्वाइंट, शिक्षण अनुभव व सामाजिक-आर्थिक स्तर पर उनकी समस्याओं का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1971

जोशी, दिनेशचन्द्र : A Study of Innovations and Changes in Teachers' Colleges,
Ph. D. (Edu.), Udaipur Uni., 1973

डोगरा, चमनलाल : An Investigation into the Attitudes of Teachers towards In-service Training,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

तम्बोली, कन्हैयालाल : A Study of the Block Practice Teaching Programme of a Teachers' College,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

तिवारी, वी. डी. : Selection Criteria for Admission to the B.Ed. Course,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

दत्त, तरसेमलाल : An Investigation into the Qualities of a Teacher,
M. Ed , Udaipur Uni., 1966

दत्त, विश्वमोहन : An Investigation into the Problems of Practice Teaching Experienced by the Student Teachers of a Teachers' College of Udaipur University,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

दशोत्तर, अलका : **छात्राध्यापकों की स्वधारणा, आकांक्षा-स्तर एवं उपलब्धि में सहसम्बन्ध का अध्ययन,**
एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1972

दीक्षित, आशा : A Study of Pupils' Expectations from Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

दीक्षित, उपेन्द्रनाथ : A Study of the Job of a Teacher,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

नटवर, नन्दगोपाल : **राजस्थान के अभिनवन प्रशिक्षण तथा उसके अनुवर्ती कार्यक्रम का प्राथमिक शालाओं पर प्रभाव : एक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

नानकचन्द : A Comparative Study of Fair Groups Understanding the Nature of Science,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

पंड्या, निर्मला : A Study of Factors Affecting Theory and Practice Results of B. Ed. Examination,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

प्रमोदकुमार : A Comparative Study of Attitude towards Teaching of Science and Non-Science Student Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

पारीक, मंजु : **छात्राध्यापकों के व्यक्तिगत पारस्परिक मूल्यों के संदर्भ में अनुशासन के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1971

पारीक, श्यामसुन्दर : **राजस्थान में प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु विद्यालयी एवं पत्राचार पाठ्यचर्या का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1972

पाहुजा, कौशल्या : Diagnosis of Language Errors of Student Teachers in Training Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

बंगा, शकुन्तला : Relevance of Aptitude and Intelligence with Teaching Success at the B.S.T.C. Level,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

बग्गा, हरजीत : **छात्राध्यापकों की अभिरुचियों एवं सामान्य तथा अभ्यास सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1970

बूब, पुरुषोत्तमदास : An Investigation into the Prevalence of Anxiety in Student Teachers of Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1968

बेदी, रणदीपसिंह : Evaluation of In-Service Teacher Training Programmes, M. Ed., Raj. Uni., 1960

बोनिया, पुष्पा : **उदयपुर के तीन बुनियादी शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रायोगिक कार्यक्रम के संगठन का अध्ययन,** एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1974

बोहरा, डी. आर. : Teacher Education at Primary Level in Rajasthan, SIE., Udaipur, 1971

भटनागर, गणपतसिंह : The Role of the Supervisory Staff in the Follow-up Programmes of In-Service Teacher Education, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

भंडारी, पुष्पलता : A Critical Study of Statements of Objectives of Science Lessons, M. Ed., Udaipur Uni., 1973

भीमसिंह : **अध्यापकों के प्रशिक्षणकालीन एवं सेवाकालीन सफलताओं के मापन में सह-सम्बन्ध,** एम. एड., राज. वि.वि., 1972

मनमोहन कौर : A Study of the Motivating Factors for the Selection of Teaching Profession by the Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1968

माथुर, दुर्गाप्रसाद : A Study of the Attitudes of Secondary School Teachers towards the In-Service Training Programmes through Specialised Agencies, M. Ed., Raj. Uni., 1970

माथुर, नीना : The Effect of Adjustment Orientation Programme on the Adjustment Behaviour of B.Ed. Students, M. Ed., Raj. Uni., 1974

माथुर, मीरा : An Investigation into the Reactions of Vacation Course Students towards their B. Ed. Programme, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

माथुर, सज्जनराम : A Study of the Expectations of the Secondary School Teachers of Udaipur Area from the Programmes of the Extension Services Department, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

मान, स्वीन्दरसिंह : Relationship between External Examination Marks and Internal Assessment of Junior Basic Student Teachers, M. Ed., Raj Uni., 1964

माहेश्वरी, श्यामबाबू : Problems of Trained Teachers in Service and their bearing on Teacher Education Programme,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

मित्तल, बृजकिशोर : A Study of the Expectations of Secondary School Teachers from the Teachers 'College Programmes,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

मेहता, बल्लभसिंह : **राजस्थान के शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों की शैक्षिक पृष्ठभूमि : एक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1970

मेहता, बी. एस. : Status Study of Teacher Training Institutions at Primary level,
SIE., Udaipur, 1965

मेहरोत्रा, उर्मिला : **छात्राध्यापकों के अन्धविश्वास एवं उनके कारण व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1973

मोदी, कामेश्वरनाथ : A Study of Some Correlates of Effective Practice Teaching in Teachers' Training,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

रमीन्दर कौर : A Study of the Attitudes of Science Teachers towards Science and Scientists,
M. Ed., Raj. Uni., 1973

राज्य शिक्षा संस्थान : **शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय, गोवर्धन विलास, उदयपुर की वार्षिक परीक्षा, सन् 1966 के व्यावहारिक पाठों (हिन्दी) का अध्ययन,** 1968

राठौर, रजनी : **शिक्षण व्यवसाय के प्रति शिक्षा-स्नातक छात्राओं की अभिवृत्ति,**
एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1974

राबर्ट्स, केरोलिन : History and Problems of Teachers' Training in India,
M. Ed., Raj. Uni., 1954

रैना, विमलाकुमारी : The Need Structure of Student-Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1970

लीलाविहारी : Mutual Expectations of Pupil-Teachers and Teacher Educators in Training Colleges,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

वर्मा, जयश्री : **अध्यापन-अभ्यास के समय सम्बद्ध विद्यालयों के कार्य एवं समस्याएँ,**
एम. एड., राज. वि.वि., 1972

वर्मा, मातूराम : A Study into the Relationship of Some Correlates of Teaching Ability of Student-Teachers in J. B. T. Schools with a view to Improve the Methods of Selection and Guidance of Prospective Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

वली, उषासुन्दरी	:	Supervision and Evaluation of Practice Teaching Programme in a Teachers' College : A Case study, M. Ed., Udaipur Uni., 1966
वाजपेयी, अवधविहारी	:	**शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय, मसूदा (अजमेर) की व्यावहारिक परीक्षा 1966 के हिन्दी पाठों का अध्ययन,** राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1967
वाबले, कुमुदिनी	:	**ग्रीष्मकालीन हिन्दी प्रशिक्षण शिविर का अध्यापकों की व्यावसायिक क्षमता पर प्रभाव,** एम. एड., उदयपुर वि.वि., 1974
व्यास, भैरवलाल	:	An Investigation into the Qualities of Student Teachers of Teachers' Colleges of Udaipur University, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
व्यास, शशिशेखर	:	**राजस्थान में शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों की कार्यक्षमता,** राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर, 1974
व्यास, श्यामसुन्दर	:	How B. Ed. Students Meet Their Expenditure, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
विजयवर्गीय, डी. पी.	:	An Investigation into the Programmes of the Extension Services Centres for Primary School Teachers in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1966
विश्वविजयसिंह	:	Contribution of Various Agencies to the In-Service Programme of Teacher Education in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
वीरेन्द्रसिंह	:	A Comparative Study of the Organisation of Secondary Teachers Training Colleges in Rajasthan and Punjab, M. Ed., Udaipur Uni., 1965
शर्मा, अम्बिकाप्रसाद	:	Human Relationship and Pupil Performance: A Study of Teacher-pupil Relationship and its Impact on Pupils' Performance, M. Ed., Udaipur Uni., 1966
शर्मा, अम्बिकाप्रसाद	:	Development of Professional Education in Rajasthan, Ph. D. (Edu.), Udaipur Uni., 1972
शर्मा, आर. के.	:	Guidance Needs of Student Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1958
शर्मा, उषारानी	:	**उदयपुर के शिक्षक महाविद्यालय में भाषाध्यापन का निर्देशन एवं परिवीक्षण,** एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1972
शर्मा, कन्हैयालाल	:	A Study of Adjustment Difficulties of Student Teachers in S.T.C. Schools, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

शर्मा, कुमुद : **राजस्थान में माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु विद्यालयी एवं ग्रीष्मकालीन पाठ्यचर्या का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974

शर्मा, धर्मचन्द : A Study of the Pattern of Supervision and Evaluation of Practice Teaching in a B.S.T.C. School,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

शर्मा, बजरंगलाल : An Investigation into Creative Teaching in Practice Teaching,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

शर्मा, मदनलाल : An Investigation into the Achievement and Attitudes of S.T.C. Student-Teachers towards the Profession,
M. Ed., Raj. Uni., 1967

शर्मा, मौजीराम : An Investigation into the Objectives of Practice Teaching and their Realization,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

शर्मा, वी. एस. : A Study of the Economic Status of the Trainees in Elementary Teacher Training Institutions of Rajasthan,
SIE., Udaipur, 1971

शर्मा, शिवकुमार : 10 Case Studies of Elementary Training Institutions in the State,
SIE., Udaipur, 1966

श्रीमाली, भँवरलाल : **राजस्थान के शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालयों की प्रवेश सम्बन्धी समास्याएँ : एक अध्ययन,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1969

सक्सेना, रमेशप्रकाश : A Comparative Study of Achievement of Student Teachers and Delta Class Students in Basic Subjects,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

सक्सेना, गोपीनाथ : Adjustment of Pupil Teachers at Vidya Bhawan Teachers' College, Udaipur
M. Ed., Raj. Uni., 1957

सरिया, गणपत : **विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर द्वारा संचालित ब्लाक अध्यापन-अभ्यास का मूल्यांकन,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1972

साध, पी. सी. : Expectations of Headmasters of Secondary Schools from T. T. College Programmes,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

सामर, महेन्द्रसिंह : A Comparative Study of the Creative Talent of Science and Non-Science Student Teachers,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

सिंघल, सुषमा : **संकाय, श्रेणी, आयु व अध्यापन अनुभव का बी. एड. परीक्षा में कर्तृत्व पर प्रभाव,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1973

सीताराम	:	An Investigation into Some Factors of Teachers Training and its Relationship with Other Variables, M. Ed., Raj. Uni., 1966
सुखवाल, कैलाशदेवी	:	**अध्यापिकाओं द्वारा शिक्षण व्यवसाय के चयन के कारण,** एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1971
सुम्बाली, किरण	:	A Study of the Supervisory Remarks in Science Teaching, M. Ed., Udaipur Uni., 1972
सोनार, ऋद्धिकरण	:	A Study of Work Load on the Staff of Teachers' Training Schools in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
हल्गे, शिर्ले अन्ना	:	A Study of the Characteristics of Science Teachers: Implications for Teacher Education, M. Ed., Raj. Uni., 1973

□

शिक्षा-प्रशासन

□ हरिश्चन्द्र मित्तल
□ सूरजनारायण राव

शिक्षा-प्रशासन अपनी महत्वपूर्ण भूमिका के कारण अध्ययन एवं शोध का एक रोचक विषय रहा है। इस विषय के विभिन्न आयामों को लेकर शोध-अध्ययन किए जाने का एक कारण यह रहा है कि एम. एड. स्तर पर इसका वैकल्पिक विषयों में एक स्थान रहा है। विद्यालय-व्यवस्था के पक्ष के अलावा भी शिक्षा-प्रशासन के क्षेत्र में हुए अब तक के शोध कार्यों को जिन वर्गों में बाँटा जा सकता है, वे हैं : शिक्षा-प्रशासन में सत्ता एवं अधिकार, शिक्षा-प्रशासन में प्रबन्धगत विकास एवं वर्तमान स्थिति, शिक्षा-प्रशासकों एवं शिक्षकों के बीच संबंध एवं समस्याएँ, शिक्षा-प्रशासन में सुधार के प्रयत्न एवं नवाचार, शिक्षा-प्रशासन एवं परिवीक्षण तथा शिक्षा-प्रशासन एवं वित्त।

शिक्षा-प्रशासन में सत्ता एवं अधिकार

संवैधानिक दृष्टि से शिक्षा राज्य के अधिकार क्षेत्र में आती है, किन्तु केन्द्र द्वारा सीधे अथवा अभिकरणों के माध्यम से परोक्ष नियंत्रण रखने के औचित्य के प्रश्न को लेकर जोशी (1959) ने ज्ञात किया कि केन्द्र, राज्यों की सहमति से, शिक्षा पर नियंत्रण कर रहा था। उसके अनेक अभिकरण, यथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकर मंडल आदि केन्द्र के इस नियंत्रण कार्य में सहायक हो रहे थे। धर्मपालसिंह (1959) ने अभिलेखों के अध्ययन तथा मतावलियों आदि से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला कि केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय समुदायों का शिक्षा में संभागीत्व होना चाहिए। रामदत्त शर्मा (1962) ने शिक्षा-प्रशासन के ढाँचे को अंग्रेजी व्यवस्था की विरासत के रूप में देखा तथा पाया कि कुशलता के नाम पर शिक्षा में नियंत्रण बढ़ा हुआ था। उन्होंने यह भी मालूम किया कि शिक्षा दोहरे प्रशासन से भी ग्रस्त थी। स्वतंत्रता पश्चात् के शिक्षा-प्रशासन का विकासात्मक अध्ययन करके जगदीशनारायण (1958) ने मालूम किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय शिक्षा पर सरकार का अधिकार मामूली था, किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् बहुत से राज्यों में सरकारी शिक्षा संस्थाओं की संख्या बढ़ गई तथा उनकी संख्या 6.6% से बढ़कर 23.4% हो गई। राजस्थान के सन्दर्भ में चारण (1953) ने पता लगाया था कि शिक्षा में निजी संस्थाओं की महत्व-पूर्ण भूमिका थी। एक तिहाई हाई स्कूल निजी संस्थाएँ चला रही थीं। हाई स्कूल परीक्षा में बैठे 20% विद्यार्थी इन निजी संस्थाओं के थे। निजी संस्थाओं में अध्यापक-

छात्र अनुपात 1:20 था, जबकि सरकारी विद्यालयों में 1:17.5 था। किन्तु निजी संथाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का परीक्षा-परिणाम सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में गुणात्मक तथा संख्यात्मक दृष्टि से उत्तम रहा। परन्तु 1968 में जगदीश प्रसाद बर्मा ने पाया कि जहाँ भारत में 32.2% विद्यालय निजी संस्थाओं द्वारा चलाए जाते थे, राजस्थान में निजी संस्थाओं का प्रतिशत 2.9% था। 1974 में मुरलीमोहन शर्मा ने पाया कि उदयपुर शहर की 62% शिक्षासंस्थाएँ गैर सरकारी थीं। अध्यापक-छात्र अनुपात 1:35 था, सरकारी स्कूलों की तुलना में साधन सुविधाएँ इनमें अच्छी थीं।

राजस्थान में 1959 में प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा-प्रशासन पंचायत राज व्यवस्था को सौंपा गया। 1963 में नायक शिक्षा समिति ने विकेन्द्रीकरण के इस नवीन प्रयोग के सन्दर्भ में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का जायजा लिया था। इस आयाम ने शिक्षानुसंधाताओं का भी ध्यान आकर्षित किया। मेहता (1962), भामू (1965), द्विवेदी (1966), कौशिक (1969) तथा देवल (1973) ने इसके विभिन्न पक्षों को लेकर अध्ययन किए। मेहता ने राज्य एवं पंचायत समितियों के बीच अच्छे संबंधों के अभाव की स्थिति पाई तथा मालूम किया कि मानवीय संबंधों की, वित्तीय तथा संगठनात्मक समस्याएँ इससे बढ़ीं। भामू ने शिक्षा प्रसार अधिकारियों में द्वंद्वात्मक स्थिति देखी, तथा प्रशासन के विभिन्न स्तरों के बीच मधुर संबंधों का अभाव पाया। द्विवेदी ने अध्यापकों का हौसला गिरा हुआ पाया तथा परिवीक्षण व्यवस्था में ह्रास के लक्षण देखे, किन्तु यह भी पाया कि अध्यापकों की उपस्थिति में बढ़ोतरी हुई, उन्हें वेतन समय पर मिलने लगा था तथा ग्रामीण लोगों ने शिक्षा के महत्व को अधिक समझना शुरू कर दिया था। वे शिक्षा में अधिक रुचि लेने लगे थे। कौशिक के अनुसार पंचायत समिति की शिक्षा समिति में 78% सदस्य उच्च प्राथमिक शिक्षा स्तर तक शिक्षित थे, समिति की बैठकें कोरम पूरा न होने के कारण प्रायः स्थगित हो जाती थीं। देवल के अनुसार पंचायत समिति प्रशासन के अन्तर्गत सेवारत अध्यापक सरकारी स्कूलों में जाना ज्यादा पसंद करते थे। स्कूलों में पंचों तथा नेताओं का वर्चस्व बढ़ गया था। अध्यापकों को शिक्षेतर कार्य करने को बाध्य होना पड़ता था। बी. आर. जोशी (1967) ने एक पंचायत समिति की स्कूलों पर विकेन्द्रीकरण के प्रभाव का अध्ययन करने पर पाया कि अध्यापकों को सरकारी अध्यापकों के समान ही सुविधाएँ प्राप्त थीं, परिवीक्षकगण सक्षम नहीं थे कि शिक्षकों का मार्गदर्शन कर सकें। अध्यापकों के चयन में राजनैतिक प्रभाव काम करता था, 93% अध्यापक सरकारी सेवा में जाना चाहते थे। भटनागर (1967) ने बड़गाँव पंचायत समिति के अन्तर्गत चल रहे प्राथमिक विद्यालयों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर उन्हीं तथ्यों की पुष्टि की।

प्रबंधगत विकास एवं वर्तमान स्थिति

शिक्षा में निजी संस्थाओं की भूमिका के संदर्भ में पांडे (1953) ने विद्याभवन बेसिक स्कूल का तथा मूँदड़ा (1970) ने विद्याभवन सोसायटी का विकासात्मक अध्ययन व उनकी उल्लेखनीय प्रवृत्तियों तथा योगदान की समीक्षा की। पांडे ने मालूम

किया कि विद्यालय ने वर्धा-शिक्षा-योजना को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल कर सफलतापूर्वक लागू किया था।

जानकीलाल व्यास (1967) ने भारत में केन्द्रीय विद्यालयों के उद्देश्य, कार्य-प्रणाली तथा संगठन का अध्ययन करके मालूम किया कि इनका उद्देश्य केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था तथा देश-भर में भाषागत अन्तर के कारण होने वाली कठिनाइयों की कम करना था। इन विद्यालयों का पाठ्यक्रम दिल्ली शिक्षा-बोर्ड द्वारा तैयार किया जाता था। इन विद्यालयों का वित्तीय भार केन्दीय सरकार वहन करती थी। (उल्लेखनीय है कि अब केन्द्रीय विद्यालय संगठन एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में विकसित हो गया है।)

मोहनप्रकाश शर्मा (1972) ने भारत के माध्यमिक शिक्षा बोर्डों का अध्ययन करके मालूम किया कि उनके कार्यकलाप तथा संगठन के आधार पर ये दो वर्गों में बाँटे जा सकते थे। उनकी प्रवृत्तियों का संचालन एवं नीतियों का निर्धारण समितियों के माध्यम से होता था, किन्तु समितियों की संख्या तथा उनमें सदस्यों की संख्या में सर्वत्र एकरूपता नहीं थी। परीक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त बोर्ड अन्य शैक्षणिक कार्य, यथा-विद्यालयों को मान्यता प्रदान करना, संगोष्ठियाँ/कार्य गोष्ठियाँ आयोजिन करना, अध्यापक-कल्याण के कार्य, व्यावसायिक उन्नयन के कार्य आदि करते थे। गर्ग (1968) ने राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा क्रियान्वित सुधारों में परीक्षा-सुधार, व्यापक आन्तरिक मूल्यांकन योजना, सुनियोजित परिवीक्षण, उद्देश्यनिष्ठ शिक्षण तथा मूल्यांकन को लेकर अभिनवन प्रशिक्षण कार्यक्रमों को उल्लेखनीय बताया।

प्रशासनिक संबंध एवं समस्याएँ

अध्यापकों के व्यावसायिक विकास एवं कार्य-सन्तुष्टि से संबंधित समस्याओं, उनकी मूल्य प्रणाली (Value System) तथा उनकी अन्य अनुभूत समस्याओं को केन्द्र-बिन्दु बनाकर शोध कार्य किए गए। सांधू (1960) ने पाया कि लगभग तीन-चौथाई अध्यापक संशोधन कार्य के भार, अभिभावकों की उदासीनता तथा पदोन्नति संबंधी नियमों के कारण अपने व्यवसाय (job) से असंतुष्ट थे। लक्ष्मीनारायण जोशी (1967) ने मालूम किया कि शिक्षण-सामग्री का अभाव, स्थानीय लोगों की शिक्षा के प्रति उदासीनता तथा समय विभाग चक्र में बारम्बार परिवर्तन उनके असंतोष के कारण थे। शिवदत शर्मा (1968) ने और पटेल (1972) ने शिक्षकों की आधुनिक शैक्षिक प्रवृत्तियों के प्रति अभिवृत्तियों को अनुकूल पाया तो हरचरणकौर (1970) ने माध्यमिक विद्यालयों की अध्यापिकाओं को अध्यापकों की तुलना में अपने व्यवसाय से अधिक संतुष्ट पाया। जिन अध्यापकों ने स्वेच्छा से अध्यापक बनना स्वीकार किया था, वे उन अध्यापकों की अपेक्षा जो कि मजबूरी के कारण इस व्यवसाय में आए थे—अधिक संतुष्ट थे। खत्री (1972) के अनुसार अध्यापकों में व्यावसायिक साहित्य पढ़ने की आदत अध्यापिकाओं से अधिक थी, जबकि अध्यापिकाएँ उपन्यास पढ़ने की अधिक शौकीन पाई गईं। भैरवलाल शर्मा (1967) के अनुसार 23% प्राथमिक शालाओं के न्यादर्शित अध्यापकों ने सत्र में एक

भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी। पुरोहित (1969) ने यह निष्कर्ष निकाला कि कम उम्र वाले अध्यापकों को अपने व्यवसाय से कम संतोष था, मगर उम्र बढ़ने के साथ-साथ व्यवसाय के प्रति संतोष बढ़ता जाता था। अधिक शैक्षिक योग्यता वाले अध्यापक शिक्षण-व्यवसाय के प्रति तुलनात्मक रूप से अधिक असंतुष्ट पाए गए। गालव (1969) ने वरिष्ठ अध्यापकों की तुलना में सहायक अध्यापकों को अपने व्यवसाय के प्रति अधिक संतुष्ट पाया। उन्होंने अध्यापकों के व्यावसायिक मूल्यों तथा व्यवसाय के प्रति संतोष के बीच सार्थक सहसंबंध नहीं पाया। माँगीलाल शर्मा (1970) के अनुसार व्यवसाय में प्रवेश के समय तो अध्यापकों के आदर्श उच्च थे, किन्तु अनुभव प्राप्त करने तथा कार्यरत रहने के बाद इन आदर्शों में ह्रास होता गया। यादव (1971) ने पाया कि अध्यापक का स्तर उसके आदर्शों के आधार पर नहीं अपितु उसकी योग्यता तथा गुणों के आधार पर आँका जाता था। पंड्या (1974) ने अध्यापिकाओं की समस्याओं के अध्ययन से मालूम किया कि उनमें से अधिकांश ने आर्थिक कठिनाई से तंग आकर यह व्यवसाय चुना था। आहूजा (1974) ने भी इस तथ्य की पुष्टि की।

चौधरी (1974) ने राजस्थान व हरियाणा राज्यों के अध्यापकों की समस्याओं के तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि दोनों ही राज्यों के अध्यापक समय पर वार्षिक वेतन वृद्धि न मिलने, वेतन का भुगतान न होने, सत्र भर स्थानान्तरण होते रहने तथा शिक्षण-सामग्री के अभाव के कारण असन्तुष्ट थे। कैलाशनाथ व्यास (1967) ने पाया कि गैर सरकारी विद्यालयों के शिक्षक स्वतन्त्र अभिव्यक्ति से डरते थे तथा प्रबन्ध उनके कार्यों में दखलन्दाजी करता था। लाल (1967) ने इन्हीं तथ्यों की पुष्टि की तथा यह भी मालूम किया कि वे सरकारी स्कूलों के अध्यापकों की तुलना में अपने को कम सुरक्षित अनुभव करते थे। जोशी (1966) ने शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों की प्रभावी भूमिका में स्थानान्तरण नीति को बाधक पाया। याज्ञनिक (1967) ने स्थानान्तरणों में राजनीतिक दखलन्दाजी को प्रभावशील पाया। अध्यापकों के स्थानान्तरणों के अन्य कारणों में पक्षपातपूर्ण रवैये, उनकी कार्यकुशलता में कमी, घरेलू परिस्थितियाँ आदि भी थे। प्राथमिक स्तर पर सत्यनारायण शर्मा (1967) ने अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं को अधिक समस्या-ग्रस्त पाया। एक अध्यापकीय विद्यालयों की समस्याओं पर एकमात्र शोध अध्ययन भँवरलाल शर्मा (1966) का उपलब्ध है। तदनुसार एक अध्यापकीय विद्यालयों के अध्यापक कार्यभार से अधिक ग्रस्त थे। 80% से अधिक विद्यालयों में फर्नीचर आदि की कमी से अध्यापक परेशान थे। त्रिवेदी (1967) ने शिक्षा-प्रशासन पर विभिन्न स्तरों के दबावों के अध्ययन में मालूम किया कि शिक्षा-प्रशासन पर दबावों का औसत 42.3% था। स्थानान्तरण के दबाव के 144 मामलों में से 68 सामने आए। दबावों के कई रूपों तथा उनके प्रयोजनों की जानकारी इस अध्ययन से मिलती है।

छात्रों में अनुशासनहीनता की समस्या को लेकर द्रोण(1969), भंडावत (1969) तथा रामदेव (1970) द्वारा किए गए तीन शोध उपलब्ध हैं। द्रोण(1969) के अनुसार छात्रों में अनुशासनहीनता के लिए 69% मामलों में राजनीतिक दल जिम्मेदार थे।

अन्य कारणों में छात्रों की आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति, शिक्षकों व शिक्षाधिकारियों का अविवेक-पूर्ण व असहानुभूतिपूर्ण रवैया, समाज में शैक्षिक मूल्यों का ह्रास, स्कूली वातावरण का आकर्षक न होना आदि थे। रामदेव (1970) ने भी राजनीतिक दलों के हस्तक्षेप तथा छात्रों के हीन सामाजिक-आर्थिक स्तर को अनुशासनहीनता के लिए जिम्मेदार पाया।

प्राथमिक एवं माध्यमिक–दोनों स्तरों पर अपव्यय एवं अवरोधन की समस्या को लेकर जो शोध कार्य हुए हैं, उनमें माध्यमिक स्तर पर मानवेन्द्रसिंह (1974), तथा मिश्रा (1968) के अध्ययन तथा प्राथमिक स्तर पर राज्य शिक्षा संस्थान के शिवकुमार शर्मा (1965) और एम. एड. शोधकर्त्ता अमरलाल शर्मा (1955) के अध्ययन उपलब्ध हैं। मिश्रा ने अपव्यय का अनुपात लड़के और लड़कियों में 70:56 पाया। पिछड़ी जाति के बालकों में अपव्यय 82% था। स्कूलों में अवरोधन का प्रतिशत 26 था। अंग्रेजी व गणित के लिए प्रतिकूल भाव, निर्देशन का अभाव तथा अभिभावकों के निम्न-तर शिक्षा स्तर को इस समस्या के लिए उत्तरदायी बताया गया। मानवेन्द्रसिंह ने अपव्यय एवं अवरोधन का अनुपात 30:70 पाया। मिश्रा के निष्कर्षों के विपरीत उन्होंने लड़कियों की शिक्षा में (लड़कों की तुलना में) अपव्यय एवं अवरोधन क्रमशः 29% तथा 33% अधिक पाया। अमरलाल शर्मा (1955) के अनुसार सर्वाधिक अप-व्यय प्राथमिक कक्षाओं में 8–11 आयु वर्ग के छात्रों में था। इसके कारणों में गरीबी, अभिभावकों की उदासीनता, विद्यालयों के कठोर नियम आदि को मुख्य पाया गया। शिवकुमार शर्मा (1965) के अध्ययन के अनुसार प्रतिवर्ष अवरोधन का प्रतिशत बढ़ रहा था, तथा अपक्षरण का घट रहा था। अपक्षरण के मुख्य कारण थे अभिभावकों का स्थानान्तरण तथा बच्चों का बीमार होना, जबकि अवरोधन का एक मुख्य कारण था अध्ययन स्तर का औसत से नीचा रहना। सिसोदिया (1969) ने बालिका शिक्षा के अध्ययन में पाया कि रूढ़ परम्पराएँ बालिका शिक्षा में बाधक थीं, बालविवाह भी उनकी शिक्षा में रुकावट डालता था। बालिकाओं के शिक्षित होने पर उपयुक्त वर न मिलने का डर, घरेलू कार्यों में न लगे रहना, गरीबी आदि छात्राओं की शिक्षा में अवरोध के अन्य कारण थे।

शिक्षा-प्रशासन में सुधार के प्रयत्न एवं नवाचार

कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) ने विभिन्न स्तरों के विद्यालयों को निकट लाने तथा उनमें सहयोगपूर्वक कार्य करने के प्रयोजन से विद्यालय संगम की अनुशंसा की थी। राजस्थान में 1967 में इस प्रयोग को आरम्भ किया गया। इस पक्ष को लेकर किए गए कुछ अनुसंधान उपलब्ध हैं। मेहता (1973) ने विद्यालय संगम की प्रशासनिक समस्याओं सम्बन्धी अध्ययन में ज्ञात किया कि इनकी एक प्रमुख समस्या बैठकों के समय-निर्धारण की थी। यदि विद्यालय समय में बैठक बुलाई जाती तो अध्ययन-कार्य को हानि होती और विद्यालय समय उपरान्त बैठक आयोजित करने पर बैठकों में उपस्थिति बहुत कम रहती थी। आवागमन के साधन और वित्तीय साधनों सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी अनुभव की जाती थीं। हरिशंकर शर्मा (1974) ने पाया कि अध्यापकगण विद्यालय संगम की बैठकों में अनिच्छा से भाग लेते थे, प्रदर्शन पाठ देने

से कतराते थे तथा उनमें पहल करने की भावना नहीं थी। इस पक्ष पर मूल्यांकनपरक विस्तृत सर्वेक्षण राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर के तत्वावधान में मेहता, मिश्रा तथा वर्मा ने 1972 में किया। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि 53% विद्यालय संगम वार्षिक योजना बनाते थे; 49% में विषय समितियाँ कायम थीं; 64% में प्रदर्शन पाठ देने की व्यवस्था थी, किन्तु ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालय संगमों में दिए गए प्रदर्शन पाठों का औसत 15 था, जबकि शहरी क्षेत्र में 6 का औसत था। इन्हें अधिकांशतः कनिष्ठ एवं कम अनुभव वाले अध्यापक देते थे। 56% विद्यालय संगम उत्सव परिवार के रूप में मनाते थे, तथा उनमें समान परीक्षा-व्यवस्था थी। लगभग 5% विद्यालयों के अध्यापक अन्य विद्यालयों से प्राप्त पुस्तकों साधनों आदि का लाभ उठाते थे। सहयोग का लाभ न उठाने का एक प्रमुख कारण था, अध्यापकों की उदासीनता। उसी वर्ष 1972 में ही चित्तौड़गढ़ जिले के सर्वेक्षण के आधार पर श्रीवास्तव व वर्मा ने मालूम किया कि 74% अध्यापक तो विद्यालय संगमों की प्रवृत्तियों से ही अनभिज्ञ थे। राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर के प्रस्तार सेवा विभाग द्वारा 1974 में किए 272 विद्यालय संगमों के सर्वेक्षण से ज्ञात होता है कि 91% विद्यालय-संगमों में प्रदर्शन-पाठ के कार्य आयोजित हुए थे, किन्तु प्रदर्शन पाठ देने वाले अधिकांश अध्यापक सहायक अध्यापक ही थे। 170 विद्यालय-संगमों में विषय समितियाँ गठित थीं। 135 विद्यालय संगमों में उपकरणों का आदान-प्रदान हुआ था। 95 ने सामूहिक उत्सव-कार्यक्रम आयोजित किए।

व्यास (1969) ने प्रधानाध्यापक वाक्पीठों का अध्ययन करके मालूम किया कि वे शैक्षिक समस्याओं के समाधान पर अधिक ध्यान देते थे, व्यावसायिक उन्नयन में प्रभावी रूप से सहायक थे, किन्तु वित्तीय कठिनाइयों से ये बुरी तरह ग्रस्त थे।

शिक्षा-प्रशासन एवं परिवीक्षण

इस वर्ग में एक ओर शिक्षा-परिवीक्षकों की भूमिका को लेकर तथा दूसरी ओर उनसे की जाने वाली अपेक्षाओं को लेकर शोध-कार्य उपलब्ध हैं। पाठक (1974) ने इन्दौर (मध्यप्रदेश) के न्यादर्श के सन्दर्भ में ज्ञात किया कि परिवीक्षकों का प्रशासनिक एवं परिवीक्षण कार्यभार बढ़ा हुआ था। वे पुरानी पद्धति से ही निरीक्षण करते थे। पानेरी (1966) ने राजस्थान में इसी पक्ष पर अपने अध्ययन में ज्ञात किया कि निरीक्षकों का रवैया सहानुभूतिपूर्ण नहीं था, वे अधिकारी का-सा व्यवहार करते थे, शिक्षकों की सहायता करने की दृष्टि उनमें नहीं थी। वे प्रायः दैनिक प्रशासनिक कार्यों में ही उलझे रहते थे। चौधरी (1974) ने मालूम किया कि पैनल परिवीक्षण का अध्यापकों के व्यावसायिक उन्नयन पर तो प्रभाव पड़ा, किन्तु उससे पाठ-निर्माण-योजना में प्रभावी मार्गदर्शन नहीं मिला। हाँ, अध्यापकों की प्रश्न प्रविधि में सुधार हुआ। के. एल. शर्मा (1961) के अनुसार परिवीक्षण वस्तुतः निरीक्षण था। सहयोग व सहायता करने की अभिवृत्ति परिवीक्षकों में नहीं थी।

प्राथमिक विद्यालय स्तर पर यादव (1966) ने पाया कि शिक्षा प्रसार अधिकारी माह में 39% दिन ही परिवीक्षण कार्य में लगाते थे। लड्ढ़ा (1967) के

अनुसार शिक्षा प्रसार अधिकारी को परिवीक्षण के लिए अपेक्षित समय नहीं मिलता था, क्योंकि वे पंचायत समिति के अन्य कार्यों में व्यस्त रहते थे। विद्यालयों की संख्या का अनुपात अधिक हो जाने से सम्पर्क प्रणाली की समस्याएँ अनुभव की जाती थीं।

दरबारीलाल (1967) ने सफल विद्यालय-प्रशासक के 23 गुणों का पता लगाया। अतीकबानू (1971) ने पाया कि अध्यापकों ने आदर्श परिवीक्षकों में उच्च बौद्धिक स्तर, भावात्मक वृत्ति व सामाजिक गुणों की पसन्द किया, जबकि अध्यापिकाओं ने परिवीक्षकों की व्यावसायिक कुशलता एवं शारीरिक सुष्ठुता को पसन्द किया। गोपालदास शर्मा (1974) ने अध्ययन के आधार पर परिवीक्षक से अध्यापक का मित्र बन कर उसकी सहायता करने की, छात्रों व स्थानीय नेताओं से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने की अपेक्षा की। जनार्दनप्रसाद शर्मा (1968) ने प्रधानाध्यापकों के द्वन्द्व का अध्ययन करके मालूम किया कि जिन प्रधानाध्यापकों का दृष्टिकोण संकुचित होता है, वे अच्छे प्रधानाध्यापक नहीं होते तथा द्वन्द्व से पीड़ित रहते हैं। प्रधानाध्यापक मुख्यतः परिवीक्षण में, मानवीय सम्बन्ध बनाने आदि में द्वन्द्वात्मक स्थिति का अनुभव करते थे।

गौरी (1960) तथा बृजमोहन शर्मा (1960) ने परिवीक्षण के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि विद्यालयों में परिवीक्षकों के व्यवहार में सहानुभूति की कमी थी। अध्यापकों में उनके व्यवहार के प्रति असन्तोष था।

शिक्षा- प्रशासन एवं वित्त

स्वतन्त्रता के पश्चात् तीव्र गति से शिक्षा का विकास हुआ है और शिक्षा-शास्त्रियों एवं अर्थशास्त्रियों की यह मान्यता बन गई है कि देश का विकास शिक्षा के प्रसार से सीधा सम्बन्धित है। अतः प्रतिवर्ष शिक्षा पर होने वाले व्यय में प्रति व्यक्ति वृद्धि की दर क्या है, उसकी उपादेयता कितनी है, ऐसी समस्याओं पर भी कुछ शोध-कर्त्ताओं ने अध्ययन किए हैं।

उदावत (1954) ने राजस्थान में शिक्षा-वित्त का अध्ययन करके ज्ञात किया कि शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का 15% राज्य सरकार वहन कर रही थी। स्थानीय निकाय, निजी संस्थाएँ, धर्मार्थ ट्रस्ट आदि शेष वित्तीय व्यवस्था करते थे। शृंगी (1969) ने शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में प्रति विद्यार्थी शिक्षा-व्यय की गणना एवं तुलना की तथा मालूम किया कि ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में प्रति विद्यार्थी शिक्षा-व्यय शहर की अपेक्षा बहुत अधिक था। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति इकाई अधिक व्यय का कारण अध्यापक-छात्र का कम अनुपात, ऐच्छिक विषयों की बहुलता आदि थे। कुमारी तलेसरा (1971) ने ज्ञात किया कि निजी शिक्षण संस्थाओं का प्रति इकाई व्यय राजकीय शिक्षण संस्थाओं की अपेक्षा अधिक था। इस अधिक व्यय के कारण निजी शिक्षण संस्थाओं में अच्छी प्रयोगशालाएँ, अच्छे पुस्तकालय, अच्छे स्तर के सांस्कृतिक कार्यक्रम, अच्छे छात्रावास थे, जिनसे छात्रों को अधिक सुविधाएँ प्राप्त होती थीं।

राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर के हेड़ा एवं जोशी (1966) ने प्राथमिक, उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में प्रति इकाई व्यय का अध्ययन करके यह ज्ञात किया कि प्राथमिक स्तर पर अच्छे विद्यालय में प्रति इकाई व्यय 49·37 रुपये, साधारण में 54·89 रुपये तथा हीन में 53·80 रुपये था। उच्च प्राथमिक स्तर पर अच्छे विद्यालय में प्रति इकाई व्यय 78·67 रुपये, मध्यम में 88·09 रुपये तथा हीन में 53·30 रुपये था। उच्च माध्यमिक स्तर पर अच्छे विद्यालय में प्रति इकाई व्यय 195·48 रुपये, साधारण में 241·86 रुपये तथा हीन में 154·45 रुपये था। इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सुप्रबन्धित अच्छे विद्यालय में चाहे वह किसी स्तर का हो, प्रति इकाई व्यय भी कम होता था और परीक्षा परिणाम भी श्रेष्ठ रहते थे।

विविध

टिक्कीवाल (1954) ने राजस्थान में शिक्षा-प्रशासन के अधिकार विन्यास का अध्ययन करके मालूम किया कि केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति से शिक्षा-प्रशासन ग्रस्त था, शिक्षा के विभिन्न अभिकरणों में समुचित तारतम्य नहीं था, साक्षरता का प्रतिशत मात्र 8·4% था। जैन (1960) ने भारत में उच्च शिक्षा का अन्य देशों की शिक्षा से तुलनात्मक अध्ययन करके ज्ञात किया कि ब्रिटिश शासन में ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया गया था, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस पक्ष पर समुचित ध्यान दिया जाने लगा था। वंगू (1963) ने राजस्थान में माध्यमिक शिक्षा की स्थिति की जम्मू और कश्मीर की शिक्षा से तुलना की तथा पाया कि राजस्थान परीक्षा सुधार कार्यक्रमों में, शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में, शारीरिक शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में अग्रणी था।

जोशी (1969) ने शिक्षा-प्रशासन में नौकरशाही की भूमिका पर, तो उधर कौशिक (1972) ने अपने पीएच. डी. अध्ययन में शिक्षक संघों की भूमिका पर शोध किया। जोशी के अनुसार नीति सम्बन्धी मामलों में नौकरशाही की भूमिका नगण्य थी, किन्तु क्रियान्वयन में इसकी भूमिका प्रमुख थी। नीतियों पर क्रियान्वयन नियमानुसार केवल 10% मामलों में ही होता था। अधिकांश उत्तरदाताओं ने नौकरशाही को नियमों में जब-तब परिवर्तन करने का दोषी बताया। नौकरशाही के अनुसार पक्षपातपूर्ण निर्णयों का कारण उन पर आने वाला दबाव था। कौशिक ने मालूम किया कि भारत में शिक्षक संगठन प्रारम्भिक अवस्था में शैक्षिक समस्याओं के समाधान पर बल देते थे, किन्तु शनैः शनैः उनका झुकाव शिक्षकों की आर्थिक समस्याओं के समाधान की ओर बढ़ता गया। इन संगठनों का शिक्षा के आयोजन व उसकी प्रक्रिया में नगण्य प्रभाव था, किन्तु वेतनमान बढ़वाने, गैर सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों को सरकारी विद्यालयों के अध्यापकों के समान महँगाई भत्ता दिलाने, उनकी सेवा शर्तों का संरक्षण दिलवाने में इन संगठनों ने सफलता प्राप्त की। आन्दोलनात्मक प्रवृत्ति इनमें देखी गई। कौशिक ने यह मालूम किया कि इनमें आन्तरिक तथा बाहरी सम्प्रेषण व्यवस्था का अभाव था। फलतः लोगों में इनके प्रति गलतफहमियाँ भी थीं तथा इनमें अध्यापकों की अपेक्षित आस्था नहीं थी।

सम्भावनाएँ एवं सुझाव

गत बीस वर्षों में शिक्षा-प्रशासन क्षेत्र में शोधकर्त्ताओं ने प्रशासन के मानवीय संगठन पर अधिक ध्यान दिया। विभिन्न अभिकरणों की स्थिति का अध्ययन शोध का अधिक प्रिय विषय रहा। इस तथ्य को उजागर किया गया कि कार्मिक जनों के लिए कार्य की सन्तोषजनक स्थिति शिक्षा की मूलभूत आवश्यकता हैं। स्वायत्त तथा निजी संस्थाओं के अध्ययनों में उन्हें अधिक स्वतन्त्रता देने की स्थिति स्पष्ट की गई, पर विकेन्द्रीकरण के कुप्रभावों से बचने की आवश्यकता भी व्यक्त की गई थी।

बहु संख्यक शोधकर्त्ताओं ने (Normative survey) सर्वेक्षण प्रणाली से अध्ययन किए। प्रामाणिक तथा परीक्षण विधि से शायद ही कोई शोध किया गया। न्यादर्श प्रायः सामान्य विद्यालयों से ही लिए गए। विशेष प्रकार के विद्यालयों जैसे, पब्लिक स्कूल, प्राविधिक स्कूल तथा विकलांगों के विद्यालयों के न्यादर्श नहीं लिये जा सके।

उपकरणों की दृष्टि से देखें तो प्रायः सब शोधकर्त्ताओं ने स्वनिर्मित उपकरणों को ही प्रयुक्त किया। उन्होंने मानकीकृत उपकरण बनाने अथवा वैसे तैयार उपकरणों के प्रयोग में कम रुचि दिखाई।

सांख्यिकी में सामान्य आँकड़ों का ही उपयोग किया गया। प्राविधिक सांख्यिकी विधाओं का नगण्य उपयोग किया गया।

शोधकार्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यदि अध्ययन के समय शोधकर्त्ता विषय की गहराई में उतरने का प्रयास करते एवं उसके विभिन्न पक्षों को उभारने का प्रयास करते तो अध्ययन और अधिक महत्वपूर्ण बन पाते।

शिक्षा में नियंत्रण एवं प्रशासन के अन्तर्गत यद्यपि पर्याप्त समस्याओं पर शोध-कार्य किए गए किन्तु जिला शिक्षा अधिकारी के कार्य, उसकी समस्याएँ, उसका विभिन्न इकाइयों से संबंध, उसके स्वयं के कार्यालय कर्मचारियों से अन्तर्संबंध पर शोध कार्य नगण्य हैं। इसी प्रकार अध्यापकों के अन्तर्संबंधों एवं सहसंबंधों तथा इन संबंधों के शाला-प्रशासन पर प्रभाव को लेकर भी शोध-कार्य किए जाने की जरूरत है। अध्यापकों की पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को लेकर भी अध्ययनों का अभाव हैं। अध्यापक-अभिभावकों के अन्तर्संबंधों का शाला-विकास पर, छात्र-छात्राओं के चरित्र-निर्माण पर, उनके परीक्षा-परिणाम पर पड़ने वाले प्रभाव को लेकर अध्ययन भी अपेक्षित हैं।

यद्यपि विद्यालयों की भौतिक एवं मानवीय समस्याओं पर कुछ अध्ययन किए गए हैं किन्तु शाला-उन्नयन कार्यक्रम, कार्यानुभव, खेलकूद एवं क्रीड़ा प्रतियोगिताएँ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक-समारोह आयोजन, क्रियाशील अवकाश कार्यक्रम की उपादेयता, स्काउट एवं गाइड आन्दोलन का प्रभाव, एन. सी. सी. के प्रति दृष्टिकोण एवं उसका प्रभाव आदि से संबंधित प्रशासनिक समस्याओं के क्षेत्र शोधकर्त्ताओं की दृष्टि से बचे रह गए हैं।

शिक्षा में विकेन्द्रीकरण से उत्पन्न समस्याओं ने यद्यपि शोधकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित किया है और पंचायत समितियों के अध्यापकों की समस्याओं, शिक्षा प्रसार

अधिकारी की समस्याओं, एक अध्यापकीय शालाओं की समस्याओं पर कुछ अध्ययन उपलब्ध हैं, किन्तु पंचायत समितियों के अध्यापकों के व्यावसायिक विकास, शिक्षण-स्तर के समुन्नयन, समकक्ष राजकीय शालाओं के शिक्षण-स्तर से उसकी तुलना, ग्रामीण शाला के सामुदायिक केन्द्र के रूप में विकसित होने के लक्ष्य की प्रगति आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर शोधकर्त्ताओं को ध्यान देना जरूरी है। एक अध्यापकीय शालाओं की व्यवस्था एवं कार्य-प्रणाली शोधकर्त्ताओं के लिए लगभग एक अछूता, मगर रोचक आयाम है।

परिवीक्षण के अन्तर्गत, उसके प्रभाव के मूल्यांकन की दृष्टि से कोई अध्ययन नहीं किया गया। परिवीक्षण में आधुनिक तकनीक एवं उपकरणों का उपयोग एवं उपादेयता, परिवीक्षण में मानक प्रपत्रों के उपयोग से परिवीक्षण को सुगम एवं प्रभावी बनाने के प्रयास, स्व-मूल्यांकन, प्रश्नावलियों के उपयोग एवं उनकी उपादेयता आदि ऐसे क्षेत्र हैं जो अब तक अछूते हैं।

राजस्थान में शिक्षा के विकास में निजी शिक्षण संस्थाओं की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन संस्थाओं के अध्यापकों में व्याप्त असंतोष एवं उनके शोषण की घटनाएँ भी यदा-कदा प्रकाशित होती रहती हैं; किन्तु इन संस्थाओं के परीक्षा-परिणाम पर्याप्त अच्छे रहते है, अभिभावक भी इन विद्यालयों को महत्व देते हैं, इसके पीछे क्या कारण है—इनका अध्ययन होना चाहिए। स्वतंत्रता के पश्चात् राज्य में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाली निजी संस्थाओं की बाढ़-सी आ गई है, उनमें प्रवेश की समस्या भी विकट हैं किन्तु उनके प्रशासन को लेकर एक भी शोध अध्ययन उपलब्ध नहीं है। निजी संस्थाओं की कार्य-प्रणाली एवं स्थानीय समकक्ष राजकीय शिक्षण-संस्थाओं की कार्य-प्रणाली के तुलनात्मक अध्ययन का भी अभाव है।

शिक्षा एवं वित्त की समस्याओं पर जहाँ विकसित देशों में विगत बीस वर्षों में अत्यधिक अध्ययन हुए हैं, वहाँ राजस्थान में पीएच. डी. स्तर पर तो एक भी शोध-कार्य अब तक नहीं हुआ; एम. एड. स्तर पर केवल चार शोध-अध्ययन दृष्टि में आए हैं। शिक्षा व्यय एवं उत्पादकता में व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय अभिवृद्धि, अंग्रेजी माध्यम की निजी शिक्षण-संस्थाओं में प्रति व्यक्ति शिक्षा का व्यय, पब्लिक स्कूलों में प्रति व्यक्ति शिक्षा का व्यय एवं उसका प्रतिफलन, ग्रामीण अंचल की शिक्षण-संस्थाओं में प्रति व्यक्ति व्यय, प्रशासन पर होने वाले व्यय का अनुपात, अन्य राज्यों में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर होने वाले व्यय से राजस्थान के व्यय की तुलना, शिक्षक-प्रशिक्षण पर प्रति व्यक्ति व्यय, महिलाओं पर होने वाला प्रति व्यक्ति व्यय एवं उसकी उपयुक्तता—ये कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें शोध की पूरी गुंजाइश है।

शिक्षा-प्रशासन के अन्तर्गत हुए अब तक के अध्ययनों में प्रयोगात्मक अध्ययनों का अभाव खटकता है। यद्यपि प्रयोगात्मक अध्ययनों में कठिनाइयाँ अधिक हैं, शोधकर्ता को भी अधिक परिश्रम करना पड़ता है, फिर भी शोध के क्षेत्र में ऐसे अध्ययन होने चाहिए। शिक्षा-प्रशासन का वर्तमान स्वरूप अंग्रेजी राज्य की देन है किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् देश में हुए सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के संदर्भ में इस प्रशासन के ढाँचे में

अपेक्षित परिवर्तनों का स्वरूप क्या हो, सामान्य जनता एवं शिक्षक की आकांक्षाओं की पूर्ति में प्रशासन का सहयोग क्या हो, अथवा प्रशासन के स्वरूप में क्रमिक परिवर्तन किस तरह से किए जाने चाहिएँ—इन मुद्दों पर अनुसंधानकर्ताओं को, खास करके प्रशासन या संस्थागत स्तर पर प्रयोगात्मक प्रायोजना कार्य भी करने चाहिए।

सन्दर्भांकित अनुसंधान

अतीकबानू	:	An Ideal Supervisor as Viewed by Teachers, M. Ed., Raj. Uni., 1971
आहूजा, भगवती	:	A Study of the Familial Adjustment of the Women-teachers of the School of Raja Park, Jaipur, B.A (Adult Education), Raj. Uni., 1974
उदावत, जगदम्बालाल	:	An Investigation into the Educational Finance in Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1954
कोठारी, चन्दनमल	:	A Survey of A. C. C. and Scouts Organisation in Bikaner Division with reference to Educational, Organisational and Financial Factors, M. Ed., Raj. Uni., 1962
कौशिक, श्यामलाल	:	A Comparative Study of Teachers' Associations in Rajasthan and the Neighbouring States, Ph. D. (Edu.), Udaipur Uni., 1972
कौशिक, सूरजनारायण	:	Qualifications of the Members of Education Committee of Panchayat Samities and their Effectiveness, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
खत्री, रामलाल	:	A Study into the Attitude towards Studies of Primary and Secondary School Teachers in Chittorgarh District, B.A. (Adult Education), Raj. Uni., 1972
गर्ग, भँवरलाल	:	A Study of Reforms Introduced by the Board of Secondary Education, Rajasthan and Their Impact on Teachers, M. Ed., Udaipur Uni., 1968
गालव, नन्दलाल	:	A Study of Values and Job Satisfaction of Secondary School Teachers, M.Ed., Udaipur Uni., 1969
गौरी, गफूरमोहम्मद	:	An Investigation into the Attitudes of Secondary School Teachers towards the Prevailing Practices of Inspection in Rajasthan, M.Ed , Raj., Uni., 1960
चारण, साँवलदान	:	The Role of Private High School in the Educational Development of Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1953

चौधरी, सुषमा : **माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर राजस्थान और हरियाणा के प्रधानाध्यापकों एवं प्रधानाध्यापिकाओं की प्रशासकीय समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1974

चौधरी, हरदीनाराम : **नागौर जिले के माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों में परिवीक्षण के प्रभाव का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1974

जगदीशनारायण : Trends in Local Educational Administration in India since Independence : A Comparative Study, M. Ed., Raj. Uni., 1958

जैन, प्रहलादराय : A Comparative Study of the Development of Rural Higher Education in India, U. K., U.S A. and U.S.S.R., M. Ed., Raj. Uni., 1960

जोशी, अनराज : State Control over Higher and Secondary Education in India since 1947 : A Comparative Study, M. Ed., Raj. Uni., 1959

जोशी, चिरंजीवलाल : Bureaucracy and Educational Policies, M. Ed., Udaipur Uni., 1969

जोशी, दिनेशचन्द्र : A Study of the Concept of School Improvement Programme as Conceived by Teachers and its Bearing on their Work, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

जोशी, बी. आर. : The Impact of Panchayat Raj on the Primary Schools of Panchayat Samiti, Badgaon, M.A. (Rural Studies), Udaipur Uni., 1967

जोशी, लक्ष्मीनारायण : Professional Problems of Rural Secondary School Teachers of Udaipur District, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

टिक्कीवाल, श्यामप्रकाश : Educational Administration in Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1954

तलेसरा, हेमलता : **उदयपुर शहर में सरकारी तथा गैर सरकारी उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा पर लागत व्यय तथा सार्वजनिक परीक्षा परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन,** एम.एड., उदयपुर वि.वि., 1971

त्रिवेदी, शंकरलाल : Pressures on Educational Administration, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

दरबारीलाल : Leadership Qualities of Successful Secondary School Headmasters in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1967

द्विवेदी, हरिश्चन्द्र : The Impact of De-centralisation on the Primary Schools of Panchayat Samiti, Simalwara, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

द्विवेदी, श्रीनारायण : इटावा जनपद के सहायता प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की समस्याओं का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

देवल, गुमानसिंह : पंचायत समिति और शिक्षा विभागीय प्राथमिक शाला के शिक्षकों की समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

द्रोण, कृष्णवीर : Factors Leading to Students' Unrest : A Psychological Study,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

धर्मपालसिंह : Trends in the Administrative Partnership between the Central, State and Local Educational Authorities in India since 1947,
M. Ed., Raj. Uni., 1959

पटेल, महेन्द्रकुमार : अजमेर नगर के माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की अध्यापन-व्यवस्था के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1972

पंड्या, शकुन्तला : माध्यमिक शाला-स्तर पर कार्यरत अध्यापिकाओं की समस्याएँ,
एम.एड., राज. वि.वि., 1974

प्रस्तार सेवा विभाग : राजस्थान में सत्र 1973-74 में विद्यालय संगमों के कार्यों का अध्ययन,
राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर, 1974

पांचाल, शान्ति : A Study of a School Principal's Job,
M. Ed., Udaipur, Uni., 1967

पाठक, आर. वाई. : The Role of Inspectorial Staff in Educational Administration of Indore District (Madhya Pradesh),
M. Ed., Raj. Uni.. 1964

पाण्डे, आर. जी. : The Growth and Development of the Vidya Bhawan Basic School,
M. Ed., Raj. Uni., 1953

पानेरी, देवीलाल : The Role of the Inspector of Schools in the Educational Administration of Udaipur District,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

पारीक, कृष्णा : Job Satisfaction of Men and Women Teachers in Relation to their Experience,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

पुरोहित, एच. सी. : A Study of the Self-Esteem and Job Satisfaction of Teachers,
B. A. (Adult Edu.), Raj. Uni., 1969

बेनीवाल, ओमप्रकाश : **राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत विशिष्ट अभिकरणों के कार्यों का अध्ययन,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1973

भटनागर, जगदीशनारायण : An Investigation into Some Administrative Problems of Primary Schools under Panchayat Samiti, Badgaon,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

भंडावत, उमरावमल : Causes of Students' Unrest in India,
M. Ed., Raj. Uni., 1969

भामू, गणपतसिंह : The Administration of Primary Education under the Panchayat Samiti, Fatehpur,
M. Ed., Udaipur Uni., 1965

मानवेन्द्रसिंह : **उच्च माध्यमिक विद्यालयों में अपव्यय एवं अवरोधन,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1974

मिश्रा, हरिनन्दन : A Study of Drop-outs and Repeaters in Secondary Schools of Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

मूंदड़ा, शंकरलाल : **विद्याभवन सोसाइटी के विगत तीन दशक,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1970

मेहता, कृष्णचन्द्र : Administrative Problems of School Complex Programme m Udaipur City,
M. Ed., Udaipur Uni., 1973

मेहता, च. सि., मिश्रा, ह. न. एवं वर्मा, प. ला. : School Complex Programme in Rajasthan,
Govt. Teachers Training College, Bikaner, 1972

मेहता, पारसमल : Diagnosis of the Problems of Educational Administration in the Panchayat Raj,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

यादव, जी. एल. : Survey of the Inspections of Primary Schools by Education Extension Officers in Udaipur District,
SIE., Udaipur, 1966

यादव, हरिराम : **अधिकतम स्वीकृत एवं न्यूनतम स्वीकृत अध्यापकों के मूल्य,**
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

याज्ञनिक, गोविन्दमाधव : Transfer Problems of the Heads of Govt. Secondary/S.T.C. Schools in Rajasthan,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

रामदेव, विजयराज : A Comparative Study of the Views of Pupils, Teachers and Administrators of Secondary Schools about the Problems of Indiscipline,
M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

लड्ढा, गोवर्धनलाल : The Role of Education Extension Officer in the Changing Pattern of Society,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

लाल, एमरेल्ड अलेक्जेंड्रा	:	A Comparative Study of the Service Conditions of Teachers in Government and Aided Secondary Schools in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
वंगू, मोहनलाल	:	A Study of Some Significant Developments in Secondary Education in the States of Rajasthan and Jammu & Kashmir, M. Ed., Raj. Uni., 1963
वर्मा, जगदीशप्रसाद	:	A Study of Contribution of Private Enterprize to the Educational Development of Udaipur, M. Ed., Raj. Uni., 1968
बर्मा, एन. एल.	:	A Survey of the Uneconomic Secondary and Higher Secondary Schools of Rajasthan, S I E., Udaipur, 1968
व्यास, अमचरन्द	:	**बीकानेर शहर के माध्यमिक व उच्च माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों की समस्याओं का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1971
व्यास, कैलाशनाथ	:	An Investigation into the Working Conditions of Teachers of Aided Secondary and Higher Secondary Schools, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
व्यास, जगदीशचन्द्र	:	**उदयपुर-कोटा परिक्षेत्र के प्रधानाध्यापक वाक्पीठ : एक अध्ययन,** एम.एड., उदयपुर वि.वि., 1969
व्यास, जगदीशचन्द्र	:	**पाली जिले में आठवीं कक्षा के स्तर पर शाला छोड़ने के कारणों का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1968
व्यास, जानकीलाल	:	A Study of Aims, Objectives, Functions and Organisation of Central Schools in India, M. Ed., Udaipur Uni., 1967
त्रिजय, श्यामबिहारी	:	A Study of Teachers' Unrest in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
वैष्णव, हंसराज	:	Patterns of Educational Finance in Government and Private Institutions, M. Ed., Udaipur Uni., 1969
शर्मा, अमरलाल	:	Wastage and Stagnation in the Primary Schools of Udaipur City, M. Ed., Raj. Uni., 1955
शर्मा, के. एल.	:	Supervision in Higher Secondary Schools of Udaipur District, Rajasthan: A Comparative Study with the U.S.A., M. Ed., Raj. Uni., 1961
शर्मा, गोपालदास	:	Expectations from a Supervisor, M. Ed., Raj. Uni., 1974
शर्मा, जनार्दनप्रसाद	:	A Study of Role Conflict in Headmasters of Secondary Schools in Rajasthan, M. Ed., Udaipur Uni., 1968

शर्मा, बृजमोहन : An Investigation into the Attitudes of Teachers serving in Multi-Purpose Schools of Rajasthan towards School Supervision,
M. Ed., Raj. Uni., 1960

शर्मा, भँवरलाल : The Problems of Single Teacher Primary Schools of Panchayat Samiti Ghatol, District Banswara,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

शर्मा, भैरवलाल : A Study of the Reading Interests and Habits of Primary School Teachers,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

शर्मा, मांगीलाल : **अध्यापकों के मूल्यों का अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1970

शर्मा, मुरलीमोहन : **उदयपुर शहर में माध्यमिक शिक्षा में स्वैच्छिक प्रयास की भूमिका,**
एम. एड., उदयपुर वि. वि., 1974

शर्मा, मोहनप्रकाश : **भारत के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के गठन एवं कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन,**
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

शर्मा, रामदत्त : The Evaluation of Pattern of Educational Administration in India since 1813,
M. Ed., Raj. Uni., 1962

शर्मा, शिवकुमार : A Study to find out Wastage and Stagnation in Class I of a Primary School of Delwara Village,
SIE., Udaipur, 1965

शर्मा, शिवदत्त : An Investigation into the Attitudes of Teachers towards Modern Trends in Education,
M. Ed., Raj. Uni., 1968

शर्मा, सत्यनारायण : A Study of the Problems of the Trained Teachers in Primary Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1967

शर्मा, हरिशंकर : School Complex : A Case Study,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

शृंगी, महावीरकुमार : Unit Cost of Higher Secondary Education in Rural and Urban Areas,
M. Ed., Udaipur Uni., 1969

श्रीवास्तव, ए. एल. एवं वर्मा, पी. एल. : School Complex Programme in Chittorgarh District (With Special Reference to its Impact on Teachers),
Inspector of Schools, Chittorgarh, 1972

श्रीवास्तव, प्रकाशचन्द : A Study of Inspection Reports by Inspectors of Schools.
M. Ed , Raj. Uni., 1973

सांधू, शमशेरसिंह	:	An Investigation into the Personal and Professional Problems of Teachers Serving in Secondary Schools of Bikaner Division, M. Ed., Raj. Uni., 1960
सिसोदिया, जे. एस.	:	A Study of the Factors influencing Girls' Enrolment in Primary Schools of Panchayat Samiti, Balesar, M. Ed., Raj. Uni., 1969
हरचरणकौर	:	A Study of the Attitudes of Secondary School Teachers towards their Profession, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970
हाण्डा, पुष्पारानी	:	A Study of Professional Problems of Secondary School Teachers in Relation to their Experience (Quality point) and Adjustment, M. Ed., Raj. Uni., 1970
हुक्कू, बी. एन.	:	The Case Study of Four Higher Secondary Schools to Recognize Patterns of Schooling in Relation to Academic Achievement, M. Ed., Raj. Uni., 1970
हेड़ा, आर. सी. एवं जोशी, जी. के.	:	Study of the Unit Cost on Primary, Middle, Higher Secondary and STC Schools of Good, Medium and Poor Standards in the State of Rajasthan, SIE., Udaipur, 1966

□

विद्यालय-व्यवस्था

□ विद्यासागर शर्मा
□ शशिशेखर व्यास

शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालयों की व्यवस्था एवं उनके प्रशासन से संबंधित पक्ष को दो स्वरूपों में देखा जा सकता है—एक शिक्षा-प्रशासन और दूसरा विद्यालय-व्यवस्था। शिक्षा-प्रशासन में विद्यालय सम्बन्धी उन सभी बाह्य एवं आन्तरिक प्रशासनिक क्रियाकलापों को सम्मिलित किया जाता है जिनके अन्तर्गत शिक्षा की मशीनरी को सुव्यवस्थित रूप से चलाने की व्यवस्था विद्यमान हो, जबकि विद्यालय-व्यवस्था में विद्यालय स्तर के वे सभी कार्यकलाप सन्निहित हैं जिनकी सहायता से शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। क्षेत्र की दृष्टि से शिक्षा-प्रशासन इतना व्यापक है कि उसमें प्राथमिक विद्यालय से लेकर शिक्षा मंत्रालय तक की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था एवं गतिविधियाँ सम्मिलित होती हैं। इसके विपरीत विद्यालय-व्यवस्था में प्रशासन का दायरा विद्यालय तक ही सीमित है, और इसमें विद्यालयी प्रशासन के साथ ही विद्यालय स्तरीय शैक्षिक, सहशैक्षिक एवं अन्य वे सभी क्रियाकलाप सम्मिलित होते हैं, जिनका विद्यालय के उन्नयन से सीधा सम्बन्ध हो। वस्तुतः इन दोनों क्षेत्रों में इतना अधिक अन्तर्वेशन एवं सहसम्बन्ध है कि इन दोनों को पूरी तरह से अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में देख सकना कठिन है। यदि शिक्षा प्रशासन की मात्र प्रशासन की दृष्टि से ही देखा जाए तो भी उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विद्यालय-व्यवस्था का पक्ष जुड़ा रहता है और इसी प्रकार विद्यालय-व्यवस्था में शिक्षा प्रशासन का।

राजस्थान में विद्यालय-व्यवस्था के क्षेत्र में शोध-अध्ययन की प्रवृत्ति का विकास बीसवीं शताब्दी के छठे दशक से ही प्रारंभ हुआ है। इस क्षेत्र में पहला शोध-अध्ययन त्रिवेदी (1957) द्वारा किया गया मिलता हैं। जिसमें उदयपुर नगर के एक माध्यमिक विद्यालय की प्रशासनिक व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास हुआ। सन् 1951 से 1960 तक के दशक में केवल एक अध्ययन हुआ। सन् 1961 से 1970 तक के दशक में 17 अध्ययन एवं सन् 1971 से 1974 तक की अवधि में 10 अध्ययन हुए। यह स्थिति इस तथ्य को इंगित करती है कि अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान इस क्षेत्र की ओर उत्तरोत्तर आकृष्ट होता गया है।

सन् 1974 तक सम्पन्न हुए विद्यालय-व्यनस्था सम्बन्धी सभी शोध-अध्ययनों को उनके अध्ययन-प्रकार की दृष्टि से देखने पर, यह ज्ञात होता है कि अनुसंधानकर्ताओं ने

इस क्षेत्र में मुख्यतया सर्वेक्षण, तुलनात्मक अध्ययन, प्रकरण अध्ययन आदि ही किए हैं। कहीं-कहीं विद्यालयों के विभिन्न पक्षों के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति ज्ञात करने के प्रयास भी किए गए हैं, लेकिन ऐसे पक्षों को नाम-मात्र के लिए ही स्पर्श किया गया है।

अब तक किए गए शोध-अध्ययनों में सर्वाधिक संख्या प्रतीकात्मक सर्वेक्षणों (Normative Survey) की है। संख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान प्रकरण-अध्ययनों का आता है। प्रयोगात्मक अध्ययन केवल एक ही लिया गया है। प्रयोगात्मक अध्ययन की दृष्टि से एम.एड. के विद्यार्थियों ने कोई प्रयास नहीं किया, ऐसा प्रतीत होता है। इस दिशा में एकमात्र प्रयोग संस्था-स्तर पर राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर (1965) द्वारा प्रहर पाठशाला (Three Hours School) पर किया गया।

अब तक किए गए शोध-अध्ययनों में जो चार मुख्य पक्ष उभर कर आते हैं, वे हैं : विद्यालय योजना, विद्यालयी कार्यक्रम एवं उनकी उपलब्धियाँ, विद्यालय क्षेत्र के पारस्परिक सम्बन्ध और विद्यालय-व्यवस्था एवं उसकी समस्याएँ।

विद्यालय योजना

विद्यालय योजना के अन्तर्गत अब तक केवल दो अध्ययन ही उपलब्ध हैं, जिनमें से एक राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर द्वारा और दूसरा एम. एड. स्तर पर किया गया है। मिश्र (1974) ने एक उच्च माध्यमिक विद्यालय की समुन्नयन योजना के संदर्भ में प्रकरण-अध्ययन किया और पाया कि प्रधानाध्यापक के लोकतांत्रिक व्यवहार से विद्यालय योजना की क्रियान्विति बड़ी आसानी से की जा सकती हैं और लक्षित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इसी पक्ष पर राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर में हुए अध्ययन में अनुसंधाता जगदीशदत्त शर्मा (1974) ने पाया कि राजस्थान राज्य में विद्यालय-समुन्नयन-योजनाओं का विधिवत और योजनाबद्ध क्रियान्वयन हुआ है। यह भी ज्ञात हुआ कि समुन्नयन-योजना के क्षेत्र में शैक्षिक प्रवृत्तियाँ, सहशैक्षिक प्रवृत्तियाँ, अध्यापकों की व्यावसायिक उन्नति, विद्यालयी भौतिक स्थिति में उन्नति एवं विभाग द्वारा सुझाए गए कार्यक्रम भी मुख्य रहे हैं। किन्तु जब इन योजनाओं का मूल्यांकन किया गया तो इनका स्तर अच्छा नहीं पाया गया।

विद्यालयी कार्यक्रम एवं उनकी उपलब्धियाँ

वैसे इस पक्ष में वस्तुतः विद्यालय की कई प्रवृत्तियाँ आती हैं, परन्तु जिन पर अनुसंधानकर्ताओं का ध्यान विशेष आकर्षित हुआ है, वे हैं—अध्यापक परिषद एवं छात्र नेतृत्व, सह शैक्षिक प्रवृत्तियाँ एवं विद्यालयी उपलब्धियाँ।

(क) अध्यापक परिषद एवं छात्र नेतृत्व : जैन (1966) और नृसिंहदास (1973) ने क्रमशः उदयपुर और बीकानेर के राजकीय और अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थी परिषद के कार्यकलापों का अध्ययन किया और ज्ञात किया कि अराजकीय विद्यालयों में विद्यार्थी परिषद का राजकीय विद्यालयों की अपेक्षा एक विशिष्ट स्थान है। जैन ने अपने अध्ययन में पाया कि अराजकीय विद्यालयों में गठित छात्र-परिषदों में सभी विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को सम्मिलित किया जाता था, जबकि

राजकीय विद्यालयों में केवल एक अध्यापक और विद्यार्थियों के चुने हुए पदाधिकारियों को ही छात्र-परिषद में शरीक किया जाता था। नृसिंहदास ने अपने न्यादर्श में एक पब्लिक स्कूल को शामिल करते हुए पाया कि पब्लिक स्कूल में अन्य दो प्रकार के विद्यालयों के अध्यापकों की अपेक्षा गृहपति का ज्यादा प्रभाव होता था। अब्दुलगफ्फार (1971) ने उच्च माध्यमिक विद्यालयों में स्टार्स और कक्षा प्रतिनिधियों का नेतृत्व के गुणों की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि मानविकी दल की बालिकाओं के अलावा स्टार्स (बालक और बालिकाएँ) कई कार्यों में छात्र प्रतिनिधियों से श्रेष्ठ थे। दवे (1972) ने राजकीय और अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों में निर्णयान्वयन सम्बन्धी कामों में अध्यापकों के सहयोग पर एक अध्ययन किया। परिणाम स्वरूप ज्ञात हुआ कि राजकीय विद्यालयों में बजट बनाने में अध्यापकों का सहयोग नहीं लिया जाता। विद्यार्थियों की भर्ती के सम्बन्ध में भी राजकीय और अराजकीय विद्यालयों में क्रमशः 77 प्रतिशत और 72 प्रतिशत निर्णय प्रधानाध्यापक द्वारा लिए जाते थे। केवल 25 प्रतिशत मामले, जैसे पुस्तकालय व्यवस्था, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि में प्रधानाध्यापक अपने सहायक अध्यापकों की राय लेते थे।

(ख) सहगामी प्रवृत्तियाँ : इन प्रवृत्तियों के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ताओं ने पुस्तकालय व्यवस्था, खेल व शारीरिक शिक्षा व्यवस्था और इन व्यवस्थाओं के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति को प्रमुख मान कर शोध अध्ययन किया। श्रीमती सक्सेना (1971) ने माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों और राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान के तत्वाधान में बोहरा (1973) ने उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुस्तकालयों का अध्ययन किया। श्रीमती सक्सेना ने ज्ञात किया कि केवल 38 प्रतिशत विद्यालयों में पुस्तकालय अच्छी स्थिति में थे। 88 प्रतिशत विद्यालयों में पुस्तकों की संख्या पर्याप्त थी, किन्तु बैठने की व्यवस्था ठीक नहीं थी। केवल 3 प्रतिशत विद्यालय ही ऐसे थे जिनमें प्रशिक्षित स्नातक पुस्तकालयाध्यक्ष थे और पुस्तकों का वर्गीकरण किया हुआ था। सत्र 1969-70 के आँकड़ों के अनुसार बालकों द्वारा पढ़ी जाने वाली पुस्तकों की वार्षिक औसत संख्या 5 थी। 56 प्रतिशत छात्र केवल कहानी की पुस्तकें ही पढ़ते थे। बोहरा ने ज्ञात किया कि उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुस्तकालयों में औसत 1130 पुस्तकें उपलब्ध थीं। सर्वाधिक पुस्तकें हिन्दी भाषा में थीं। बाल-साहित्य पर 47·1 प्रतिशत, विज्ञान पर 5·5 प्रतिशत और शेष पुस्तकें अन्य विषयों की थीं। पुस्तकालय की दृष्टि से अलग कमरा केवल 32 प्रतिशत विद्यालयों में था। चल पुस्तकालयों की सुविधा केवल 10 विद्यालयों को उपलब्ध थी। प्रति विद्यालय वर्षभर में औसत 24 छात्र ही पुस्तकालय का लाभ लेते थे। 92·3 प्रतिशत विद्यालयों में दैनिक समाचार पत्र आते थे।

उपाध्याय (1973) ने उच्च माध्यमिक विद्यालयों में खेल एवं शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों का प्रशासन और व्यवस्था की दृष्टि से अध्ययन किया और निष्कर्ष के रूप में यह पाया कि विद्यालयों में खेल-कूद का सामान अपर्याप्त था और विद्यार्थियों के लिये शारीरिक शिक्षा सुविधाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इस सम्बन्ध में अभिभावकों की वृत्ति भी उदासीन पाई गई।

मुप्ता (1970) ने विद्यालय व्यवस्था के विभिन्न पक्षों, यथा–पुस्तकालय, कक्षा-शिक्षण, गृह-कार्य, पाठ्यसामग्री आदि के प्रति ग्रामीण व शहरी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति की जानकारी की और पाया कि दोनों ही क्षेत्रों के बालक-बालिकाओं की अभिवृत्ति इनकी ओर अनुकूल थी। इसी अध्ययन में यह भी पाया गया कि छात्राओं की तुलना में छात्रों की अभिवृत्ति अध्यापकों के प्रति कम अनुकूल थी।

(ग) विद्यालयी उपलब्धियाँ : विद्यालय व्यवस्था के अन्तर्गत तय किए गए लक्ष्यों की प्राप्ति की स्थिति का अध्ययन करके शर्मा (1966) ने उदयपुर शहर के एक विद्यालय का प्रकरण अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि शिक्षकों की अभिवृत्ति एवं छात्रों और शिक्षकों के पारस्परिक सम्बन्धों की मधुरता इस दिशा में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तोषनीवाल (1968) ने अकादमिक दृष्टि से उच्च और निम्न उपलब्धियों वाले विद्यालयों का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि उच्च उपलब्धि प्राप्त करने वाले विद्यालयों में भौतिक साधन-सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थीं, शिक्षकों को अच्छा वेतन मिलता था। उन विद्यालयों में सामाजिक वातावरण, उपचारात्मक कक्षाएँ, गृहकार्य आदि पर विशेष ध्यान दिया जाता था। सरोजनी देवी (1971) ने एक आवासीय विद्यालय में अध्ययन करने वाली छात्राओं की शैक्षिक संप्राप्ति, उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं तथा मनोकामनाओं का अध्ययन किया और ज्ञात किया कि जो छात्राएँ छात्रावास में अधिक समय से रह रही हैं, उनकी शैक्षिक सम्प्राप्ति अपेक्षाकृत उच्च स्तरीय होती है। अध्ययन के निष्कर्षों में यह भी पाया गया कि कुछेक गुणों जैसे—अन्तर्मुखीपन, बहिर्मुखीपन, बुद्धि, संवेगात्मक स्थिरता, विवेक आदि पर आवासीय विद्यालय में अध्ययन करने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो मनोकामनाएँ छात्राओं की छात्रावास में प्रवेश लेते समय होती हैं, वे ही अन्त तक रहती हैं।

पारस्परिक सम्बन्ध

विद्यालय व्यवस्था के अन्तर्गत पारस्परिक सम्बन्धों के क्षेत्र में जो शोध-अध्ययन उपलब्ध हैं, उनमें से एक पीएच.डी. स्तर का है। शर्मा (1969) ने अपनी पीएच.डी. शोध-प्रायोजना में राजस्थान के बहु उद्देशीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में अध्ययन किया। इस अध्ययन में प्राक्कल्पना के आधार पर सहकारी, तटस्थ और प्रतिरोधी विद्यालयों की व्याख्या करते हुए, जिला शिक्षा अधिकारियों से उनके क्षेत्र के ऐसे विद्यालयों के बारे में जानकारी प्राप्त की गई और राज्य में उपर्युक्त प्रत्येक श्रेणी के दो-दो विद्यालयों का चयन किया गया। 'बेल्स केटेगरी सिस्टम' (Bales Category System) के आधार पर उन विद्यालयों के अध्यापकों के पारस्परिक सम्बन्धों, उनकी औपचारिक व अनौपचारिक प्रतिष्ठा, समूहों का निर्माण और व्यावहारिक प्रतिमानों का गहन अध्ययन किया गवा। शर्मा ने निष्कर्ष निकाला कि प्रधानाध्यापकों की प्रतिष्ठा का ऊँचा या कम होना उनकी अनौपचारिक प्रतिष्ठा पर निर्भर करता है। जब अध्यापकों या प्रधानाध्यापकों के अपेक्षित कार्यकलापों और वास्तविक कार्यकलापों में सामंजस्य नहीं होता, तभी स्टाफ के सदस्यों में शंकाएँ और झगड़े उत्पन्न होते हैं। शुक्ला (1964) ने उदयपुर शहर के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में प्रधानाध्यापकों व अध्यापकों

के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया और पाया कि पारस्परिक सम्बन्धों का मूल आधार प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व है। नारंग (1966) ने जयपुर के एक बड़े बहुउद्देशीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में संप्रेषणीयता के माध्यमों का अध्ययन करते हुए पाया कि संप्रेषण माध्यमों में अध्यापकों की बैठकों का एक प्रमुख स्थान था। वर्मा (1968) के अनुसार दो पारी विद्यालयों में पारस्परिक सम्बन्ध इतने अच्छे नहीं थे, जितने कि एक पारी विद्यालयों में। एक पारी विद्यालयों में सम्प्रेषण-व्यवस्था सीधी होने से पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे थे। शिक्षक समितियों के गठन पर अध्ययन करके सक्सेना (1972) ने मालूम किया कि उनके संगठन, कार्यप्रणाली, संविधान, पारस्परिक सम्बन्धों आदि में सुस्पष्टता नहीं थी। निर्णयान्वयन और संचालन दोनों स्तरों पर सहयोग का अभाव था जिसके कारण ये समितियाँ न तो विद्यालय में सुदृढ़ वातावरण बना पाती थीं, न ही शैक्षिक चिन्तन कर पाती थीं।

विद्यालय प्रशासन एवं उसकी समस्याएँ

शोध अध्ययनों की दृष्टि से राज्य में यह पक्ष शोधकर्ताओं को सर्वाधिक प्रिय रहा प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में अब तक 10 शोध-अध्ययन किए जा चुके हैं, जिनमें अनुसंधानकर्ताओं ने शैक्षिक परिवीक्षण, प्रशासनिक समस्याएँ, छात्रों का भगोड़ापन और उनकी विद्यालय में अनुपस्थिति के कारणों का अध्ययन किया है। इन शोध-अध्ययनों में एक अध्ययन संस्थान स्तर पर व शेष नौ एम. एड. के विद्यार्थियों द्वारा सम्पादित किए गए।

गहलोत (1965) और चौहान (1970) ने उच्च माध्यमिक व माध्यमिक विद्यालयों में शैक्षिक परिवीक्षण का अध्ययन किया। अपने प्रकरण-अध्ययन में गहलोत ने पाया कि शैक्षिक परिवीक्षण का कार्यक्रम व्यावसायिक उन्नति की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। चौहान ने उदयपुर के दस माध्यमिक विद्यालयों के सम्बन्ध में पाया कि विद्यालयों में दैनिक कार्य के परिवीक्षण के लिए प्रधानाध्यापकों को बहुत कम समय मिल पाता था और वे इस कार्य को साधारणतः अपने प्रथम सहायक को सौंप देते थे। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि विद्यालयों में परिवीक्षण का रेकार्ड नहीं रखा जाता था और अनुवर्तन कार्य भी नहीं सुझाए जाते थे।

चेतनस्वरूप (1970) ने बालकों के भगोड़ेपन तथा शर्मा (1972) ने छात्रों के विद्यालय में अनुपस्थित रहने के कारणों का अध्ययन किया। चेतनस्वरूप ने पाया कि भगोड़ेपन और छात्रों की बुद्धि में कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं है, लेकिन भगोड़ेपन और सामाजिक-आर्थिक स्तर में सार्थक सम्बन्ध है। विद्यार्थियों का विद्यालयी वातावरण के साथ सामंजस्य नहीं होना भगोड़ेपन का एक प्रमुख कारण था। शर्मा के अध्ययन के अनुसार विद्यालयों में बालकों का उपस्थित नहीं रहने में उनके घरेलू वातावरण का प्रभाव होता है। उसका दुष्प्रभाव बालिकाओं की अपेक्षा बालकों पर अधिक पड़ता है। आर्थिक और सामाजिक स्तर की समस्याएँ भी बालकों की विद्यालय में अनुपस्थिति का प्रमुख कारण थीं। त्रिवेदी (1957), कमल (1963), सूद (1964), जैन (1969) और

भारद्वाज (1966) ने राजकीय और अराजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों की प्रशासनिक समस्याओं का अध्ययन किया और पाया कि राजकीय विद्यालयों में कार्यरत अध्यापकों की समस्याएँ अराजकीय विद्यालयों में कार्य करने वाले अध्यापकों की अपेक्षा अधिक थीं। अराजकीय विद्यालयों में शिक्षण-स्तर अपेक्षाकृत ऊँचा था और इन विद्यालयों में अध्यापकों की समस्याएँ अधिकतर उनके व्यवस्थापकों से सम्बद्ध थीं। अमरजीत-सिंह (1963) ने सरकारी विद्यालयों के उद्देश्यों का अध्ययन करके मालूम किया कि विभाग का लक्ष्य विद्यालय के माध्यम से उस इलाके में शैक्षिक उत्प्रेरण पैदा करने का होता है। प्रधानाध्यापकों की नजर में, बोर्ड की परीक्षाओं में अपना परीक्षा-फल उन्नत करने का लक्ष्य होता है। अधिकारों का प्रत्यायोजन प्रधानाध्यापक में होता है और वह शैक्षिक निर्णय भी स्वयं तक सीमित रखता है। उन विद्यालयों में असन्तोष की स्थिति अध्यापकों, छात्रों और स्वयं प्रधानाध्यापक में भी मौजूद थी।

वर्मा (1968) ने एक पारी व दो पारी में चलाए जा रहे दो-दो विद्यालयों का, समन्वय व सम्प्रेषणीयता की समस्याओं की दृष्टि से, अध्ययन किया और ज्ञात किया कि एक पारी व्यवस्था में अध्यापकों पर कार्यभार अधिक पड़ता है। दो पारी विद्यालयों में अध्यापकों की बैठकें कम होती हैं और कम संख्या में अध्यापकगण विद्यालयी कार्यकलापों में उत्साह प्रदर्शित करते हैं। द्विसंकायी तथा बहुसंकायी विद्यालयों के तुलनात्मक अध्ययन में प्रह्लादनारायणसिंह (1971) ने पाया कि बहुसंकायी विद्यालयों में व्यवस्था सम्बन्धी समस्याएँ प्रखरतर थीं, और शिक्षक अप्रशिक्षित। न तो वहाँ व्यावसायिक कार्यों की योजना थी, न छात्र औद्योगिक या व्यावसायिक कार्यों में रुचि रखते थे। द्विसंकायी विद्यालयों में विज्ञान शिक्षकों का कार्यभार ज्यादा पाया गया और दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में प्रयोगशाला का अभाव। 89 प्रतिशत मामलों में भवन, स्थान, उपकरण और वित्तीय समस्याएँ प्रमुख थीं; शैक्षिक समस्याओं की स्थिति 72 प्रतिशत थी।

राजस्थान राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ने विद्यालय-व्यवस्था के संदर्भ में जो अध्ययन किया है, वह है प्रहर पाठशाला का प्रयोग। प्रहर पाठशाला में प्रयास किया गया कि विद्यालयों को राज्य सरकार द्वारा निर्धारित समय पर ही न चला कर, समुदाय की आवश्यकतानुसार दिन में किसी भी समय एक प्रहर तक चलाया जाए और यह जाँचा जाए कि प्रारम्भिक विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों एवं प्रहर पाठशालाओं में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की उपलब्धियों में क्या अन्तर है। निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया कि इन दोनों व्यवस्थाओं में पढ़ने वाले छात्रों की विकासात्मक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं आता और विद्यालय-व्ययस्था के अन्तर्गत प्रहर पाठशालाओं को एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में स्वीकारा जा सकता है।

सम्भावनाएँ और सुझाव

शिक्षा के प्रसार एवं साधन सुविधाओं के अत्यधिक विस्तार के उपरान्त भी इस क्षेत्र में जो शोध अध्ययन हुए हैं, उनकी संख्या सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती।

विद्यालय-व्यवस्था के जिन क्षेत्रों में कार्य किया गया है, उनमें भी अभी शोध की दृष्टि से बहुत कुछ किया जा सकता है। साथ ही इन क्षेत्रों के अतिरिक्त भी विद्यालयी व्यवस्था के बहुत से ऐसे पक्ष हैं जिन पर शोधकर्ताओं का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है या किन्हीं कारणों से उन पक्षों को छुआ ही नहीं गया है। ये महत्वपूर्ण पक्ष विद्यालय भवन, विद्यालयों की भौतिक साधन-सुविधाएँ, विद्यालय समुदाय के घटकों का परस्पर सहसम्बन्ध, विद्यालयों में अनुरंजनात्मक सुविधाएँ, अध्यापकों का कार्य-भार, विद्यालयी स्वास्थ्य सेवाएँ, अभिभावक-शिक्षक सहसम्बन्ध आदि हैं। इन पक्षों पर अध्ययन किए जाने से विद्यालयी-व्यवस्था से सम्बन्धित वस्तुस्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है, जिनके आधार पर विद्यालयी कार्यक्रमों को शिक्षा में उन्नयन की दृष्टि से अधिक उपयोगी और प्रभावी बनाया जा सकता हैं।

व्यवस्था पक्ष में निजी संस्थाओं की तरह राजकीय संस्थाओं को भी आद्यन्त विद्यालय (कक्षा I से कक्षा XI तक पूरा एक साथ) बनाया जाए तो उनकी सम्प्राप्ति और समस्याएँ क्या रहेंगी—इस दिशा में प्रयोगात्मक कार्य करने की आवश्यकता है। स्तरवार अलगाव का प्रभाव आँकना, शिक्षकों में वेतनवार विभेदीकरण का औचित्य या अनौचित्य खोजना, शक्ति नियोजन और अधिकारों के प्रत्यायोजन की बारीकियों का सर्वेक्षण, समय विभाग चक्र और विषयवार समयानुपात का नई परिस्थितियों में पुनरीक्षण, शिक्षकों के कार्यभार की व्याख्या तथा अन्य व्यवसायों से उसकी तुलना आदि ऐसे प्रसंग हैं जो इस क्षेत्र में अनुसंधान/प्रयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मात्र छिद्रान्वेषण करने से कहीं बेहतर होगा कि कुछ रचनात्मक प्रयोग किए जाएँ और उनके आधार से परिवर्तन की दिशाएँ खोली जाएँ।

संदर्भांकित अनुसंधान

अब्दुलगफ्फार : A Comparative Study of Leadership Functions Performed by the Representatives and Stars of the Higher Secondary Classes, M. Ed., Raj. Uni., 1971

अमरजीतसिंह : A Study of the Administrative Set-up of a Govt, Higher Secondary School at Udaipur, M. Ed., Raj. Uni., 1963

उपाध्याय, विनोदचन्द्र : **उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में खेलकूद एवं शारीरिक शिक्षा का प्रशासन एवं संगठन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1973

कमल, केवलकृष्ण : A Study of the Administrative Set-up of a Privately Managed High School of Udaipur, M. Ed., Raj. Uni., 1963

गहलोत, नाहरसिंह : A Case Study of the Programme of Instructional Supervision in Vidya Bhawan M.P.H. S. School Udaipur, M. Ed., Udaipur Uni., 1965

गुप्ता, रमेशचन्द्र : **विद्यालय के विभिन्न पक्षों के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति,** एम. एड., राज. वि. बि., 1970

चेतनस्वरूप : A Study of the Causes of Truancy in IX Class Boys Reading in Higher Secondary Schools of Jodhpur, M. Ed., Jodhpur Uni., 1970

चौहान, उदयसिंह : A Study of the Instructional Supervision in Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1970

जैन, कुन्दनलाल : The Role of Student Unions in the Higher Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

जैन, बाबूलाल : A Comparative Study of the Administrative Problems of Government and Privately Managed Secondary and Higher Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1969

तोषनीवाल, घनश्यामलाल : A Study of Factors Differentiating Academically High and Low Achieving Schools, M. Ed., Udaipur Uni., 1968

त्रिवेदी, जी. एस. : Some Problems of Administration of High Schools in Udaipur, M. Ed., Raj. Uni., 1957

दवे, अमृतलाल बी. : Teacher-Participation in Decision-Making in Higher Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1972

नारंग, वेदस्वरूप : A Study of Communication Channels in a Large Multipurpose School, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

नृसिंहदास : **उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत छात्र संसदों का अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1973

प्रह्लादनारायणसिंह : **उदयपुर क्षेत्र की द्विसंकाय एवं बहुसंकाय उच्च माध्यमिक विद्यालयों में प्रशासनिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1971

बोहरा, देवराज : **राजस्थान में उच्च प्राथमिक विद्यालयों के पुस्तकालयों की स्थिति,** राज्य शिक्षा संस्थान, 1973

भारद्वाज, इन्दिरा : A Comparative Study of the Administrative Problems of the Teachers Working in Govt. and Privately Managed Secondary and Higher Secondary Schools of Udaipur City, M. Ed., Udaipur Uni., 1966

माथुर, छैलबिहारी : An Investigation into the Functioning of Staff Councils in the Secondary Schools of Udaipur,
M. Ed., Raj. Uni., 1963

मिश्र, कपिलदेव : Case Study of Institutional Planning in a School,
M. Ed., Raj. Uni., 1974

वर्मा, पन्नालाल : A Study of Problems of Coordination and Communication in Double-shift and Single-shift Schools,
M. Ed., Udaipur Uni., 1968

शर्मा, केदारनाथ : A Case Study of a Multipurpose Higher Secondary School of Udaipur,
M. Ed., Udaipur Uni., 1966

शर्मा, जगदीशदत्त : A Critical Appraisal of the Implementation of School Improvement Plans in Rajasthan,
SIE., Udaipur, 1974

शर्मा, लालचन्द : सामाजिक-आर्थिक स्तर, बुद्धि और लिंग भेद के सन्दर्भ में शालाओं में अनुपस्थिति के कारणों का अध्ययन एवं इसका निष्पत्ति पर प्रभाव,
एम. एड., राज. वि. वि., 1972

शर्मा, शिवकुमार : A Study of the Staff Relations in the Multi-purpose Higher Secondary Schools of Rajasthan,
Ph. D. (Ed.), Udaipur Uni., 1969

शुक्ला, के.सी. : The Pattern of Relationship between the Head and the Members of the Staff in two Higher Secondary Schools of Udaipur,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

सक्सेना, राज्यश्री : Functioning of the Teachers Councils in the Girls Secondary and Higher Secondary Schools,
M. Ed., Raj. Uni., 1972

सक्सेना, स्वराज्यदेवी : बीकानेर मण्डल के माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों की कार्य-व्यवस्था का अध्ययन,
एम. एड., राज. वि. वि., 1971

सरोजनीदेवी : आवासीय विद्यालय में अध्ययन करने वाली छात्राओं की शैक्षिक संप्राप्ति, व्यक्तित्व की विशेषताओं तथा मनोकामनाओं का अध्ययन,
एम.एड., राज. वि.वि., 1971

सूद, जे.ओ.के. : Sharing of Responsibilities in School Organisation,
M. Ed., Raj. Uni., 1964

□

समाज शिक्षा

□ मोहम्मद हुसैन

समाज शिक्षा देश के नागरिकों में राजनैतिक एवं आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना जागृत करने, उनको अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति सजग करने का एक सशक्त माध्यम हैं। प्रजातन्त्र को सुदृढ़ करके देश को समृद्धिशाली एवं शक्तिशाली बनाने में यह कार्यक्रम काफी सहायक हो सकता है। राजस्थान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के साथ ही यह कार्यक्रम योजनाबद्ध तरीके से आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम इसका आरम्भ प्रौढ़-साक्षरता अभियान के रूप में हुआ। प्रौढ़-साक्षरता से प्रौढ़-शिक्षा तथा उसके पश्चात् समाज-शिक्षा के रूप में यह कार्यक्रम व्यापक एवं विस्तृत होता चला गया और कई नई संकल्पनाएँ उभर कर आईं। प्रौढ़-साक्षरता, प्रौढ़-शिक्षा, व्यावहारिक साक्षरता, सामुदायिक शिक्षा, सतत शिक्षा, अनवरत शिक्षा, किसान क्रियात्मक साक्षरता, अनौपचारिक शिक्षा, आजीवन शिक्षा आदि सभी संप्रत्यय समाज शिक्षा के क्षेत्र में समाहित हैं और इसके महत्व एवं इसकी उपादेयता में उत्तरोत्तर वृद्धि के परिचायक हैं।

राष्ट्रीय स्तर के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम के स्वरूप, संगठन, प्रबल एवं दुर्बल पक्षों की समीक्षा, समालोचना एवं सर्वेक्षण करके इसके सुकर संयोजन हेतु उपाय सुझाना अनुसंधानकर्ताओं का एक पुनीत कर्त्तव्य हैं।

आलोच्य अवधि में राजस्थान में समाज शिक्षा के क्षेत्र में कुल 12 अनुसंधान उपलब्ध हैं जिनमें से चार एम.एड. स्तर के, चार एम.ए.(ग्रामीण समाज शास्त्र)के, एक अधिस्नातक प्रौढ़-शिक्षा एवं तीन प्रौढ़ स्नातक उपाधि के लिए किए गए थे। इनमें से छह शोधकार्य प्रौढ़-साक्षरता एवं छह समाज शिक्षा का अध्ययन करने हेतु किए गए। ये शोधकार्य सर्वेक्षण और प्रकरण अध्ययन की विधा पर आधारित हैं। अधिकांश शोध कार्यों में प्रश्नोत्तरी, साक्षात्कार प्रपत्र एवं अवलोकन-प्रपत्रों का उपयोग किया गया है। न्यादर्श ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही परिवेशों से लिए गए हैं, परन्तु उनका आकार बहुत ही छोटा है। न्यादर्श के छोटे आकार तथा समस्याओं की विविधता के कारण किसी प्रकार का सामान्यीकरण अथवा प्रवृत्ति-निरूपण सुसंगत प्रतीत नहीं होता। अतः प्रौढ़-साक्षरता एवं समाज शिक्षा से सम्बद्ध इन शोध कार्यों का अलग-अलग विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत है ताकि स्थानीय प्रवृत्ति का निरूपण हो सके तथा भावी शोधकार्यों के लिए दिशा-निर्देश हो सके।

प्रौढ़-साक्षरता कार्यक्रम की समीक्षा सम्बन्धी शोधकार्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सामान्यतया यह कार्यक्रम सफलतापूर्वक नहीं चल पा रहा है। इन शोध-कार्यों से यह भी ज्ञात होता है कि इस कार्यक्रम के सफल संचालन में इसके प्रति प्रौढ़ों की उदासीनता एवं उत्प्रेरणा का अभाव (शर्मा 1972), कार्यरत शिक्षकों की उदा-सीनता, प्रोत्साहन राशि का न मिलना (शर्मा 1972, रामावत 1974, मिश्रा 1974), अपर्याप्त प्रचार-प्रसार एवं सम्बन्धित अधिकारियों की उदासीनता, सहयोग एवं समन्वय का अभाव, केन्द्रों पर साधन सुविधाओं (शिक्षण सहायक सामग्री) का अभाव एवं शिक्षण विधियों की अनुपयुक्तता (शर्मा 1972, मिश्रा 1974, रामावत 1974), मुख्य रूप से बाधक कारण हैं। महिला प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों पर उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त पुराने रीतिरिवाज, रूढ़ियाँ, ससुराल पक्ष की प्रतिकूल मनोवृत्ति, बच्चों की देखरेख की समस्या एवं नव विवाहिताओं की पीहर तथा ससुराल के बीच आवाजाही आदि बाधक तत्त्व हैं (मिश्रा 1974)। अधिक आयुवर्ग के प्रौढ़ों में बीच में ही अध्ययन छोड़ देने की प्रवृत्ति अधिक हैं। जाति-वर्ग के अन्तर का इस प्रवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं है (जैन 1972)। जैन (1972) के ही अनुसार अधिकांश प्रौढ़ अपना हिसाब-किताब रखने एवं धार्मिक पुस्तकें पढ़ने की योग्यता में वृद्धि करने हेतु प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों में अध्ययन करते हैं। सिसोदिया (1972) ने ज्ञात किया है कि रात्रि महाविद्यालयों में अध्ययन-रत प्रौढ़ अपनी आय बढ़ाने एवं जीवन स्तर ऊँचा उठाने हेतु अध्ययन करते हैं। योगी (1974) ने अपने शोधकार्य में निष्कर्ष निकाला है कि प्रौढ़-शिक्षा कार्यक्रम शिक्षा के प्रति रुचि जागृत करने तथा सामाजिक बुराइयों को दूर करने में सहायक हो सकता है।

समाज शिक्षा के क्षेत्र में सम्पादित शोधकार्यों में से एक समाज शिक्षा के प्रति कार्यकर्ताओं की धारणाओं एवं दृष्टिकोण पर (बिश्नोई 1964), एक समाज शिक्षा के अन्तर्गत संचालित पुस्तकालयों के सदस्यों की रुचियों पर (सिंह 1965), और चार समाज शिक्षा कार्यक्रमों के अन्तर्गत मूल्यांकन एवं समीक्षा से सम्बन्धित है (सिरोहिया 1957, व्यास 1970, शर्मा 1964, कर्णावट 1954)। बिश्नोई (1964) के अनुसार समाज शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न कार्यकर्ता इस कार्यक्रम की धारणा, संकल्पना, उद्देश्यों एवं उपादेयता के बारे में न तो स्पष्ट हैं और न ही एकमत। ये कार्यकर्ता अपने व्यवसाय से असन्तुष्ट एवं कर्त्तव्यों के प्रति उदासीन भी हैं। सिंह (1965) ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि कम आयु एवं अधिक शैक्षिक योग्यता प्राप्त प्रौढ़ पुस्तकालयों में नियमित रूप से उपस्थित रहते हैं, वे राष्ट्रीय समाचारों को प्राथ-मिकता देते हैं एवं धार्मिक पुस्तकों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य के प्रति अधिक रुचि रखते हैं। यह अध्ययन बिहार राज्य के प्रौढ़ों पर आधारित है। राजस्थान की पृष्ठ-भूमि में कदाचित भिन्नता पाई जा सकती है। जिन चार शोध कार्यों में समाज शिक्षा की समीक्षा एवं उसका मूल्यांकन किया गया है उनके विश्लेषण से ज्ञात होता है कि युवक मण्डल, सामुदायिक केन्द्र एवं पुस्तकालय सेवा सामान्यतः सफलतापूर्वक चल रहे हैं। (सिरोहिया 1957, शर्मा 1964)। सभी शोधकार्य इस ओर इंगित करते हैं कि समाज शिक्षा कार्यक्रम कुल मिलाकर सुचारु रूप से संचालित नहीं हो पा रहा है।

इन शोधकार्यों के अनुसार इस कार्यक्रम के सफल संचालन में व्यापक आवश्यकतापरक सर्वेक्षण का अभाव, प्रचार-प्रसार एवं व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव (व्यास 1970), शिक्षा विभाग, पंचायत समितियों एवं अन्य कार्यकर्त्ताओं के बीच सहयोग एवं समन्वय का अभाव (सिरोहिया 1957, कर्णावट 1954, बिश्नोई 1964) बाधक हैं। शिक्षकों को प्रोत्साहन देने एवं निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं का दल तैयार करने (शर्मा 1964) तथा प्रौढ़ों को उत्प्रेरित करने हेतु विभिन्न औपचारिक एवं अनौपचारिक तथा राजकीय एवं अराजकीय संस्थाओं द्वारा सम्मिलित प्रयास किए जाने की भी आवश्यकता है (व्यास 1970, कर्णावट 1954)।

संभावनाएँ एवं सुझाव

उपरोक्त शोधकार्यों से दो बातें स्पष्ट रूप से उभरती हैं। एक तो यह कि समाज शिक्षा के प्रति सही दृष्टिकोण एवं उत्प्रेरणा का अभाव है, और दूसरे यह कि यह कार्यक्रम सुचारु रूप से नहीं चल पा रहा है। इसके सफल क्रियान्वयन के लिए उपरोक्त दोषों के निराकरण की आवश्यकता है।

जहाँ तक प्रौढ़-साक्षरता पर अनुसंधान का प्रश्न है, इसके कई पक्ष अभी तक अछूते हैं। राजस्थान में चल रहे प्रौढ़-साक्षरता-केन्द्रों की संख्या, स्वरूप, संगठन, अब तक साक्षर किए गए प्रौढ़ों की संख्या, उनके लिए संचालित अनुवर्तन-कार्यक्रम का स्वरूप एवं संगठन, सफलतापूर्वक संचालित प्रौढ़-साक्षरता-केन्द्रों के प्रभावी घटक एवं असफल केन्द्रों के बाधक तत्त्वों आदि के बारे में राजस्थान व्यापी न्यादर्श के आधार पर तथ्यों को प्रकाश में लाने की आवश्यकता हैं। इसी प्रकार, प्रौढ़-साक्षरता पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण विधियों एवं आवश्यक साधन-सुविधाओं आदि की उपयुक्तता एवं प्रभावशीलता के बारे में प्रयोग, परीक्षण एवं सर्वेक्षण की भी नितान्त आवश्यकता है। प्रौढ़-साक्षरता-केन्द्रों के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापकों को विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान करने, उनको विशेष भत्ता देने, प्रोत्साहन देने, प्रौढ़ों को अध्ययन के लिए उत्प्रेरित करने हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार एवं व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करने के साथ-साथ संबंधित विभागों एवं कार्यकर्ताओं में आपसी सहयोग एवं समन्वय स्थापित किया जाए।

समाज शिक्षा कार्यक्रम के सफल संचालन के लिए प्रौढ़ों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों एवं आकांक्षाओं तथा इनको प्रभावित करने वाले घटकों, यथा–लिंग, जाति, आयु, आय-वर्ग, व्यवसाय, ग्रामीण एवं शहरी परिवेश का सर्वेक्षण करना जरूरी है। प्रौढ़ों को उत्प्रेरित करने की विधियाँ क्या हों, उनकी आशाओं एवं अपेक्षाओं में अभिवृद्धि करने पर समाज को इसका क्या मूल्य देना होगा, प्रौढ़ों की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं आर्थिक वंचनाओं का निराकरण कैसे हो, आदि प्रश्नों के उत्तर जानना भी आवश्यक है। समाज शिक्षा का इतिहास, सामाजिक एवं दार्शनिक आधार और मूल संकल्पना का सैद्धान्तिक विश्लेषण करने के साथ ही कार्यक्रमों की स्पष्ट रूपरेखा, पाठ्यक्रम एवं विषय वस्तु का निर्धारण तथा प्रयोग और परीक्षण की भी आवश्यकता है। समाज शिक्षा से सम्बन्धित राजकीय एवं अराजकीय संस्थाओं के स्वरूप, संगठन तथा

उनके प्रबल एवं दुर्बल पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करने के साथ ही कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का स्वरूप, उनकी योग्यताओं, विशेषताओं एवं मनोवृत्तियों का निर्धारण भी किया जाना है। समाज शिक्षा प्रदान करने की प्राचीन पद्धतियाँ एवं रीतियाँ, आज की वैज्ञानिक तकनीक के साथ उनका समायोजन, समाज शिक्षा की शब्दावली, लिपि, शब्द-चयन, साहित्य का स्वरूप, प्रकाशन-तकनीक आदि के बारे में प्रयोग एवं परीक्षण करना आवश्यक है। शिक्षण में सहायक सामग्री, यथा-चित्रों, चलचित्रों, कार्टूनों, कठपुतलियों, नाटिकाओं, रेडियो, टेलीविजन एवं अभिक्रमित अध्ययन सामग्री की प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन तथा इन कार्यक्रमों को जीवन के क्रियात्मक पक्षों से जोड़ने तथा सामुदायिक शिक्षा का रूप देने के सम्बन्ध में प्रयोग किए जाने चाहिए। नवीन संकल्पनाओं, यथा–अनौपचारिक शिक्षा, आजीवन शिक्षा, सतत शिक्षा आदि के सम्बन्ध में पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, प्रवृत्तियों एवं पद्धतियों के क्रियान्वयन के अध्ययनों को भी समाज शिक्षा के वृहत्तर क्षेत्र में सम्मिलित किया जा सकता है।

यहाँ यह संकेत करना आवश्यक है कि जहाँ एक ओर उपाधि प्राप्त करने वाले शोध-छात्रों को इस क्षेत्र में अनुसंधान के लिए उत्प्रेरित करने की आवश्यकता है, वहाँ संस्थागत एवं प्रायोजनान्तर्गत अनुसंधान-कार्यों को उचित प्रोत्साहन एवं अनुदान प्रदान करके, इन पक्षों पर तथ्यात्मक सूचनाएँ एकत्रित करवाकर, उन्हें समाज शिक्षा से संबद्ध संस्थाओं एवं कार्यकर्त्ताओं को उपलब्ध कराना भी आवश्यक होगा।

संदर्भांकित अनुसंधान

कर्णावट, कानसिंह : A Plan of Social Education for Rajasthan, M. Ed., Raj. Uni., 1954

जैन, एम. एल. : A Study of Factors of Continuity and Drop-outs in Three Rural Adult Literacy Centres, M. A. (Sociolgy), Udaipur Uni., 1972

विश्नोई, एन. एल. : Social Education as Perceived by Block Functionaries, M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1964

मिश्रा, शकुन्तला : **बीकानेर नगर में प्रवर्तमान प्रौढ़ महिला साक्षरता कार्यक्रम (संगठन, शिक्षण पद्धति एवं सामग्री) का संधानात्मक अध्ययन,** एम.एड., राज. वि.वि., 1974

योगी, जी. पी. : Aspirations towards Education of the Guardians in Scheduled Castes, B. A. (Adult Edu.), Raj. Uni., 1974

रामावत, मंगलचन्द : **विद्यालय निरीक्षक अजमेर द्वारा परिचालित 'रात्रि विद्यालय परियोजना' का आलोचनात्मक अध्ययन,** एम. एड., राज. वि. वि., 1974

व्यास, जी.डी. : A Study of Adult Education Programme in Bikaner City,
B. A. (Adult Edu.), Raj. Uni., 1970

शर्मा, एच.एन. : Adult Literacy Programme in Panchayat Samiti, Bandikui,
B. A. (Adult Edu.), Raj. Uni., 1972

शर्मा, टी.सी. : Evaluation of Social Education Programme in Badgaon Block,
M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1964

सिरोहिया, जगतसिंह : Critical Appraisal of Social Education Programme,
M. Ed., Raj. Uni., 1957

सिसोदिया, शान्ता : A Study of the Level of Aspiration of Students in the Night Colleges,
B. A. (Adult Edu.), Raj. Uni., 1972

सिंह, आ. ए. पी. : Reading Interests of the Members of Five Village Libraries in Bihar,
M. A. (Sociology), Udaipur Uni., 1965

□

परिचय

श्री इन्द्रजीत खन्ना : जन्म 1943, दिल्ली; सीनियर केम्ब्रिज, एम. एससी. (गणित), जर्मन भाषा में डिप्लोमा प्राप्त; भारतीय प्रशासनिक सेवा में 1966 में चयित, तब से विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्यरत; 1975 में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान के अध्यक्ष रहे, राजस्थान में शिक्षा पर उच्चस्तरीय समिति (1975) के सदस्य-सचिव, शिक्षा पर उच्चस्तरीय समिति प्रतिवेदन के प्रधान सम्पादक, शिक्षा पर कई लेख प्रकाशित तथा अनेक रेडियो वार्ताएँ प्रसारित; सम्प्रति शिविरा एवं नया शिक्षक के प्रधान सम्पादक तथा निदेशक, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, राजस्थान, बीकानेर ।

डा. पन्नालाल वर्मा : जन्म 1934, नागौर जिला; एम. ए. (अंग्रेजी), एम. ए. (संस्कृत), एम. एड. (स्वर्ण पदक विजेता), पीएच. डी. (शिक्षा); अध्यापन का विविध स्तरों का लम्बा अनुभव; 1972 में सेमीनार रीडिंग्स प्रोग्राम के अन्तर्गत पुरस्कृत, एन. सी. ई. आर. टी. प्रायोजना पर एक वर्ष सीनियर रिसर्च फैलो रहे; राज्यस्तरीय, राष्ट्रस्तरीय तथा एशिया स्तरीय शिक्षा-सेमीनारों में भाग लिया – पत्रवाचन किया; विभिन्न पत्रिकाओं में लगभग एक दर्जन शोध लेख तथा शिक्षा पर बीस निबंध प्रकाशित; सम्प्रति अनुसंधान अधिकारी, राज्य शोध प्रकोष्ठ, शिक्षा निदेशालय, बीकानेर ।

श्री रवीन्द्र अग्निहोत्री : जन्म 1937, लखनऊ; एम. ए., एम. एड., तीन परीक्षाओं में विश्वविद्यालय स्वर्ण पदक विजेता; देश की विभिन्न शैक्षिक पत्रिकाओं में लगभग 150 शिक्षा संबंधी लेख प्रकाशित; शिक्षा संबंधी छह पुस्तकें प्रकाशित– चार मौलिक तथा दो अनूदित । 'भारतीय शिक्षा : दशा और दिशा' पर उत्तरप्रदेश सरकार ने 1974-75 में मदनमोहन मालवीय पुरस्कार प्रदान किया; वर्तमान में कतिपय शोध प्रयोजनाओं तथा पीएच. डी. शोध कार्य में संलग्न; सम्प्रति प्राध्याता, शिक्षा महाविद्यालय, वनस्थली विद्यापीठ ।

श्री वीरेन्द्र सभरवाल : जन्म 1936, लाहौर; एम. ए., एम. एड. (स्वर्ण पदक विजेता); शिक्षक-प्रशिक्षण में पाँच वर्ष का अध्यापन अनुभव; देश की विभिन्न शैक्षिक पत्रिकाओं में 13 लेख प्रकाशित; अंग्रेजी शिक्षण में पीएच. डी. शोध कार्य में संलग्न; सम्प्रति प्रवक्ता (शिक्षा), शिक्षा महाविद्यालय, वनस्थली विद्यापीठ।

डा. श्यामलाल कौशिक : जन्म 1929, यू. पी.; एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (अंग्रेजी), एम. एड., पीएच. डी. (शिक्षा); पिछले आठ वर्षों से बी. एड., एम. एड. कक्षाएँ पढ़ाने का अनुभव; अब तक 4 पुस्तकें तथा शिक्षा संबंधी विषयों पर लगभग 150 लेख प्रकाशित; विभिन्न सेमीनारों में पत्रवाचन किया, संदर्भ्य व्यक्ति रहे; 1966 में सेमीनार रीडिंग्स प्रोग्राम के अन्तर्गत पुरस्कृत; सम्प्रति वरिष्ठ प्राख्याता, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर।

श्री पुरुषोत्तमलाल तिवारी : जन्म 1928, उदयपुर जिला, एम. ए., एम. एड.; विविध स्तरों पर अध्यापन का लम्बा अनुभव; हिन्दी भाषा व भाषा-शिक्षण विशेष रुचि का क्षेत्र; इसी विषय के विभिन्न पक्षों पर लगभग 20 लेख प्रकाशित; पिछले 12 वर्षों से एन. सी. ई. आर. टी. तथा रा. शि. सं. द्वारा संचालित शिविरों में संदर्भ्य व्यक्ति; पहली से दसवीं कक्षा तक की राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी पाठ्यपुस्तकों, शिक्षक संदर्शिकाओं तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण की कसौटियों के निर्माण का अनुभव; राजस्थान में तथा एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा प्रकाशित हिन्दी विषय की पाठ्यपुस्तकों के सम्पादन व निर्माण में योगदान; हिन्दी-भाषा शिक्षण से संबंधित 4 पुस्तकें प्रकाशित; सम्प्रति सम्पादक, विभागीय प्रकाशन, शिविरा, बीकानेर।

डा. ओंकारसिंह देवल : जन्म 1931, जोधपुर जिला; एम. ए., एम. एड. (स्वर्ण पदक विजेता), पीएच. डी. (शिक्षा); 1973 में राष्ट्रमंडलीय छात्रवृत्ति के अन्तर्गत अध्ययन हेतु इंग्लैंड गए; 1974 में बरमिंघम विश्वविद्यालय से शिक्षा-तकनीकी में डिप्लोमा प्राप्त किया; देश की विभिन्न संस्थाओं तथा विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित सेमीनारों में संदर्भ्य व्यक्ति रहे; रुचि का विशिष्ट क्षेत्र – शिक्षा तकनीकी; अभिक्रमित अध्ययन की राष्ट्रीय कार्यकारिणी तथा ब्रिटेन में अभिक्रमित अध्ययन संघ के सदस्य; अब तक देश-विदेश की पत्रिकाओं में शिक्षा संबंधी लगभग 40 लेख प्रकाशित; दो पुस्तकों के सह लेखक; सम्प्रति प्राख्याता, विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर।

श्री वासुदेव जी. दवे : जन्म 1935, खड़गदा (जिला डूंगरपुर); एम. एससी., एम. एड.,, पीएच. डी स्कॉलर; विज्ञान शिक्षण में विशेष रुचि; नया शिक्षक तथा अन्य पत्रिकाओं में शिक्षा संबंधी लेख प्रकाशित; बोर्ड द्वारा अनुमोदित 'प्रायोगिक रसायन' पुस्तक के लेखक; सम्प्रति उप जिला शिक्षा अधिकारी, उदयपुर।

डा. छैलबिहारी माथुर : जन्म 1927, जयपुर; एम. ए., एम. एड., पीएच. डी. (शिक्षा); टी. ए. टी. की भारतीय परिप्रेक्ष्य में व्याख्या सम्बन्धी नूतन तकनीक का निर्माण किया; बी. एड. कक्षाएँ पढ़ाने का 10 वर्ष का तथा एम. एड. कक्षाएँ पढ़ाने का छह वर्ष का अनुभव; शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर अनेकों लेख प्रकाशित; विज्ञान-सम्प्राप्ति परखों के निर्माता; शैक्षिक निर्देशन सेवाओं का चित्रात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण; कला व मनोविज्ञान में विशेष रुचि; पीएच. डी. गाइड; सम्प्रति प्रोफेसर, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर।

डा. चन्द्रप्रकाश माथुर : जन्म 1940, जोधपुर; एम. एड., पीएच. डी. (शिक्षा); राजस्थान गाइडैंस न्यूज लैटर का तीन वर्ष तक सम्पादन कार्य किया; लगभग एक दर्जन शोध लेख प्रकाशित; निर्देशन सेवाओं के लिए 1966 में राज्य सरकार द्वारा पुरस्कृत; सम्प्रति अध्यापक, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर।

श्री जगदीशनारायण पुरोहित : जन्म 1930, भीलवाड़ा जिला; एम. ए., एम. एड.; बी. एड. कक्षाएँ पढ़ाने का नौ वर्ष का अनुभव; माध्यमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों के प्रशिक्षण, अनौपचारिक शिक्षा, शैक्षिक मूल्यांकन प्रशिक्षण शिविरों आदि में संदर्भ्य व्यक्ति का कार्य किया; महत्वपूर्ण विचार-गोष्ठियों में पत्र-वाचन किया; शिक्षा पर प्रकाशित चार पुस्तकों के सहलेखक तथा 'शिक्षण के लिए आयोजन' पुस्तक के लेखक; कई शोध लेख तथा शैक्षिक निबंध प्रकाशित; एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा स्वीकृत अनुसंधान एवं अनुदान प्राप्त प्रायोजनाओं मे मुख्य अनुसंधानकर्त्ता रहे; सम्प्रति प्राख्याता, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अजमेर।

श्री कृष्णगोपाल बीजावत : जन्म 1934, अजमेर; एम.ए. (हिन्दी), एम.ए., (अर्थशास्त्र) एवं एम. ए. (शिक्षा); बी. एड. स्तर पर स्वर्ण पदक विजेता, चार प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों तथा 'तुलनात्मक शिक्षा' नामक पुस्तक के लेखक; 10+2 योजना के अन्तर्गत एन. सी. ई. आर. टी. द्वारा प्रकाश्य 'हिन्दी गद्य एवं पद्य पुस्तकों' के सम्पादन में संलग्न, कई शैक्षिक गोष्ठियों में पत्र-वाचन किए; अजमेर के शैक्षिक विकास पर पीएच. डी. शोध कार्य में संलग्न; सम्प्रति प्राख्याता, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, अजमेर।

प्रो. बजरंगलाल भोजक : जन्म 1926, सरदारशहर; एम. ए, एम. एड., सी. आई. ई. हैदराबाद से अंग्रेजी में विशेष प्रशिक्षण; प्रशिक्षण महाविद्यालय की कक्षाएँ पढ़ाने का 15 वर्ष का अनुभव; विश्वविद्यालय, शिक्षण संस्थाओं सामाजिक संस्थाओं आदि के कार्यों से भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में संबद्ध; भारत की विभिन्न शोध पत्रिकाओं में कई शैक्षिक शोध लेख प्रकाशित; सम्प्रति प्रोफेसर, गांधी विद्यामंदिर, बेसिक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, सरदारशहर।

डा. अरविन्द बी. फाटक : एम. एससी., एम. एड., पीएच. डी. (शिक्षा); विगत पन्द्रह वर्षों से विद्याभवन में सेवारत; प्राध्याता, समन्वयक, एवं उ. मा. विद्यालय के आचार्य पद पर कार्य किया; स्नातकोत्तर एवं पीएच. डी. स्तर का अध्यापन अनुभव; राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित दो पुस्तकों के लेखक; भारत की विभिन्न शैक्षिक पत्रिकाओं में शिक्षा संबंधी कई लेख प्रकाशित; सम्प्रति प्राध्याता, विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर।

श्री कैलाशविहारी, वाजपेयी : जन्म 1936, उदयपुर; एम. ए. (अंग्रेजी), एम. एड. (स्वर्ण पदक विजेता); मैंचैस्टर यूनिवर्सिटी (इंग्लैंड) से टी. ई. ओ. में डिप्लोमा प्राप्त; अमेरिका जाकर वहाँ ईस्टर्न न्यू मेक्सिको यूनिवर्सिटी से ध्वनि तथा ध्वनि विज्ञान एवं पठन योग्यताओं का मूल्यांकन सम्बन्धी पाठ्यक्रम पूरा किया; सम्प्रति प्रशासक एवं प्रधानाध्यापक, राजकीय नवीन माध्यमिक विद्यालय, उदयपुर।

श्री सत्यप्रकाश शर्मा : जन्म 1928, एम. काम., एम. एड.; 15 वर्ष का अध्यापन अनुभव तथा 11 वर्ष का उपनिरीक्षक, परामर्शक राज्य निर्देशन केन्द्र एवं प्रधानाध्यापक का अनुभव; शिक्षा पर कई लेख प्रकाशित; 1969 में गाइडेंस न्यूज लैटर का संपादन किया; शिक्षानुसंधाता वाक्पीठ के अध्यक्ष रहे; सम्प्रति प्रधानाध्यापक, जौहरी राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, लाडनूं (नागौर)।

डा. मुल्कराज चिलाना : जन्म 1934, फाजिल्का (पंजाब); एम.ए., एम. एड., पीएच.डी. (शिक्षा), पोस्टग्रेजुएट डिप्लोमा (यूनेस्को); 1970–71 में यूनेस्को में वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी रहे; अब तक शिक्षा तथा अनुसंधान में 200 से भी अधिक लेख देश-विदेश की पत्रिकाओं में प्रकाशित; 'अध्यापकों का सेवारत अध्यापन' पुस्तक के लेखक; पीएच. डी. गाइड; सम्प्रति प्राध्याता, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर।

श्री प्रकाशचन्द्र द्विवेदी : जन्म 1942, गढ़ी (बाँसवाड़ा); एम. ए. (राजनीति शास्त्र), एम. एड.; शिक्षानुसंधान एवं लेखन में विशेष रुचि; सम्प्रति सहायक प्रधानाध्यापक, राजकीय ओसवाल उ. मा. विद्यालय, अजमेर।

श्री हरिश्चन्द्र मित्तल : जन्म 1928; एम. ए., एम. एड., सी. एफ. ई. एस. (ऑक्सन); अध्यापन तथा प्रशासन का लम्बा अनुभव; विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा संबंधी कई लेख प्रकाशित; सम्प्रति उप प्रायोजना अधिकारी, शिक्षा विभाग, सचिवालय, जयपुर।

श्री सूरजनारायण राव : जन्म 1922, चौमूं (जयपुर); एम. ए. (अर्थशास्त्र), एम. ए. (राजनीति शास्त्र), एम. एड. (स्वर्ण पदक विजेता); लगभग 35 वर्ष का अध्यापन एवं प्रशासन संबंधी अनुभव; सम्प्रति प्रधानाचार्य, राजकीय पोद्दार उच्च माध्यमिक विद्यालय, जयपुर ।

श्री विद्यासागर शर्मा : जन्म 1936, जिला भीलवाड़ा; एम. एससी., एम. एड., पीएच. डी. (शिक्षा) सम्पन्न; राजस्थान की पंचवर्षीय शिक्षा योजना की तैयारी में योगदान रहा; संस्थान-स्तरीय प्रायोजनाएँ प्रकाशित; शिक्षा पर कई लेख प्रकाशित; सम्प्रति राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर में सहायक निदेशक ।

श्री शशिशेखर व्यास : जन्म 1933, उदयपुर; एम. ए., बी. एड.; राज्य-स्तरीय कार्यगोष्ठियों में संदर्भ्य व्यक्ति; अंग्रेजी भाषा में तीन प्रकाशित पुस्तकों के लेखक; लेखन, सम्पादन व अनुसंधान में विशेष रुचि; सम्प्रति अनुसंधान सहायक, राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ।

श्री मोहम्मद हुसैन : जन्म 1940, उदयपुर; एम. ए., एम एड. (स्वर्ण पदक विजेता); अभिक्रमित अध्ययन में विशेषज्ञ के नाते कई प्रशिक्षण शिविरों तथा नवाचारों पर आयोजित संगोष्ठियों में संदर्भ्य व्यक्ति रहे; देश की विभिन्न शिक्षा संबंधी पत्रिकाओं में दर्जनों लेख/शोध लेख प्रकाशित; 'टीचिंग ऑफ इंग्लिश' के लेखक; सम्प्रति प्रधानाध्यापक, राजकीय माध्यमिक विद्यालय, रींछेड (उदयपुर) ।

सुश्री उषासुन्दरी वली : जन्म 1928; एम. ए., एम. एड.; अध्यापक एवं प्रशासक के रूप में 27 वर्ष का अनुभव; शिक्षण-प्रशिक्षण, विद्यालयी शिक्षा, पूर्व विद्यालयी शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में अनेक लेख प्रकाशित; यूनेस्को फैलोशिप के अन्तर्गत एजूकेशनल प्लानिंग का अध्ययन कर रही हैं; सम्प्रति उपनिदेशक (प्रशासन), शिक्षा निदेशालय, बीकानेर ।

प्रो. चतरसिंह मेहता : जन्म 1932, सोजत (पाली); एम. ए., एम. एड.; शिक्षा-विभाग में विभिन्न पदों का 26 वर्ष का अनुभव; शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित 'विद्यालय योजना' तथा 'विद्यालय संगम' के सहलेखक; राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित 'शिक्षक प्रशिक्षण के सिद्धान्त एवं समस्याएँ', खण्ड 1 व 2 के सहलेखक; राजस्थान की उच्च प्राथमिक कक्षाओं की सामाजिक ज्ञान पुस्तकों के सहलेखक; शैक्षिक पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा संबंधी अनेक लेख प्रकाशित; सम्प्रति प्रोफेसर, राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर ।

श्री भगवानलाल व्यास : जन्म 1925, कुशलगढ़ (बाँसवाड़ा); एम. ए., एम. एड; अध्यापन एवं शिक्षा प्रशासन का विविध स्तरों का लम्बा अनुभव; राष्ट्र-स्तरीय

विभिन्न सेमीनारों में राजस्थान का प्रतिनिधित्व किया; भारत के विभिन्न राज्यों – तामिलनाडु, पांडिचेरी, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, गुजरात – में भेजे गए अध्ययन दलों का नेतृत्व किया; शिक्षा-विभाग द्वारा प्रकाशित पाँच पुस्तकों का लेखन/सम्पादन कार्य किया; विभिन्न शैक्षिक संगठनों की नीति निर्धारण से संबद्ध; सम्प्रति निदेशक, राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ।

श्री जनार्दन प्रसाद शर्मा : जन्म 1928, एम. ए. (अर्थशास्त्र), एम. एड.; विभिन्न स्तरों पर अध्यापन एवं प्रशासन का लम्बा अनुभव; उत्कृष्ट सेवाओं के लिए 1971 में राष्ट्रीय पुरस्कार द्वारा सम्मानित; गणित एव सामान्य विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित; शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकालय संबंधी पुस्तक के सहलेखक; शिक्षा संबंधी कई लेख प्रकाशित; सम्प्रति जिला शिक्षा-अधिकारी, उदयपुर ।

□